सात सौ गीत

माधव सिंह "दीपक"
एम० ए०

बलभद्र प्रकाशन
झालावाड़ (राजस्थान)
वितरक
शारदा मन्दिर, नई सड़क, दिल्ली

मन्तव्य

मैने कुँअर साहब का "सात सौ गीत" शीर्षक गीत-सग्रह देखा और यत्र-तत्र अध्ययन किया। नि सन्देह आप ने सुन्दर गीत लिखे हैं, जिन्हे पढ सुनकर वास्तव मे भिन्न-भिन्न भावो और रसो का आनन्द प्राप्त होता है। आप की भाषा प्राजल, सरल और हृदय पर चोट करने वाली है। भाव भी उच्च कोटि के हैं। गीत की सफलता तभी है जब उसे गुनगुनाकर मनुष्य तल्लीन और तन्मय हो जाय। यह गुण इस सग्रह के गीतो मे अवश्य मिलेगा।

मुझे विश्वास है कि यह ग्रन्थ रसिको और भावुको को सतुष्ट कर सकेगा। ईश्वर, 'दीपक' जी को चिरायु और यशस्वी करे, जिस से वे हिन्दी के भांडार को अपनी रचनाओ से भरने मे समर्थ हो सके।

रूपनारायण पाण्डेय
भूतपूर्व "माधुरी" सम्पादक

मेरा कवि-जीवन

लगभग सात वर्ष की साधना के बाद मैने यह गीत-संग्रह प्रस्तुत किया है। मेरे कुछ साथियो को आश्चर्य हुआ कि विद्यार्थी-जीवन मे मुझे इतना अवकाश कैसे मिल गया किन्तु मुझे वस्तुत. अवकाश अधिक नही, कम मिला है। मेरी काव्य-गति मन्थर रही है। सिद्धहस्त कवि एक वर्ष से भी कम समय मे इतने गीत लिखने की क्षमता रखता है। खेलकूद, गप्पें लडाना, अध्ययन और मनन से बचकर जो भी समय मुझे मिलता था उसमे मै ये गीत लिखा करता था जैसे कुछ लोग डायरी भरते रहते हैं। गीतों का महत्व उनकी गणना से नही, गुणों से आँका जाता है। किन्तु, मैंने गुण और गणना की अपेक्षा स्वाभाविक व्यंजना पर अधिक जोर दिया है। कविता की ओर झुकने से मेरे अध्ययन में शिथिलता आती गई। मै दसवी कक्षा मे अतिम बार प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ था। उसके बाद बी० ए० में द्वितीय और एम० ए० मे तृतीय श्रेणी लेनी पड़ी।

कवि के काव्य का कवि के जीवन से सम्बन्ध रहता है, विशेषकर गीतों का। जीवन को जाने बिना गीतो की अनेक गुत्थियाँ उलझी ही रह जाती हैं। इसी प्रकार कवि के वंश और परम्परागत संस्कारो का सिंहावलोकन भी आवश्यक होता है क्योंकि व्यक्तिवादी कवि की मानसिक अथवा भावुक वृत्तियो की पृष्ठभूमि में कभी-कभी उनका प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे विद्यमान रहता है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक की इस भूमिका मे मैंने अपना और अपने पूर्वजो का उल्लेख अनुचित नहीं समझा है।

राजस्थान मे चौहानों के इतिहास को एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। अजमेर, रणथम्भौर, जालौर, साँचौर, सिरोही, गागरोन, कोटा, बूँदी, ये सब चौहानों के दुर्ग थे। महाराज बीसल देव, अर्णोराज, पृथ्वीराज, बीरमदेव और हम्मीरदेव जैसे महापराक्रमी राजा इस वंश मे हो चुके हैं। 'रासो' के रचयिता महाकवि चन्द बरदाई से लेकर 'वंश भास्कर' के प्रणेता महाकवि सूर्यमल्ल तक अनेक कवियो और चारणो ने इस उज्जवल वंश की गौरव गाथा को गाया है।
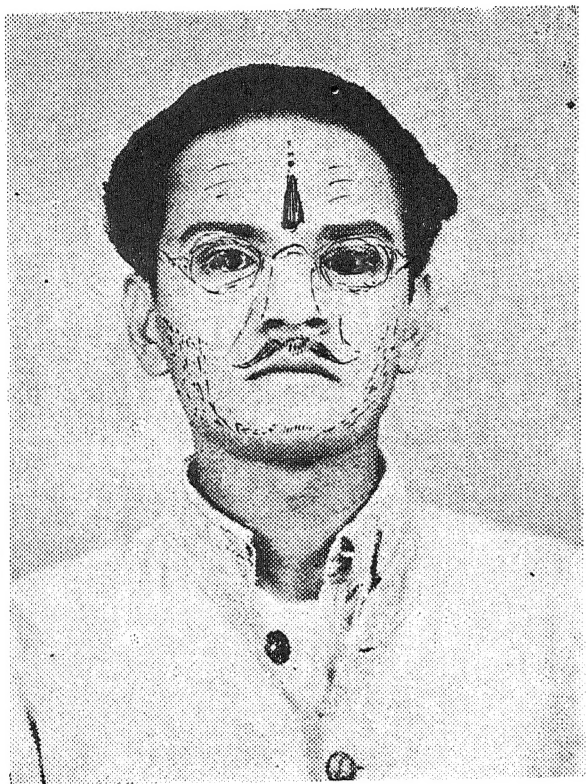
कुँअर माधव सिंह "दीपक"

कर्नल जेम्स टॉड और पडित गौरीशंकर ओझा जैसे इतिहासकारो ने राजस्थान ही नही बल्कि समस्त भारतीय इतिहास का स्थान अपनी कृतियो से विश्व में ऊंचा बनाया है।*

चौहानो की एक शाखा हाडा कहलाती है। सन् १३४२ ई० मे देवसिह हाडा ने बूंदी राज्य की स्थापना की। सम्राट् अकबर के समय बूंदी नरेश राव सुरजन ने रणथम्भौर के किले मे मानसिह के अनुरोध पर कई शर्तों के साथ मुगलो से सधि कर ली जिन मे प्रमुख शर्त यह थी कि हाड़ाओं की किसी कन्या का विवाह मुसलमानो से नही हो सकेगा। सुरजन के ज्येष्ठ पुत्र दूदा (दुर्जनशल्य) अकबर के आजीवन विद्रोही रहे और बारह वर्ष बाद एक युद्ध मे मारे गये।

राजपूतो का चरित्र विश्व के इतिहास मे एक अद्भुत स्थान रखता है। उनकी राजभक्ति और राजद्रोह, वीरता और उद्दण्डता, सभ्यता और मूर्खता के हजारो किस्से है जो इतिहास और साहित्य की बडी रोचक सामग्री है। औरों की क्या कहूँ, अपने ही वश की एक दो मिसाले यहाँ पेश करने को जी करता है। राव सुरजन के पौत्र राव रत्नसिह ने अकबर के एक मन्सबदार, शरीफ खाँ को केवल उस के "तू" कह कर सम्बोधित करते ही कटार भोंक कर मार डाला था।

जहाँगीर के समय, महावत खाँ ने जब विद्रोह किया और एक बार उसने नूरजहाँ और जहागीर को जब कैद कर लिया तो महावत खाँ के मित्र श्यामसिह हाडा ने नूरजहाँ के तम्बू मे प्रवेश करके उसके आभूषण लूट लिये।

---

*प्रस्तुत लेख मे ऐतिहासिक विवरण के लिये निम्नलिखित पुस्तकों से सहायता ली गई है :—

(१) कर्नल जेम्स टॉड कृत 'एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज़ आफ़ राजस्थान'।
(२) पडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत 'राजपूताने का इतिहास'।
(३) महाकवि सूर्यमल्ल कृत 'वंशभास्कर'।
(४) डॉ० मथुरालाल शर्मा कृत 'कोटा राज्य का इतिहास'।
(५) मेहता लज्जाराम शर्मा कृत 'पराक्रमी हाडाराव'।
(६) पडित गगा सहाय कृत 'वंश प्रकाश'।
(७) मुशी देवी प्रसाद कृत 'जहाँगीर नामा' और 'शाहजहाँ नामा' के हिन्दी-अनुवाद।

इस उद्दण्डता के फलस्वरूप कुछ ही दिनो बाद एक युद्ध मे उन्हे अपने प्राणो से हाथ धोना पडा। ये श्यामसिह, राव रत्नसिह के एक पौत्र थे। इसी प्रकार शहजादे खुर्रम (शाहजहाँ) ने दक्षिण मे जाकर विद्रोह किया था और वहाँ बुरहानपुर के किले मे बडा भयकर युद्ध हुआ था। खुर्रम की फौज एक लाख से कम न थी। दूसरी ओर राव रत्नसिह जहाँगीर की फौज के सेनापति थे। इस युद्ध मे रत्नसिह के पुत्र कुँअर हरिसिह ने अद्भुत पराक्रम दिखाया। उन्होने खुर्रम से लडते-लडते उसे घायल कर दिया और अपनी पगड़ी से उसकी मुश्के कस कर अपने पिता के आगे उसे प्रस्तुत किया। सूर्यमल्ल ने इसका वर्णन "बंधिय तैसेहि पग्ग बिछोरि" शब्दो मे किया है। उसी समय से हाडाओ की वीरता के बारे मे एक कहावत चली है जो राजस्थान मे अब भी प्रचलित है "गाढो टलै, पण हाडौ नँह टलै" अर्थात् गाढा चाहे अपने स्थान से हिल जाय किन्तु हाडा अपने स्थान से नही हिल सकता। गाढा (गाढे राव) बूँदी के एक विशालकाय हाथी का नाम था जो युद्धस्थल मे पहाड की तरह अडिग खड़ा रहता था। तोपो की धनाधन का उस पर कोई प्रभाव नही पडता था। किन्तु बुरहानपुर की भयकर मारकाट मे गाढे राव भी परेशान हो गया था। खुर्रम ने 'शाहजहाँ' बनने पर यह हाथी अपने लिये माँग लिया था। इस हाथी को 'घटाशिरोमणि' भी कहते थे।

बन्दी बनाये जाने के बाद खुर्रम की करतूतो का हाल जब दिल्ली पहुँचा तो जहाँगीर बहुत क्रोधित हुआ। तत्पश्चात् उसने नूरजहाँ के प्रभाव मे खुर्रम को कत्ल करने का फरमान जारी कर दिया। इधर शाहजहाँ कैद होने पर भी राजपूतो से बहुत आदर पाता था। केवल हरिसिह ही उस पर रोब जमाते थे। वे उस से नित्य प्रति चिलम भरवाते और पाँव दबवाते थे और काम न करने पर उसकी नाक पर मुक्का मारा करते थे। जब खुर्रम ने मौत का पैगाम सुना तो रत्न सिह के आगे अपने प्राणो की भीख मागी और रत्न-सिंह ने वस्तुत: मुगल वंश को नष्ट होने से बचा लिया। उसी समय से एक दोहा प्रचलित है जिसका उल्लेख टॉड साहब ने भी किया है :—

सरवर फूट्यो जल बह्यो, कोई करो जतन्न।
दिल्ली को घर जावताँ, राख्यो राव रतन्न॥

खुर्रम के इस छ: महीने की कारावास-अवधि मे रत्नसिंह के एक पुत्र कुँअर माधवसिंह ने उससे प्रगाढ मैत्री स्थापित कर ली जो उनके लिये लाभ-दायक सिद्ध हुई। सम्राट् बनने पर शाहजहाँ के आदेश से बूँदी के दो टुकड़े हो

गये । कोटा और बूँदी दो पृथक राज्य बन गये और कोटे के प्रथम अधीश्वर माधवसिह हुए ।

शाहजहाँ की उत्तरावस्था मे सन् १६५६ मे दारा और औरगजेब का इतिहास प्रसिद्ध युद्ध हुआ । यह युद्ध हाडा वश के लिये उतना ही प्राण घातक था जितना मरहठो के लिये पानीपत का तीसरा युद्ध । कोई घर ऐसा न था जिसकी स्त्रियाँ अपने पतियो को लेकर आग पर न चढी हो । फतहपुर* के निर्णायक युद्ध मे दारा के प्रमुख सेनापतियों में बूँदी नरेश शत्रुशाल मुख्य थे जिनके साथ लड़ते-लडते बूँदी के हजारों वीरो ने अपने प्राण दे दिये । शत्रुशाल के कनिष्ठ भ्राता महाराजा मोहकमसिह भी इसी युद्ध मे वीर गति को प्राप्त हुए । इन पक्तियो का लेखक इन्ही मोहकमसिह का वंशधर है ।

राजपूत वीर, गीता के गायक के अमर सन्देश मे विश्वास करते थे—"हतो वा प्राप्यसि स्वर्ग, जित्वा वा भोक्षसे महीम् ।" इस युद्ध मे मोहकमसिह के ज्येष्ठ पुत्र कुँअर जोरावरसिह ने अद्भुत वीरता दिखाई । वीर शत्रुशाल का बार-बार आदेश मिलता था "जोरावरसिह ! घोड़ा बढ़ाओ" और वे शत्रुओं को चीरते हुए आगे निकल जाते थे । तीन बार सारी फौज के आर पार निकलने के बाद वे बहुत थक गये, किन्तु बूँदीपति ने पुन· गर्जना की—"जोरावरसिह घोडा बढाओ । युद्ध से किसी को लौटना नही है" और धीरे-धीरे बूँदी की सारी फौज काच के टुकडो की तरह मैदान मे बिखर पडी । सारी जमीन केसरिया कफन से ढकी हुई थी । औरंगजेब शत्रु होते हुए भी राजपूतो की वीरता से मंत्रमुग्ध सा हो गया । सम्राट् बनने पर उसने बूँदी वालों के सम्मान हेतु बहुत सा पुरस्कार और खिलअते भिजवाई थी ।

इसके लगभग सौ वर्ष बाद मेरे पूर्वजो की पुन. सिर कटाने की नौबत आई । कोटा और जयपुर का प्रसिद्ध भटवाड़े का युद्ध हुआ जिसमे कोटा विजयी हुआ किन्तु कोटे की ओर से अन्य वीरों के साथ मेरे पूर्वज महाराजा खुशहाल सिह भी मारे गये । उनकी पुनीत स्मृति मे अब भी एक मन्दिर विद्यमान है जहाँ छोटा सा मेला लगता है । तब से हमारी जागीर "मूँडकटी" की जागीर कहलाने लगी । हम लोग वाकई अपनी मूँड कटाते थे और जागीर खाते थे । सन् १८३८ मे कोटे के दो भाग हुए । झालावाड़ और कोटा दो अलग राज्य

---

*यह युद्ध धौलपुर से लगभग चार मील दूर हुआ था जो आगरा-ग्वालियर लाइन पर है । मेहता लज्जाराम शर्मा ने स्वयं उस स्थान पर जाकर शत्रुशाल आदि वीरों के स्मारक चबूतरे देखे थे, जिन्हे वहाँ के लोग "रण के चौंतरे" कहते हैं ।

बन गये। हमारी जागीर झालावाड के अन्तर्गत आने से और झालावाड नरेश से गहरा सम्पर्क होने के कारण हम झालावाड मे रहने लगे और तब से अब तक वही है।

पिछले तीन सौ वर्षो मे, अर्थात् बूँदी से पृथक् जागीर पाने से लेकर अब जागीरदारी खत्म होने तक, मेरे कुल मे सबसे प्रतिभाशाली व्यक्ति मेरे पितामह महाराजा बलभद्रसिह जी हुए। वे एक अद्भुत पुरुष थे। धर्म और राजनीति, काव्य और दर्शन, शस्त्र और शास्त्र—सभी विषयो के वे अच्छे विद्वान् थे। उन्हे सहज ही मे उच्च कोटि के व्यक्तियो मे रखा जा सकता है। अग्रेजी, उर्दू, फारसी, सस्कृत, हिन्दी और गुजराती के वे पण्डित थे। उनकी कवित्व-शक्ति बडी विलक्षण थी। यदि उनके विचार अधिक दार्शनिक न होते तो हिंदी को एक प्रथम श्रेणी का कवि मिल गया होता। साथ ही वारुणी और विलास ने उन्हें अधिक परिश्रम न करने दिया। फिर भी उनकी जो रचनाएँ उपलब्ध हैं वे उनकी प्रतिभा की परिचायक हैं। महाराज राणा भवानीसिह जी जैसे विद्वान् नरेश के समय झालावाड राज्य की केबीनेट की प्रधान के पद से रिटायर होने के बाद सन् १९२४ ई० मे ५९ वर्ष की अवस्था मे उनका स्वर्गवास हो गया। राजपूती शान के वे एक अजीब नमूने थे और सत्य तथा न्याय के अनन्य प्रेमी। एक बार उन्होने नौ लाख रुपये की रिश्वत को ठुकरा दिया था। भारत में ऐसे न जाने कितने रत्न अतीत की धूलि मे छिपे हुए हैं।

मेरे पिता महाराजा भीमसिंह जी भी अच्छे कवि हैं। झालावाड़ में होम मिनिस्टर रहने के उपरान्त, राज्य विलयन के समय उन्होंने अवकाश प्राप्त कर लिया और अब वे एक तटस्थ के रूप मे जीवन यापन करते हैं। "अब अलि रही गुलाब में, अपत कँटीली डार।" अब तो नक्शा ही बदल गया।

प्रस्तुत पुस्तक का विषय इतिहास नही, काव्य है। अतः इस शताब्दियों की लम्बी कहानी के दो चार चुटकले यहाँ लिखना असंगत था किन्तु यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि सन् ५७ से पहले अधिकाँश हिन्दी साहित्य का निर्माण देशी नरेशों की छत्र छाया मे हुआ है और एक साहित्य-सेवक के नाते मैंने पूर्वजों को श्रद्धाँजलि अर्पित की है जो कवियों और विद्वानों के बड़े प्रेमी और आश्रयदाता थे एवं स्वयं भी साहित्य मे रुचि लेते थे। बूँदी में पंडित गगासहाय जैसे उत्भट विद्वान् और मतिराम, चण्डीदान और सूर्यमल्ल जैसे प्रखर कवि हो चुके हैं। अतः पूर्वजो के प्रति आभार प्रदर्शन न करना वैसी ही बात होती जैसे किसी वृक्ष के लिये यह कहा जाय कि वह बिना किसी जड़ के अपने आप पैदा

हो गया। वंशागत संस्कारो ने मुझे साहित्य मे अभिरुचि प्रदान की है और अध्ययन ने मेरी कविता का विकास किया है।

वर्तमान युग प्रजातत्र का है और मै इसी युग में पला हूँ। इस युग का प्रभाव मेरी सभी कविताओ से प्रकट होता है और मेरे गीतो मे युद्ध के बजाय शान्ति और प्रेम का सन्देश है मानो प्रतिक्रिया के रूप मे मै राजपूती परम्परा के एक दम दूसरी ओर झुक गया हूँ। यदि मेरा वश-परिचय किसी को विदित न हो तो मेरी रचनाओ से वह स्वप्न मे भी यह विश्वास नही करेगा कि मैंने एक सामन्तशाही कुल मे जन्म लिया है। अपनी वृत्तियों को युग के अनुकूल बनाने मे मैंने परिश्रम किया है फिर भी कही कही सामन्तशाही छीटे पड गये है। मै यह तो नही कहता कि मुझे वीर रस अच्छा नही लगता किन्तु मैंने शान्ति के इस निर्माण-युग मे अपने आप को युद्ध का अनर्गल प्रलाप करने से रोका है और मुझे वस्तुत अब एक अहिंसात्मक समाज-रचना अच्छी लगने लगी है।

२७ जुलाई १९३० को झालावाड़ में मेरा जन्म हुआ। बाल्यकाल मे अधिकतर बीमार रहा। खाँसी, जुकाम, बुखार, पेचिश, सिर दर्द, निमोनिया, टाइफाइड इनमे से कोई न कोई रोग मुझे घेरे रहता था, फिर भी खेलने का बहुत शौक था और कभी कभी तो बुखार मे भी खेला करता था। पलँग पर बैठ कर ताश के पत्तो से तीन-तीन चार-चार मंजिल के महल बनाया करता था। यदि बिस्तर पर लेटने की नौबत आती, तो काच की गोलियाँ, पतंग की डोर और एक दो खूबसूरत तसवीरे तकिये के नीचे दबी ही रहती। माता जी पास बैठकर पुराण और महाभारत के किस्से सुनाया करती थी। उन के पास बैठने से चित्त को बड़ी सांत्वना मिलती थी। जब वे पूजा पाठ करती तो मै भी आस-पास कहीं दुबक जाता और ज्योंही वे आँख मूँदकर ध्यान लगाती त्योंही मैं भगवान् के प्रसाद को चुपके से उठाकर अपने पेट के हवाले करता था। अगर माला फेरने-फेरते बीच में ही उन्हे पता लग जाता और वे आँखें खोल देती, तो मै अपना मुँह फाड़े हँसता हुआ वहाँ से चल देता था।

मकान के आँगन मे एक फुलवारी थी, जिसके फूलों पर भँवरे उडते रहते थे और अनेक रंग बिरंगी तितलियाँ आकर बैठा करती थी। कभी-कभी दोपहर मे तितलियो के पीछे दौड़ने का ही प्रोग्राम रहता था। कभी दो चार साथी बच्चों को लेकर नये-नये नाटक रचे जाते थे और कभी खिलौनों की पिटारी खोलकर उन्हे अनेक प्रकार से सँवारा जाता था। कई बार चिड़ियो को पकड़ने का खप्त सवार होता। माता जी जब खाना खा लेती तो मै नौकरानी

से कहता —"अभी थाली कमरे मे ही धरी रहने दो।" जब दो चार चिडियाँ आ जाती तो कमरा बन्द करके मै तौलिया हाथ मे लेकर उनके पीछे दौडना प्रारम्भ कर देता। बन्दी बनाकर उन्हे एक पिजडे मे डाल देता था, उनके पंख नीली और लाल स्याही से रग देता, उन्हे सुन्दर-सुन्दर नाम देता और उन के पजे डोरी से बाँधकर उन्हे पतंग की तरह उडाता था। आँगन में सवेरे दाना डालने पर बहुत से कबूतर और तोते आ जाते। एक मोर भी प्रतिदिन आया करता था। माता जी कहती "यह अपने घर का कोई बडा-बूढा है। तभी तो इस को अपने घर से इतना मोह हो गया है।" घर के वृक्षों पर अनेक पक्षी बैठे रहते। हमारा घर काफी लम्बा-चौड़ा है। वसन्त मे सैकड़ों बुलबुलें आती और सारे वृक्ष बुलबुलो से लद जाते। वे सब मिल कर अपना राग सुनाने लगती थी। एक बार मैने रबड की गुलेल लेकर उन पर निशाना अजमाना शुरू किया। यदि किसी के लग जाती, तो बेचारी एक लम्बी साँस खीच कर दम तोड देती और उस की गर्दन नीचे लटक जाती थी। माता जी को बहुत दुःख होता। अन्त मे, उन के कहने पर मैने यह काम बन्द कर दिया। वे गर्मी मे चिड़ियों के लिये मिट्टी के बर्तन में पानी भरकर रखती हैं।

छोटी अवस्था में एक ओर तो मैं विनोदप्रिय था और दूसरी ओर अपने साथियों पर रोब जमाने में भी नही चूकता था। लड़ना-भिड़ना मामूली बात थी। नौकर अगर मालिश करते समय हाथ-पाँव पर जोर लगाता तो फौरन उसके दो चार जमा देता था। नौकरानी अगर ठंडा दूध ले आती तो गिलास फेंक कर भूख हडताल कर देता था और मुझे मनाने में माता जी को बहुत खुशामद करनी पडती थी।

माता जी के स्वभाव मे जितनी कोमलता थी उसके विपरीत उतनी ही कठोरता पिता जी के अनुशासन मे थी। उनके आगे अक्ल दुरुस्त हो जाती थी। जब उन्हें क्रोध आता, तो मेरे हाथ-पाँव थरथराने लगते और कई बार तो मै डर के मारे पेशाब कर देता था। उनके सुर्ख चेहरे और लाल-लाल आँखों की ओर देखा नहीं जाता था। जब कभी हम सब भाई बहिन उनके पास बैठते तो हम मे से किसी की उनके आगे हँसने या खाँसने की हिम्मत नहीं होती थी। जिस प्रकार वे राज्य की पुलिस, फौज और गृहकार्य के मंत्री थे उसी प्रकार घर में भी उनका फौजी अनुशासन था। हमें सवेरे दौड़ लगानी पड़ती थी और कसरत करनी पडती थी। मेरी जेब यदि उन्हें उभरी हुई दिख जाती तो पिता जी मुझे बुलाकर सब के आगे मेरी जेब की तलाशी लेते। जब उस में से रग-बिरंगे काच के टुकड़े निकलते, पुरानी ब्लेड, पतंग की डोर, छोटा-मोटा

चाकू और तसवीरें निकलती तो वे बडे नाराज होते और उन सब चीजो को जोर से फेंककर मुझ से कहते—'कम्बख्त! तू बिल्कुल गधा है। अरे, जब तू सोयेगा तो ये तेरे पेट मे घुस जायेंगे।" मै एक कोने मे जाकर सिसकने लगता, मानो मेरी सारी सम्पत्ति लुट गई हो।

यह सब कुछ होते हुए भी पिता जी के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ने मेरे जीवन को जितना प्रभावित किया है उतना अन्य किसी ने नही। उन्होने जीवन में कभी शराब नही पी, असत्य के आगे कभी सिर नही झुकाया और अपने आदर्शों के लिये विषम से विषम परिस्थितियों का सामना किया। हमारे यहाँ अनेक कवि और चारण आते रहते थे और कविताएँ सुनाया करते थे। पिता जी स्वयं भी कविता पाठ करते थे। उन्होंने मुझे बचपन में ही सैकड़ो दोहे, कवित्त और सवैये कंठस्थ करा दिये थे। तत्कालीन झालावाड नरेश महाराज राणा राजेन्द्रसिह जी 'सुधाकर' के काव्य-प्रेम से झालावाड मे कविता का बहुत सुन्दर वातावरण था। मुझे बचपन से ही तुकबन्दी करने का शौक था। "कोयल बोली, कैसी भोली। पैसा पाया, लड्डू खाया", आदि तुकों की मैंने एक लम्बी फहरिस्त बना रखी थी। इन नन्हीं कल्पनाओ से जितना आनन्द उस समय मिलता था उतना मुझे आज अपनी किसी रचना से नही मिल सकता।

धीरे-धीरे मै बडा हुआ। मिडिल की परीक्षा मे सारे झालावाड़ राज्य में प्रथम रहा। चश्मा आँखों पर चढ़ चुका था। मेरे घर मे पितामह के समय से ही हजारो पुस्तके मौजूद हैं। कई पुस्तके तो मै छिप-छिप कर पढ़ता था। लैला मजनूँ का किस्सा एक सहपाठी से लेकर मैंने तीसरी क्लास मे ही पढ़ लिया था। पाँचवी कक्षा से झालावाड़ के सार्वजनिक पुस्तकालय का सदस्य हो गया था। एक बार पिताजी कहीं बाहर गये हुए थे। मै उनकी अलमारी मे से 'बिहारी सतसई' चुपके से उठा लाया। दो दिन मे उसे पढ़ कर चुपचाप वापस रख दी। बस वही मेरी प्रेरणा का आरम्भ था। मैंने सोचा—"एक व्यक्ति केवल सात सौ दोहे लिखकर महाकवि हो गया। क्या मै ऐसा नही कर सकता?" बस मैंने निश्चय किया कि सात सौ दोहो के बजाय मै सात सौ गीत बनाऊँगा। उस समय मै नवी क्लास मे था। मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि इक्कीस वर्ष की अवस्था से पहले अपना लक्ष्य पूरा करके रहूँगा। नया-नया जोश था, नई अवस्था और नई उमग। आखिर १६ नवम्बर १९४४ को मैंने अपना पहला

गीत लिखा :—

"मुझको अपनाना आता है।

कोई भी अजमा कर देखे, मेरे दर पर आकर देखे,

उजडे उपवन मे भी मुझको, फल फूल लगाना आता है।।"

धीरे-धीरे गीत पर गीत बनने लगे। लेखनी सजग हो उठी और कल्पना ने अपने पख फैलाये। किन्तु मैने किसी के आगे उफ तक नही की। पिताजी के डर के मारे किसी से जिक्र नही किया कि मै भी गीत जोडने लगा हूँ। निश्चय ही, यदि पिताजी को मेरी शृंगारिक कल्पनाओं का कोई लिखित प्रमाण मिल जाता तो ऐसी मार पडती कि हड्डी पसली एक हो जाती और कवि महाराज अपनी सारी करतूत भूल जाते। काव्य-क्षेत्र मे मेरे विचार उनसे बिल्कुल भिन्न थे। वे ब्रज मे लिखते थे और मै खड़ी बोली मे। वे रूढ़वादी पुराने छन्द बनाते थे और मै नये तर्ज पर था। उन्हे भक्ति रस पसन्द था और अपनेराम के आगे नवोढ़ा युवती के अतिरिक्त कोई चित्र ही नही खिचता था।

इन सब असमानताओ का परिणाम यह निकला कि पिता जी के कठोर नियंत्रण ने मुझे एक मौन साधक का रूप दे दिया।

किन्तु, अधिक मौन रहना भी नवयुवक को नही सुहाता। घर से मेरा जी ऊबने लगा। दसवी कक्षा के बाद मैने घर छोडा और हरबर्ट कालेज, कोटा (राजस्थान) मे भर्ती हो गया। रघुनाथ होस्टल में रहता था। वहाँ के लड़के इतने शरारती थे कि यदि मैं उन भले मानुसों को यह बता देता कि मैं कवि हूँ तो मेरी सारी पढाई निःसन्देह चौपट हो जाती। कविता सुनाते सुनाते मेरी नाक मे दम हो जाता। "जानी न जाय निशाचर माया" वही हाल वहाँ पर था। जब मै पढ़ने बैठता तो लडके ऊधम मचाते, ताश खेलते, जोर जोर से हँसते, जूते फेकते और इसी प्रकार की प्रेत-लीला किया करते थे। यहाँ तक कि कमरे मे ग्रोमोफोन भी लाकर बजाया जाता था। किन्तु मैं, लड़कों की एक नही मानता था और पढ़ कर ही दम लेता था।

झालरापाटन से कोटा केवल ५२ मील दूर है। अतः पिता जी, महीने दो महीने मे चक्कर लगा जाते थे। अब मैं सोलह वर्ष का कसरती जवान था। मूँछों की रेख नजर आने लगी थी, फिर भी वे मुझे बच्चा ही समझते थे। अंत मे, मैंने सोचा कि घर से कहीं दूर चलना चाहिये जहाँ किसी व्यक्ति का अपने ऊपर कोई दबाव न हो और जीवन को अपनी इच्छाओं के अनुसार मोड़ने का स्वच्छंदता से अवसर मिल सके। अतः इण्टर के बाद मैं दूर चला गया—अपने घर से बहुत दूर—प्रयाग विश्वविद्यालय मे।

इलाहाबाद पहुँच कर मेरी जान मे जान आई—जैसे कुएँ में से निकल कर मैं किसी सरोवर मे जा पहुँचा था। वहाँ अनेक कवियों के दर्शन होते और अच्छी-अच्छी कवितायें सुनने को मिलती। यूनीवर्सिटी के जीवन ने एक नई स्फूर्ति पैदा की और मेरी भावनाये पल्लवित होने लगीं। शहर में भी काफी चक्कर लगाता था। सगम की ओर अधिक जाता था। गगा प्राय बुलाया करती थी। सूर्योदय और सूर्यास्त मे उसे देखा, वर्षा और ग्रीष्म मे देखा, अँधेरी और चाँदनी मे देखा। गंगा के किनारे बड़ा सुहाना लगता था। रात को कभी देर हो जाती तो होस्टल का चौकीदार कहता—"कहाँ घूमत रहन बबुआ ?" मै कहता—"सिनेमा देखकर आया हूँ।"

छात्रावासो मे मैंने जीवन के आठ वर्ष बिताये हैं किन्तु अध्ययन के लिये जब मै कटिबद्ध होकर बैठ जाता था तो किसी शोर गुल की चिन्ता नही करता था। मेरा विश्वास है कि लडको में शारीरिक और मानसिक बल के साथ आत्म बल भी होना चाहिये। अनेक लड़के बडे दब्बू और निकम्मे होते है। होस्टल के जीवन मे, मै नित्य प्रति व्यायाम करता था और खाने पीने मे, हँसी मजाक में, खेलकूद मे और गप्पे लड़ाने मे किसी से कम नही था। एक बार मजाक मे कुछ लड़के मुझसे आग्रह करने लगे कि आपको सिगरेट पीनी पड़ेगी। सब को ही पिलाई जा रही थी। मैंने कहा—' मै कभी पीता ही नही और न कभी पीऊँगा।" बातों ही बातो मे बात बहुत बढ़ गई। वे भी अड़ गये, मै भी अड़ गया। वे यहाँ तक कहने लगे "कुँवर साहब, आपकी सारी शेखी धरी रह जायेगी। आप न पियेंगे तो हम आपको नंगा कर देंगे।" मैंने कहा "नंगा होने से पहले तुम में से एक दो को तो मैं खत्म कर दूँगा। मैं देखता हूँ, कौन मुझे नंगा करता है।" आस्तीने चढ गईं। सब जवान ही जो ठहरे। जरा सी बात बहुत गम्भीर बन गई। लड़कों को यह निश्चय हो गया कि यह झगड़ा बहुत ही बुरा रूप धारण कर लेगा। अतः एक ने बात बना कर कहा—'अरे भाई! झगड़ते क्यो हो ? तुम्हे न पीना है तो मत पियो। हमारे बाप का क्या लेते हो ?" अब तो दो चार लोग समझाने वाले बन गये और दस पाँच मिनिट में बात वहीं ठंडी हो गई। कुछ लड़के बड़बडाते हुये चले गये। तात्पर्य यह है कि सच्ची बात के लिए कभी किसी से दबना नही चाहिये। मैं तो अपने कमरे मे एक चाकू और एक लकडी बराबर रखता था और छुट्टियो मे घर आने पर पिता जी द्वारा सिखाई गई परम्परागत शस्त्र विद्याओ का अभ्यास करता था। अश्वारोहण का भी मुझे विशेप चाव था।

हाँ, तो प्रयाग मे मैंने काव्य-रचना के अनुकूल वातावरण पाया। पंत, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा, फिराक, बच्चन, सभी सुनने को मिले। मैंने

अपना प्रिय गीत "मै खिड़की मे बैठा रहता" वही लिखा था। यह डायमण्ड जुबली होस्टल के २१ नम्बर का कमरा था जिसमे मै दो वर्ष रहा। उस समय तक इस नये छात्रावास की चाहर दिवारी बनने न पायी थी और वहाँ से सड़क का दृश्य बहुत अच्छा दिखाई पड़ता था। मैने प्रयाग मे अपने कुछ साथी बनाये जिन्हे कभी-कभी गीत सुनाया करता था। एक दिन मेरी भेट वहाँ के एक कवि 'जानकार' जी से हो गई—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भवन मे। जानकार जी ने मेरी व्यथा को जान लिया। मैने उन से कहा "मै अपनी एक पुस्तक छपाना चाहता हूँ जिसकी प्रतियाँ आपको अपने घर रखनी पड़ेगी क्योंकि होस्टल में उन्हे लडको से बचाना मुश्किल है।" वे तैयार हो गये। फलतः मैने अपने प्रथम सौ गीत 'ज्योति' के नाम से १९४८ मे प्रकाशित किये। कुछ प्रतियाँ मित्रों को दी और कुछ अपने पास रखी। शेष सब 'जानकार' जी के घर पड़ी रही। छः वर्ष बाद मैने उन्हे पार्सल से मगवाया था।

दो वर्ष बाद इलाहाबाद से लखनऊ जाने की इच्छा हुई। कुछ नई प्रेरणा की जरूरत थी। लखनवी तकल्लुफ और लखनवी अन्दाज की बहुत बातें सुन रखी थी। मै बी० ए० के बाद में १९५० मे लखनऊ यूनीवर्सिटी आ गया। न्यू होस्टल के १३२ नम्बर के कमरे मे रहने लगा जो ऊपर एक कोने में है। आचार्य नरेन्द्रदेव उस समय वाइस चांसलर थे। यह होस्टल, कुछ समय बाद 'नरेन्द्र देव छात्रावास' बन गया। मैंने एम०ए० मे अग्रेजी ले ली और एल०एल० बी० का अध्ययन भी शुरू किया। किन्तु सिर पर तो कविता की धुन सवार थी—पढ़ाई कहाँ से होती। लखनऊ जाकर मेरी तबियत बहुत खुश हुई। एक बार तो यहाँ तक जी मे आया कि सारी उम्र लखनऊ मे ही गुजार दूँ। वहाँ के सुन्दर बाग, गोमती नदी, हज़रतगंज, यूनीवर्सिटी के छोटे-छोटे कुंज और मानवीय सौन्दर्य निहार कर मानो मेरी कविता को एक नया जीवन मिल गया। अंग्रेजी साहित्य और उसकी कक्षा भी मनोरजन का बहुत अच्छा साधन थी। मै शाम को घूमने निकलता, कभी हजरतगज की ओर, कभी आई० टी० कालेज की ओर, और कभी गोमती के किनारे। बस इसी आने जाने मे एक गीत बन जाता था। इस प्रकार बहुत से गीत मेरे एकान्त-भ्रमण के परिणाम स्वरूप हैं। यही कारण है कि गीत बनाते समय अब भी मुझे टहलने की आदत है।

सात सौ गीत की साधना चल रही थी। आखिर वह दिन आया जब मैंने अपना सात सौ वाँ गीत लिखा :—

"वह किनारा दूर ही है।
हाय माँझी ! शूद्र मानव तो यहाँ मजबूर ही है।"

वह २१ जुलाई १९५१ की सध्या थी। सूरज डूब रहा था। मन मे सतोष था कि मैने अपनी बात को निभाया है किन्तु साथ ही मेरा चित्त एक हल्की सी उदासी से क्षुब्ध हो हो रहा था। उस दिन अपनी सारे परिश्रम का चित्र मेरी आखो के आगे घूम रहा था। सोच रहा था कि जीवन मे चाहे कितनी ही मेहनत करो, अन्त तो सब का एक ही है—यानी मौत। हम चाहे सारी उम्र सुख मे डूबे रहें अथवा कल्पना के प्रवाह मे डूबते उतराते हुए गीत लिखते रहे फिर भी एक दिन वह होगा जब हम कल्पना नही बल्कि मौत के हाथ मे होगे। यही भावना मुझे क्षुब्ध कर रही थी और गीत के स्वर कानो में गूँज रहे थे—"वह किनारा दूर ही है।"

गीत पूरे हुए। अब उन्हे छपवाने की सूझी। अपना ग्रन्थ लेकर नवल-किशोर प्रेस पहुचा। रूपनारायण पाण्डेय जी को दिया। बड़े प्रसन्न हुए। बोले "मै इसे अवश्य पढ़ूंगा और अपनी सम्मति भी दूँगा।" अपने वायदे के अनुसार उन्होने अपना मन्तव्य देकर मुझे अनुग्रहीत किया किन्तु पुस्तक के प्रकाशन मे उन्हें असमर्थता दिखानी पड़ी। अभी मै निराश नही हुआ था। अनेक प्रकाशको से भेट की और अनेको को पत्र लिखे। मै नही जानता था कि आजकल के प्रकाशक कवियो को घास डालना भी पसन्द नही करते। अनेक तथाकथित बड़े आदमियो को भी चिट्ठियां डाली। उन्हे यहाँ तक लिखा कि हम आप को यह पुस्तक समर्पण करेंगे। यदि आप रुपया उधार भी दे तो आपकी पाई पाई चुका देंगे। कुछ ने उत्तर दिये और कुछ, मेरे पत्रो को लेकर पी गये। परिणाम सब का शून्य था। अभी मुझे वास्तविक दुनियाँ का कोई अनुभव नहीं था। मैं नही जानता था कि लोग इतने बनावटी होते हैं। मैने इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये कई महीनो तक प्रयत्न किया। इसकी भी एक लम्बी कहानी है। जिन लोगो ने मुझे हतोत्साहित किया उनका नाम ले लेकर चिल्लाने को जी करता है किन्तु कवि की मर्यादा मुझे वाध्य करती है कि मै चुप रहूँ। चाहे साहित्यकार की राह मे कितने ही काँटे बिछाये जाये, उसे अपनी मानवता नहीं छोड़नी चाहिये। तिरस्कार का उत्तर प्यार से देना चाहिये।

मैने गीतो को सात खण्डो मे जमाया था जिन्हे मै सात पुस्तको का रूप देने को भी तैयार था—प्रकाशको की सुविधा के लिये। सबेरे आशा लेकर उठता ओर शाम होते होते थक जाता था। लखनऊ की सड़को पर बहुत मारा मारा फिरा। कई बार तो मै यूनीवर्सिटी से चारबाग स्टेशन तक पैदल घूम कर आता था।

एक बार डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद और श्री के० सी० चट्टोपाध्याय इलाहा-

बाद से टीचर्स ट्रेडयूनियन के सिलसिले मे लखनऊ यूनीवर्सिटी मे आयोजित एक सभा मे भाग लेने आये। वे इलाहाबाद मे हमारे गुरु थे। मैंने चट्टोपाध्याय जी से कहा—"गुरुदेव ! मैंने सात सौ गीत लिखे है। मानव के इतिहास मे क्या कोई और भी विद्यार्थी है जिसने इक्कीस वर्ष की अवस्था में इतना लिखा हो ? मै समझता हूँ कि मै ही पहला व्यक्ति हूँ।" गुरु जी का चेहरा सहसा तमतमा उठा। जोश मे वे प्राय: गरज उठते हैं। मुझसे बडे दृढ़ शब्दो मे बोले "दीपक ! काव्य में कभी स्पर्धा नही करना। सस्कृत से क्या तुम ने यही सीखा है ? अरे, हम भारतीय हैं। अपना अहकार छोड़ दो। तुम किस गिनती मे हो।" मेरे मुँह पर मानो एक जोर से तमाचा लगा। मुझ पर घडो पानी गिर गया। शर्म से आँखे नीची होगई। एक मिनिट चुप रह कर मै धीरे से बोला—"आप ठीक ही तो कहते हैं। आपने वास्तव मे मुझे सही रास्ता बताया है"–और मै चला आया।

घर पर आकर मुझे ऐसा लगा, मानो पिछले सात वर्षों से मै केवल एक स्वप्न लोक मे रहता था जिसमे कुछ परियाँ आती थी और कवि के मानस-पटल पर नृत्य कर जाती थी। किन्तु, अब मेरे पाँव जमीन पर टिक गये थे। सारा अहंकार चूर-चूर हो चुका था। मै अपने आप को पता नहीं क्या समझे बैठा था। सोचते-सोचते मेरा दिमाग घूमने लगा। कवि होकर इतनी उद्दण्डता—इतना अभिमान—इतना साहस कि मै सारी दुनियाँ को चुनौती देता फिरूँ। हृदय मे बहुत ग्लानि हो रही थी। मेरा सारा अध्ययन मुझे कोस रहा था। जब मैंने किताबो की ओर देखा तो ऐसा लगा मानो कालिदास, शेक्स-पियर और तुलसी की आत्माये मुझ पर अट्टहास कर रही थी। मैंने अपनी रचना सन्दूक मे रख दी और ताला बद कर दिया। बडी देर तक तकिये में आंखो को डुबोए हुए पड़ा रहा। उस रात को नीद आना हराम हो गया। सवेरा होते-होते यह मालूम होता था मानो मैंने काव्य से सन्यास ले लिया हो। जिस पर मै गर्व किया करता था, उस पर अब हँसी आ रही थी। सोचता था कि जवानी की तरंग में पता नही क्या लिख मारा। अपने गीतों का ध्यान करके तबियत मे कोई खुशी नही होती थी। धीरे-धीरे मैं और भी अधिक मौन रहने लगा। पद्य की अपेक्षा गद्य को पसन्द करने लगा।

मेरी कल्पनाओ मे अब वह उमग और मस्ती नहीं रही है। ऐसा लगता है मानो एक एक मंजिल तक पहुँचने पर पथिक को अब आगे बढ़ने की लालसा नही रही। अब तो कभी कोई भाव अधिक ज़ोर लगाता है तो गीत लिख देता हूं। "सात सौ गीत" के निर्माण को लगभग पाँच वर्ष बीत गए। इस बीच के

गीतो की सख्या मुझे अधिक मालूम नही होती है। पुरानी प्रेरणाये अब केवल एक स्वप्न की भाँति याद आती हैं। अब मेरे लिखने मे वह तन्मयता नहीं रही।

मैने लखनऊ छोड दिया। एल-एल. बी. में फेल हो गया था। एम. ए. में भी विशेष आशा न थी किन्तु भाग्यवशात् तृतीय श्रेणी मिल गई। कुछ ही समय बाद मै सिकन्द्राबाद (बुलन्द शहर) मे अंग्रेजी का लेक्चरर हो गया। दो वर्ष तक वहीं रहा। सोच लिया था कि जिन्दगी अभी बहुत बाकी है। पुस्तक कभी न कभी तो निकल ही जायेगी। एक दिन मैंने सोचा कि अपना लक्ष्य तो पूरा हो ही चुका है और अब पहले की तरह बच्चा भी नही रहा। अतः पिता जी को क्यो न सूचित कर दूँ। मेरी नौकरी लग जाने के बाद वे मुझे कुछ सयाना समझने लगे थे। एक दिन मैंने कलम हाथ मे लेकर एक पत्र मे अपना सारा कच्चा चिट्ठा उन्हे लिख डाला कि मैने क्या करतूत की है। कुछ दिन बाद उनके पत्रोत्तर से विदित हुआ कि उन्हे मुझ पर कोई विशेप आश्चर्य नही हुआ था। मेरी काव्य रुचि का अप्रत्यक्ष रूप से उन्हे आभास हो गया था। वस्तुत पिताजी को अपने कवि-जीवन का स्वय भी अनुभव था और कवि के उन्मादों से वे अपरिचित न थे। इसी अनुभव ने उन्हे मेरे प्रति मेरी इस भरी जवानी मे कठोरता दिखाने से रोक दिया। इतना ही नही, कुछ दिन बाद घर पहुंचने पर जब उनसे साक्षात्कार हुआ तो वे क्रुद्ध न हुए बल्कि गम्भीर स्वर मे कहने लगे—"मै जानता था कि तुम कविता करने से बाज नहीं आओगे। तुमने अपनी सारी पढ़ाई चौपट कर डाली है। किन्तु, अब तुम सयाने हो। अपना भला बुरा खुद समझ लो। हम कुछ नही जानते। हमने जो कुछ सख्ती तुम्हारे साथ की है वह तुम्हारे भले के लिए की है।" मैंने बडी सन्तोष की सांस ली। जान बची लाखों पाये। इस के कुछ समय बाद, वे मुझसे कभी कोई गीत सुनते भी थे। मेरी कविता उन्हे बिल्कुल पसन्द नही है फिर भी कवि होने के नाते उन्होने यह कभी नही कहा कि तुम्हारी अमुक पंक्ति अच्छी नही है या लाओ मैं उसे सुधार दूँ। मुझे अपने गीतों पर दूसरे व्यक्तियो द्वारा कलम लगाना कतई पसन्द नही है। यह मेरी एक खास आदत है। चाहे मेरी रचना में हजार त्रुटियां हो किन्तु मुझे यह कभी अच्छा नही लगता कि कोई दूसरा कवि तोड-फोड़ कर उसे अपनी इच्छानुसार बनाले। ऐसा करना कवि की प्रतिभा का अनादर करना है। कवि के व्यक्तित्व के अनुसार उसकी रचना में गुण और दोष होते हैं। कविताओ में यदि लोगों की इच्छानुसार हेर-फेर होने लगे तो सारे विश्व के कवियों का कोई निजी व्यक्तित्व ही न रहे।

सिकन्द्राबाद के जीवन मे भी कविता का कुछ वातावरण रहता था।

कभी-कभी वहाँ के छोटे-मोटे कवियो को लेकर हम गोष्ठियाँ और कवि-सम्मेलन किया करते थे और जनता में कवि के प्रति आदर और सद्भावना पैदा करते थे। होली, दिवाली, वसन्त पंचमी, तुलसी जयंती आदि के बहाने लोगो को कविता सुनने के लिए एकत्र कर लेते थे। कभी बुलन्दशहर और खुर्जा जाते थे। सिकन्द्राबाद मे भी मै छात्रावास मे रहा—एम एस. कालिज होस्टल में—किन्तु वहाँ की स्थिति और थी। जिधर जाता, उधर "मास्टर जी, नमस्ते" के मारे नाक मे दम हो जाता। वहाँ एक वर्ष बीतते बीतते मेरे घर (झालावाड) मे एक दु खद घटना हो गई। मेरी छोटी बहिन सौभाग्य कुमारी केवल एक दिन बीमार रह कर चल बसी। उसे धनुपवाय (टिटेनस) हो गया था। मै झालावाड नही पहुँच सका उससे पहले ही वह चिता की लपटों मे विलीन हो गई। अट्ठारह वर्ष की थी। विदुषी परीक्षा की तैयारी कर रही थी। वह कविता बहुत अच्छी समझती थी और पिता जी को कभी उनकी रचनाओं मे सलाह देती थी। मेरी तीनों बहिनों में मुझे सब से अधिक स्नेह उसी से था। उस के जीवन का आदर्श बहुत ऊँचा था। मै तो अपनी सारी साधना के बाद भी उस आदर्श तक नही पहुच पाया। माता जी के सस्कार के कारण कृष्ण-भक्ति की ओर उसका बहुत ध्यान था। यह पुस्तक मैंने उसी की स्वर्गीय आत्मा को भेंट की है—इसलिए नही कि वह मेरी बहिन थी—बहिनें और भी हैं, माँ भी है, बाप भी है। मेरे मित्रो तथा छोटे और बड़े-परिचित व्यक्तियो की सख्या भी काफी है। यह पुस्तक उसे भेंट करने का एक मात्र कारण यही है कि मैंने अपने जीवन मे इतनी महान सुशीलता, पवित्रता और सात्विकता अन्य किसी नारी मे नही देखी है। यह मेरे जीवन का एक सत्य है। प्रत्येक नारी मीराँ नही हो सकती। किंतु आज की नारी मीरां तो क्या, अपने आप को सुशील स्त्री बनाने मे भी अधिक सफल नही हो पाती। मैंने वर्तमान युग की शिक्षित नारी को बहुत ग़ौर से देखा है।

जीवन का चौबीसवाँ वर्ष चल रहा था। सौभाग्य के अवसान के कुछ ही महीनों बाद मेरे जीवन ने दूसरी करवट ली। पिता जी वृद्ध होने के कारण मेरे विवाह के लिए बार-बार आग्रह करते थे और माता जी को तो सारा घर ही सूना लगता था। आखिर जीवन के बंधन से मै कहाँ तक दूर रहता। इधर उधर विवाह सम्बधी पत्र-व्यवहार होने के बाद समाज ने मुझे चौपाया बना ही दिया। ६ मई १९५४ को मेरा विवाह हो गया—जसवंत कुँअर राठौर से। वह जयचंद के वश की है और मैं पृथ्वीराज के वंश का। गुजरात के एक बड़े जागीरदार की लड़की होने पर भी मेरी पत्नी हिन्दी की दुनियाँ से अपरिचित हैं।

पाठक उसकी विद्वता का नमूना इसी वाक्य मे पा जायेगे जब उसने प्रथम रात्रि मे मुझसे कहा था—"डीयर ! हम तुमसे बहुत प्रेम करता है।"

कुछ क्षण तो मै अवाक् सा रहा। फिर मैंने भी सोच समझ कर कालिदास की तरह उत्तर दिया—"अगर तुम प्रेम करता है तो हम भी प्रेम करती है।"

शादी के कुछ ही दिनो बाद मुझे लोक-सभा मे अनुवादक का स्थान मिल गया और अब पिछले दो वर्षो से अपनी समस्त शक्तिया देश-सेवा मे लगा कर मै राजधानी मे ही अपना पेट पाल रहा हूँ। मैने अपने जीवन मे अर्थ की कभी परवाह नही की। यह मेरे जीवन का एक अभिशाप ही कहलायेगा। मै समझता हूँ कि रुपया, केवल वस्तुओ के आदान-प्रदान के लिए, मानव-निर्मित एक साधन मात्र है। विश्व का यह दुर्भाग्य है कि आज रुपया मानव से भी अधिक महत्व पा रहा है। इसीलिए मैंने अपने गीतों मे मानवता की आवाज लगाई है। देखना है कि यह आवाज कहाँ तक गूंजती है।

अत मे, मैं श्री रूपनारायण पाण्डेय, डॉक्टर बहादुर चद छाबड़ा, डा० प्रभातचन्द दास और राजकुमार डॉक्टर रघुवीरसिह जी का हृदय से आभारी हूँ जिन्होने मेरे गीतो के प्रति अपनी बहुमूल्य सम्मति देकर मुझे अनुग्रहीन किया है।

दिल्ली
२७ मई, १९५६

माधव सिह 'दीपक'

मेरी छोटी बहिन

कुमारी सौभाग्य की दिवंगत आत्मा को

सस्नेह समर्पित

स्वर्गीय सौभाग्य कुमारी देवी

चल बसी सौभागिनी तू ।

वर्ष अट्ठारह हुए बस, प्राण तूने छोड़ डाले,
इस अभागी मेदनी से, मोह सारे तोड़ डाले,
रूठ कर झूठे-जगत से, रे सदा को तू गई है,
मानवी इस विश्व से ऐसी घृणा तुझ को हुई है,
क्या कहूँ तेरे लिये यह मूक जिह्वा क्या कहेगी,
वस्तु जग की कौन उपमा, रे कभी क्षमता करेगी,
स्वच्छतम तेरी कथा नभ की नदी की बाट जैसे,
वन्दनीया पूज्य गीता के अठारह पाठ जैसे,
तू अकेली ही जली, नभ की शमा तक कौन जाये,
कौन ऐसी दिव्य कन्या से अधर अपने लगाये,
राग भी तूने न जाना, चल बसी बैरागिनी तू ।
नाम ही "सौभाग्य" पाया, तू कहाँ हतभागिनी थी,
भक्ति में डूबी हुई नित, ईश की अनुरागिनी थी,
एक मीराँ ने प्रथम भौतिक पती का प्रेम पाया,
किन्तु केवल ब्रह्म से तूने हृदय अपना लगाया,
तू अमर है विश्व में जब तक कवी की आह जीवित,
बधु-भगिनी का जगत में, पुण्यतम निर्वाह जीवित,
मैं अवस्था में बड़ा था, किन्तु तू मुझ से बड़ी थी,
ओ कनिष्ठे ! ज्येष्ठ तू ही, साधना तेरी बड़ी थी,
पाँव पड़ती थी कहाँ तू; पाँव मैं पड़ता रहूँगा,
सृष्टि में प्रतिबिम्ब तेरा, देख हँसता ही रहूँगा,
सुन सकूँगा मैं युगों तक, मौन ऐसी रागिनी तू ।

विषय-सूची

प्रथम खड-ज्योति

द्वितीय खण्ड-पिपासा

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

तृतीय खंड-लो हम भी हँसें

चतुर्थ खण्ड—कसौटी

पंचम खण्ड–प्रेयसी की याद में

षष्ठ खण्ड–निर्झर

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

सप्तम खण्ड—माँझी

प्रथम खण्ड

ज्योति

दो शब्द

प्रिय पाठक गण !

मै ही क्या, और मेरी 'ज्योति' ही क्या—एक क्षीण सी आभा जिसके होने न होने मे, कोई अन्तर नही जान पड़ता—एक मन्द सा प्रकाश जिसका आलोक की अनन्त राशि मे कोई अस्तित्व प्रतीत नही होता—एक प्रथम निष्फल सा प्रयास जो विशेष लाभकारी सिद्ध होता दिखाई नही देता। अनेक बड़े-बड़े इलेक्ट्रिक बल्बो के होते हुए भी, यदि यह मेरी क्षीण स्वाभाविक, टिमटिमाती हुई 'ज्योति' अंधकार के किसी कोने की किसी रेखा को किसी सीमा तक दूर करने में कुछ भी सफल हुई तो मैं अपना उद्देश्य सफल समझूँगा। किमधिकम्।

'दीपक'

ज्योति

(१)

मुझको अपनाना आता है !
नित आहें भरने वालों की,
तिल तिल कर जलनें वालों की,
मानव के भावुक अन्तर की, चिर प्यास बुझाना आता है ॥
तन मन हारे सारे फिरते,
दर दर मारे मारे फिरते,
ऐसे आकुल दीवानों को, सन्तोष दिलाना आता है ॥
आजीवन मधु पीते रहते,
वे फिर भी प्यासे ही रहते,
मधु बिना पिलाये ही मुझको, उन्मत्त बनाना आता है ॥
कोई भी अजमा कर देखे,
मेरे दर पर आकर देखे,
उजड़े उपवन में भी मुझको, फल फूल लगाना आता है ॥

(२)

मै कविता करने बैठा हूँ !
कोई स्वीकार करे न करे,
जग मुझसे प्यार करे न करे,
मैं अपने जीवन को, जग को नित अर्पण करने बैठा हूँ ॥

पागल जग क्या मान सकेगा,
मुझको क्या पहचान सकेगा,
अपने आँसू की बूँदों से, मै गाथा लिखने बैठा हूँ ।।
मतवाला हो आयु गँवाकर,
नित दुक्खों के धक्के खाकर,
देखो, अपना सर्वस्व मिटा, अब धूल उडाने बैठा हूँ ।।

(३)

देखो आया है मधुर प्रात !
श्यामा के मीठे गान भरा,
कोयल की मादक तान भरा,
कलियाँ खिल खिल कर मुस्काईं, झर पड़े विटप से जीर्ण पात ।।
दर दर की ठोकर खाने को,
दर दर पर दाने दाने को,
चल पड़ा भिक्षु लेकर झोली, लखकर अपने दुख का प्रभात ।।
सुख के सपनों में गड़ा हुआ,
मैं हूँ शय्या पर पड़ा हुआ,
हा, भिक्षुक बन मानवता का, मै भी क्यों नहि हो गया साथ ।।

(४)

मैंने क्यों रोना नहिं सीखा ?
देख देख जग की नश्वरता,
मेरा मन क्यों नहीं पिघलता,
क्यों तरु के सूखे सुमन सदृश, मैंने मुरझाना नहिं सीखा ?
सारी दुनियाँ रोती रहती,
अपना सब दुख कहती रहती,
क्यों पानी के सँग पानी बन, जग में मिल जाना नहिं सीखा ?

रो रो कर दुख कम कर सहता,
मैं भी जी हल्का कर सहता,
हा क्यों विरही के अश्रु बिंदु, मैंने ढलकाना नहि सीखा ?

(५)

क्रन्दन तारकगण भी करते !
नीरव निशीथ में जाग जाग,
रोते रहते ये मन्द-भाग,
परिवर्तित हो, बन ओस बिन्दु, आँसू इनके भू पर पड़ते ॥
चिन्तन कर अपनी नश्वरता,
अवलोकन कर क्षणभंगुरता,
अपनी पीड़ा को लिये हुए, परिवर्तन अम्बर में करते ॥
लोहे के चने चबें कैसे,
इनसे सब कष्ट मिटें कैसे,
ये वृद्ध व्योम के क्षीण दन्त, पीड़ा पाते ही गिर पड़ते ॥
दुख के दीपक दुखिया के यें,
अविरल आँसू अबला के ये,
ये नभ-उपवन के मधुर सुमन, मुरझा मुरझाकर झर पड़ते ॥

(६)

रे मैं मरघट का तरु होता !
नित निरख मृत्यु का नग्न नृत्य,
लखकर नश्वर तन का असत्य,
धू धू करती ज्वालाओं को, हा देख देख मैं भी रोता ॥
लोगों को लख क्रन्दन करते,
आकुल होकर आहे भरते,
अपनी छाया में बैठाकर, मैं आश्वासन देता होता ॥

सेवा मरघट में भी करता,
जग के आँसू पोंछा करता,
दुख मैं ही जब सब सह लेता, वह दिन कितना अच्छा होता ॥

(७)

मानव ! क्यों आग लगाता है ?
धू धू करती चिता जल रही;
लपटें चारों ओर बढ रहीं;
आहें अबला की गूँज रही, तू अट्टहास करता जाता है ॥
क्या राख बनाकर पाएगा,
रे तू भी क्या बच जाएगा,
तेरा सब कुछ धीरे-धीरे, नित मिट्टी होता जाता है ॥
क्यों अपना संहार कर रहा,
अपने पग पर वार कर रहा,
कर्त्तव्य भूल. पागल, क्यों निज, घर में ही आग लगाता है ॥
रे मिट्टी होने से पहले,
मिट्टी के पुतले कुछ करले,
तू आग बुझाने के बदले, क्यों और अधिक सुलगाता है ॥

(८)

रे जग को मैं क्या सिखलाऊँ ?
दुनियाँ की झंझट में फँसकर,
खोया जीवन सुख दुख सहकर,
सीखा नही स्वयं ही कुछ भी, कैसे औरों को सिखलाऊँ ?
झर पड़ते तरु से पात यहाँ,
होती नित रात, प्रभात यहाँ,
स्वयं विमुक्त कहाँ तब कैसे, जन्म–मरण का भेद बताऊँ ?

है जीवन में क्या सार यहाँ,
इस जग अनन्त का पार कहाँ,
मैं पाकर नश्वर देह स्वयं, कैसे अनश्वर गीत गाऊँ ?

(९)

मनुज ! क्यों अभिमान करता ?
तू तनिक नव देह पाकर
प्रचुर धन ऐश्वर्य पाकर,
भ्रमर सा उन्मत्त बन, क्यों रूप मधु का पान करता ?
हो प्रमत्त प्रलाप करता
तुच्छ तू सबको समझता,
गर्व कर क्यों निज उदय पर, वृथा अपना मान करता ?
अखिल जग तू गर्व तेरा,
रूप, धन, ऐश्वर्य तेरा,
हैं क्षणिक फिर क्यों अरे तू , व्यर्थ इनका गान करता ?

(१०)

झर पड़ा विटप से जीर्ण पात !
पीला पड़ पीड़ित नित भय से
ले विवश विदाई किसलय से,
गिर पड़ा, न सँभल सका उससे, निज, वायुवेग से, क्षीणगात।
होते रहते नित परिवर्तन,
कर जाते सब क्रीड़ा नर्तन,
आता क्रम से पतझड़ वसन्त, होते नित ही हैं दिवस रात ॥
पत्ते नित गिरते ही रहते,
नश्वरता बतलाते रहते,
फिर भी नर तजता पाप नहीं, यद्यपि है अपना अन्त ज्ञात ॥

(११)

मैंने नर को मरते देखा !

कुछ जन ममूह था खड़ा हुआ, कंकड़ पत्थर पर पड़ा हुआ,
कल एक व्यथित भिक्षुक मैंने, अन्तिम आहे भरते देखा ॥
कैसी पीड़ा थी साँसों में, थे अश्रु दीन की आँखों में,
क्या भूल सकूँगा जीवन मे, निज जलकण को ढलते देखा ॥
भिक्षुक ने कुछ पानी माँगा, पी नहि वह भी सका अभागा,
मैंने, सबने सहसा उसका, प्राण पखेरू उड़ते देखा ॥
बिखरे थे झोली के दाने, कुछ पक्षी आ बैठे खाने,
अब लोग लगे थे जाने, सब को खेद प्रगट करते देखा ॥
थीं नसें खिचीं उसकी सारी, पल में उड़ गई ज्योति सारी,
उस जीवित काया को मैंने, सहसा मिट्टी होते देखा ॥
है जीवन कितना क्षणिक अरे, दो श्वासों मे मिट गया अरे,
हा मानव का वश कहाँ यहाँ, पीड़ा किसको हरते देखा ॥

(१२)

कुम्भकार ने कुम्भ बनाया !

बड़े यत्न से उसे बनाया, सुन्दर ढँग से उसे सजाया,
लेकर उसे बेचने को वह, क्रय विक्रय थल पर ले आया ॥
इक बाला के वह मन आया, था सहसा उसे दृष्टि आया,
ले लेने को तब मोल उसे, झट उसने उसको ललचाया ॥
घर चली शीघ्र उसको लेकर, वह मृदुघट निज सिर पर धर कर,
बाला जा पहुँची पनघट पर, सिर पर भर कर उसे चढ़ाया ॥
कोमल हाँथों से छट गया, रे सहसा वह घट फूट गया,
"मिट्टी मिट्टी से मिली और पानी पानी में पुनः समाया ॥"
रह गई अवाक् सी वह तकती, फिर चली गई हँसती-हँसती,
कहा, और घट ले लेंगे, केवल किंचित् सा क्लेश मनाया ॥
था चिन्तन में मैं गड़ा हुआ, था सोच रहा मैं खड़ा हुआ,
हा जग में कितने घट फटे, कितनों को नित गया बनाया ॥

(१३)

व्याध हँसा मृग को लख फँसता ।

उलझे थे सींग लताओं से, नूतन कोमल शाखाओ से ।
था विवश खड़ा वह फँसा हुआ, नैराश्यपूर्ण आहें भरता ।।

अन्तिम आहें भरने पहले, अन्तिम श्वास निकले पहले ।
अति दीन स्वरों मे वह रोया, रह•रहकर कर्मो पर पछता ।।

रे प्रतिदिन कितने मृग फँसते, शाखाओं से नित्य उलझते ।
मानव मृग भी सत्वर फँसता, नित नर्तन क्रूर काल करता ।।

जिनका होता है स्वाभिमान, अनुरक्ति-विरति वे ही विषाण ।
हा, यौवन-वन में उलझाते, रे क्या कोई है बच सकता ।।

घुसना ही है वन में पड़ता, फँसना ही है सब को पड़ता ।
रोना ही है उस पर पड़ता, जिस पर मानव रहता हँसता ।।

(१४)

क्यों नर का विकास होता है ?

जीवन का वसन्त आ जाता, नर, मद से कुछ जान न पाता ।
पर विनाश को ही विकास, प्रतिदिन मानव का होता है ।।

अपनी चिर क्षुधा बुझाने को, अपनी ही भेंट चढ़ाने को ।
नित्य विकास प्रकृति द्वारा, बलि के पशु सा जन का होता है ।।

निज तृप्ति को संहार करती, उदर पूर्ति शोणित से करती ।
पर धीरे धीरे गर्दन पर, क्यों वार प्रकृति का होता है ?

क्यों न नाश सहसा कर देती, क्यों पीड़ा पहुँचाती रहती ।
जला जला कर तिल तिल नित, क्यों सर्वनाश उस का होता है ?

पहले प्रतिदिन खिला खिला कर, तब फिर क्यों तड़पा तड़पा कर ।
बीते दिन पर रुला रुला कर, हा विनाश उसका होता है ।।

(१५)

मानव ! क्यों निन्दा करता है ?
क्या दोष हीन कोई मानव है,
किस में छिपा नही दानव है,

मानव होकर मानव के प्रति, क्यों दिखलाता दानवता है ?

होते दिवस रात जग में है,
गुण अवगुण जब सब ही मे हैं,

तब तेरा चित क्यो उल्लू सा, अंधकार को ही तकता है ?

रे जो जैसा है, वैसा है,
यह द्वेष परस्पर कैसा है,

दो श्वासों के जीवन में क्यों, बीज बुराई का बोता है ?

(१६)

माली तरु को सींच रहा था ।
उजड़े उपवन को निरख निरख,
फूटी किस्मत पर विलख विलख,

नीर भरी गगरी ला ला कर, पौधों को वह सीच रहा था ।।

जल कण जब तरु पर गिरते थे,
आँसू भी झर पड़ते थे,

आकुल होकर वह पीड़ा से, आँखे अपनी मीच रहा था ।।

तरुवर कितने सूखे उसके,
मृदु फल कितने टूटे उसके,

मन मे अपने सोच सोच वह, लम्बी साँसे खींच रहा था ।।

(१७)

मैं झूले में झूल रहा था !

था वायुवेग से वह आता, अत्यन्त तीव्रता से जाता,
बड़ी देर से झूले मे मतवाला सा मै झूल रहा था ॥

सहसा मैंने जोर लगाया, कम्पित होकर तरु घबराया,
शाखा ही वह टूट गई, जिसके बल पर मै झूल रहा था ॥

था उत्सुक चढने को जितना, आया नीचे ही को उतना,
गिरने पर मुझको ज्ञात हुआ, कितना अपने को भूल रहा था ॥

था धूलधूसरित पड़ा हुआ, तब बड़ी देर में खड़ा हुआ,
फटकार अरे निश्वासें ले, मै सारी अपनी धूल रहा था ॥

मै था कुछ-कुछ घबराया सा, कुछ पछताया शरमाया सा,
मस्ती दूर हुई पल में जिस पर मै इतना फूल रहा था ॥

(१८)

भ्रमरो ! क्यों रोते फिरते हो ?
क्यों इत उत नित उड़ते फिरते,
आकुल हो मँडराते रहते,
सूखी लतिका को निरख-निरख, क्यों क्रन्दन करते फिरते हो ?

नीरस जग में सम्मान अरे
हा सुमन बिना अब कौन करे,
दर दर की ठोकर खाकर निज, आदर क्यों खोते फिरते हो ?

कौन सुनेगा कथा तुम्हारी
कौन सुनेगा व्यथा तुम्हारी,
क्यों तुम बहरे जग के आगे, प्रतिदिन सिर धुनते रहते हो ?

करो प्रतीक्षा फिर वसन्त की,
करो कल्पना सुख अनन्त की,
जो चले गये सो चले गये, क्यों कातर होते रहते हो ?

(१६)

मैने एक चित्रपट देखा !
चित्र कई परदे पर आते,
हँस हँसकर सहसा छिप जाते,

गाथा कहते, रोते, गाते, करते क्रीड़ा नर्तन, देखा ।।

मैं देख देख तल्लीन हुआ,
उनके सुख दुख मे लीन हुआ,

जो देखा हठात्‌विलीन हुआ, सन्मुख पुनः शून्य पट देखा ।।

सोचा जीवन एक चित्र है,
यहाँ किसी का कौन मित्र है,

इस चलती फिरती छाया मे, मैंने कुछ अस्तित्व न देखा ।।

(२०)

जा रही मेरी जवानी ।
है बिना श्रम, प्राप्त दुख जब,
नियति की इच्छा यही तब,

वेदना से पूर्ण होकर, क्यों व्यथा अपनी सुनानी ?

सुखद क्षण तो हैं बहुत कम,
श्याम घन में तड़ित के सम,

विश्व मे तब क्या करूँगा, छोड़कर सुख की निशानी ?

द्रुत गति की परवाह नहीं,
केवल मेरी है चाह यही,

कर्मरत ही रहे यह, सुख-दुख भरी मेरी जवानी ।।

(२१)

हा, मै जी भरकर गा न सका।

नित सुख-गीतों से कम्पित हो,

झंकृत की थी स्पन्दित हो,

पर मन—वीणा ही टूट गई, कुछ क्षण भी इसे बजा न सका।

उन्मत्त, घटा के साथ हुआ,

पर स्वांति विदु नहि प्राप्त हुआ,

रे आकुल चातक सा मै भी, प्यासा था प्यास बुझा न सका।

जीवन टूटा सपना निकला,

जो सोचा था झूठा निकला,

हा सुख पाने की लिप्सा से, मै दुख को भी अपना न सका ॥

(२२)

अपने को पहचान न पाया।

अति निकट ही पानी भरा था,

देख न सका अधिक गहरा था,

मृग—तृष्णा से आकुल हो अन्वेषण में सब समय गँवाया ॥

मतवाला हो मधु पी पी कर,

उन्मत्त भ्रमर मैने बन कर,

क्यों पुष्प—पटल में अपने को, हा शिथिल हो बन्दी बनाया ॥

सुख पूर्ण करने को जवानी,

मैने जगत की राख छानी,

अपने ही में सब कुछ था, कुछ नही समझ मैने ठुकराया ॥

(२३)

जग में कुछ भी नही सुहाता !

कोई के दिल मे प्यार नही, नीरस जग मे कुछ सार नही,
जिधर देखता हूँ रूखा ही, रूखा उधर दृष्टि ग्राता ॥
नित सब को बक ध्यान लगाए, मानवता को दूर भगाए,
मतलब पर दाँत लगाए, माला पैसे की जपते पाता ॥
शुचिता है किसके पास यहाँ, इतना नर को ग्रवकाश कहाँ,
जो परम नीचता बतलाता, वह ही सबके सिर चढ़ जाता ॥
भलमनसी से रूठे रहते, सब झूठे ही झूठे रहते,
मन मे ग्रौर, ग्रौर कुछ मुँह में, कर्म ग्रौर ही करते पाता ॥
बाहर बने बनाए रहते, मन मे सब मुरझाए रहते,
रे हँसने वाला नहि मिलता, यद्यपि हँसते सबको पाता ॥

(२४)

चिड़ियाँ क्या गाती रहती है ?
क्यों सब मिलकर चहचाती है,
नहि साफ साफ समझाती हैं,
कुछ समझ नहीं पड़ता ये कैसा राग सुनाती रहती हैं ?

किसे रिझाने को यौवन पर,
ग्राती जाती हैं इठला कर,
इनकी न ग्ररे सुनता कोई, क्यों नित मुसकाती रहती हैं ?

दुनियाँ जब बहरी है इतनी,
तब फुदक फुदक कर ये इतनी,
मदभरे गीत ग्रस्फुट स्वर मे, क्यों प्रतिदिन गाती रहती हैं ?

(२५)

नित एक भिखारिन आती थी ।

प्रतिदिन आकर मेरे दर, कुछ गा गा कर मेरे दर पर ।
अपनी चिर क्षुधा बुझाने को, खाने को कुछ ले जाती थी ॥

अपने कन्धे से लटकाए, अपनी छाती से लिपटाए ।
वह फटी पुरानी झोली को, प्रतिदिन अपने सँग लाती थी ॥

थे शिथिल बने सब अंग अंग, अवशेष न थी कोई उमंग ।
मुँह फाड़े जीर्ण लेखनी सा, अस्फुट स्वर में कुछ गाती थी ॥

दो दाने मिल जाने पर ही, दो टुकड़े पा जाने पर ही ।
वह जीर्ण शीर्ण कपड़े पाकर, मन में कितनी हरषाती थी ॥

जो रहती आती जाती थी, जो मुझको इतनी भाती थी ।
वह चली गई नश्वर जग से, जो दुख से ही सुख पाती थी ॥

(२६)

मैंने अपना संहार किया ?
सुख की घड़ियों में झूम झूम,
मद के अधरों को चूम चूम,
मादकता की अंगड़ाई ले, मैंने यौवन से प्यार किया ॥

अच्छे पथ को दुख पूर्ण जान,
सुख से परिपूरित कुपथ मान,
होकर यौवन के वशीभूत, इक क्षण का सुख स्वीकार किया ॥

कर्मो का भी ध्यान मुझे था,
निज विनाश का ज्ञान मुझे था,
फिर भी कुठार लेकर हाथों, अपने ही पग पर वार किया ॥

(२७)

रे मैं मानव नहिं बन पाया !
प्रतिदिन दुसह वेदना पाकर,
अब तक इतनी ठोकर खाकर,
मै प्रबल अग्नि में तपकर भी, रे क्यों कुंदन नहिं बन पाया ॥
पागल था सुख पर हँसता था,
निज दुख पर रोता रहता था,
हँसते रोते रहने पर भी, क्यों हँसना रोना नहिं आया ॥
यह सारा सुख जब धोखा था,
तब सुख से दुख ही अच्छा था,
नित सुख-दुख में रह कर भी, पहचान न सुख-दुख को पाया ॥
दुख के बदले सुख को लेकर,
अपना असीम सुख ठुकरा कर,
दुख सुख न जान, कर्त्तव्य भूल, जीवन सब बेकार गँवाया ॥

(२८)

मैं अपने को सुलझा न सका ।
नित सुलझ सुलझ मै उलझ गया,
नित बन बन कर मैं बिगड़ गया ।
नित समझ समझ मै भूल गया,
अपनेपन को अपना न सका ॥
सब कुछ ही भाग्य विरुद्ध किया,
अपने कर्मों से युद्ध किया ।
फिर भी परास्त ही रहा अरे,
मैं यौवन का सुख पा न सका ॥
इच्छा थी कष्ट मिटाने की,
सरिता से बाहर आने की ।

पर वह तट ही हा टूट गया,
उस पार अरे मैं जा न सका ।।
झंकृत करने की इच्छा थी,
कुछ गा लेने की इच्छा थी ।
थी पास पड़ी वीणा मेरे,
मैं फिर भी उसे बजा न सका ।।
नित जम जम कर मैं उखड़ गया,
नित बस बस कर मैं उजड़ गया ।
नित सँभल सँभल मैं फिसल गया,
हा ! अपने पथ पर जा न सका ।।

(२६)

मैं गाना रोना क्या जानूँ ?
कैसे गाऊँ कैसे रोऊँ,
कैसे पाऊँ कैसे खाऊँ,
मैं जलना बुझना क्या जानूँ खिलना मुरझाना क्या जानूँ ?
जग गाता है सुख पाने पर,
पछताता है दुख पाने पर,
मैं खिल खिल हँसना क्या जानूँ, मैं आहें भरना क्या जानूँ ?
सुख दुख ही समझ नही पाता,
कर्त्तव्यों को करता जाता,
चला जा रहा गिरता उठता, पथ मे रुक जाना क्या जानूँ ?

(३०)

रे मधुकर मैं भी बन जाऊँ !
जीवन में प्रतिक्षण मुस्काऊँ,
मादक स्वर में प्रतिदिन गाऊँ,
उत्सुक कलियों से मिलने को, डाली डाली पर मँडराऊँ ।।

आजीवन उपवन मे डोलू ँ,
कलियों से जी भर कर बोलू ँ,
नित संध्या को पखड़ियों मे, सोकर अपने को बिसराऊँ ।।
उजड़ा उपवन में लख न सकूँ,
सिर धुनधुन नित्य बिलख न सकूँ,
कलियों सँग गिरकर चाहू यही, मै भी मिट्टी मे मिल जाऊँ ।।

(३१)

अब क्या न होंगे स्वप्न पूरे ?
जिन स्वप्नों को मैने पाला,
घायल उन ने ही कर डाला,
कर दिया मुझे पूरा फिर क्यों, स्वयम् बने हैं अभी अधूरे ?
था जिनसे मैंने प्यार किया,
उन ने ही मुझ पर वार किया,
अपनों से ही धोखा खाकर, अपनी व्यथा किससे कहूँ रे ?
अपने ही दीपक से जलकर,
अपने घर को मिटते लखकर,
अपनी दुनियाँ लुटते रहने पर भी मैं आकुल क्यों न बनू ँ रे ?

(३२)

लो अब अपने घर लौट चलें ।
सोचा था कुछ पा जाऐंगे,
कोई हम को अपनाऐंगे,
पत्थर रख अपनी छाती पर, अब दिल पर सहकर चोट चले ।।
जीवन भर घर-घर भटक लिये,
नित दर-दर पर सिर पटक लिये,
पर प्रेम-भीख कुछ नहीं मिली, अब जग से नाता तोड़ चलें ।।

चाहे सारे दुख पाए हों,
चाहे जग ने ठुकराए हों,
पर दुखी बनाने जगको भी, अभिशाप अरे क्यों छोड़ चलें ॥

(३३)

कोयल ! विरह-गीत क्यों गाती ?
बोली सुन दुखिया की छाती,
विरह वेदना से भर जाती,
पर सुख-दुख का ध्यान न धर, क्यों उसको पीड़ा पहुँचाती ?
है कुछ भी नहि लाभ रुदन में,
आकर्षण होगा किस मन मे,
सब को मतलब की पड़ी यहाँ, तू क्यों फिर अपना कंठ सुखाती ?
विरहिन की तू परवाह न कर,
आकर्षण की भी चाह न कर,
रहती गाती, हाय ! तुझे भी, याद किसी की है क्या आती ?

(३४)

जग में किससे प्यार करूँ मै ?
नहि कोई साथी मतवाला,
नहि दो बातें करने वाला,
इस सूने जीवन मे कैसे, रे यौवन अभिसार करूँ मैं ?
कौन इसे स्वीकार करेगा,
निज सिर पर क्यों भार धरेगा,
नीरस जग में किसके आगे, रे अपना उपहार धरूँ मैं ?
पत्थर से क्या प्यार मिलेगा,
क्योंकर मेरा भाग्य खुलेगा,
तब फिर आजीवन दुख ही को, क्यों नहि अंगीकार करूँ मैं ?

(३५)

रे पागल मैं भी हो जाता।

मुझको अपना क्यों ज्ञान हुआ, अपनेपन का क्यों ध्यान हुआ।
क्या ही अच्छा होता यदि मैं, शिशु सा अबोध ही रह जाता॥

होकर स्वच्छन्द विचरण करता हो मस्त सदा गाता रहता।
होठों से लगा प्रेम प्याला, मतवाला मैं भी हो जाता॥

यदि कोई साथी नहि मिलता, अपने से ही बातें करता।
मैं खड़ा खड़ा हँसता रहता, यदि जुल्म अरे जालिम ढाता॥

जीर्ण वस्त्र तन से लिपटाकर, नित दर दर की ठोकर खाकर।
रूखे सूखे टुकड़े पाकर, सब जग का वैभव ठुकराता॥

दुख की ज्वाला मे दहकर भी, पत्थर की वर्षा सहकर भी।
पागलखाने में रहकर भी, मैं त्रिभुवन का सुख पा जाता॥

(३६)

मन ! कुछ कुछ क्यों आज मचलता ?
चिर दुख में भी रह कर प्रशान्त,
क्यों आज हो रहा तू अशान्त,
हो रही वृथा ही किस निमित्त, तेरी गति में यों चंचलता ?

सूने अम्बर में आभा सी,
तम के जुगनू की ज्योती सी,
पावस के घन में चपला सी, कैसी तुझ में आज चपलता ?

इस नीरस जग में कौन करे,
तेरी धड़कन का मोल अरे,
फिर चिर स्मृति से आज तुझे, होती इतनी क्यों विह्वलता ?

(३७)

सारा जगत एक हो जाए !
परित्याग भावना कुटिल क्रूर,
कर पृथक् पृथक् अस्तित्व दूर,
राष्ट्र, धर्म, जाति, भाषा और शासन सभी एक हो जाए ।
कोई न किसी का दास बने,
कोई क्यों कभी उदास बने,
प्रेम-सूत्र से जग सारा हो एक, प्रलय से इसे बचाए ।।
वैमनस्य जड़ से मिट जाए,
मानव का दानव दब जाए,
ईसा, बुद्ध, मुहम्मद, गाँधी की आत्मा तभी शान्ति पाए ।।

(३८)

मैंने यौवन लुटते देखा ।
मुठ्ठी भर पैसे पाने को,
अपनी चिर प्यास बुझाने को,
खाने को दाने दाने को, संकेतों पर मिटते देखा ।।
पामर के पद-आघातों से,
पागल दानव के हाथों से,
रे यौवन-मदिरा के प्यालों, को टूट-टूट गिरते देखा ।।
पापी जग के उन्मादों मे,
धनवानों के प्रासादों मे,
शहरों की गन्दी गलियों मे, पैसे-पैसे बिकते देखा ।।

(३९)

मैंने पत्थर से प्यार किया !
पूरी करने आशाओ को,
अपनी सारी इच्छाओं को,
अंजली चढ़ा निज यौवन की, अपना सारा सुख वार दिया ।।

श्रद्धानत हो शीश नवाया,
आगई छींक सिर टकराया,
खुश होकर हृदय-देवता ने, क्या ही अच्छा उपहार दिया ॥
कर्मों का फल मिलता ही है,
बोने पर तरु फलता ही है,
तब क्यों नहि इससे सिर फोड़ूँ, पहले जब नित्य दुलार किया ॥

(४०)

मैंने कितनों से प्यार किया !
कितनों को मैंने हँसा रुला,
कितनों को मैंने खेल खिला,
कितनों को मैंने गले लगा, नित बना गले का हार लिया ॥
कितनों से जी भरकर बोला,
कितनों के आगे दिल खोला,
पर किसने सच्चा प्रेम किया, किसने सच्चा उपहार दिया ॥
कितनों के सँग प्रतिदिन घूमा,
हा, कितने अधरों को चूमा,
फिर भी प्यासा ही रहा अरे, क्यों यौवन का सहार किया ॥

(४१)

मेरा बचपन क्यों चला गया !
क्या था केवल साथी सुख का;
क्या था केवल पंथी दिन का;
मुझको तम में छोड़ अकेला, रे छाया सा क्यों चला गया ॥
मीठी बातों में फुसलाकर,
नित झूले में मुझे झुलाकर,
झोका देकर सहसा दुख का, धोखा देकर क्यों चला गया ॥

बचपन ने भी क्यों खेल किया,
पहले जब स्नेह उंडेल दिया,
तब बुझा दीप मेरे सुख का, रे क्यों छाती को जला गया ॥

(४२)

कलियो ! मुस्काना बन्द करो !
उन्मत्त पवन से कम्पित हो,
नव जीवन से स्पन्दित हो,
डाली डाली पर झूम झूम, अपना इठलाना बन्द करो ॥
मेरी पीड़ा पर ध्यान धरो,
मत निज वैभव का गान करो,
अपनी मस्ती को और अधिक, मुझको बतलाना बन्द करो ॥
रो लेने दो चुपचाप मुझे,
दो मत अब तुम सन्ताप मुझे,
मँडराते मधुकर से मिलकर, अपना इतराना बन्द करो ॥

(४३)

अच्छा, अब हम नहि बोलेंगे !
दुतकारे खाने पड़ते हैं,
धक्के नित खाने पड़ते हैं,
जब सब हम पर थू थू करते, तब हम भी क्यों मुँह खोलेंगे ॥
कष्ट उठाना नहीं पड़ेगा,
क्रोधित होना नहीं पड़ेगा,
मुँह अधिक फेरना नहीं पड़ेगा, मौन स्वयम् हम हो लेंगे ॥

स्वाभाविक कटु वचन हमारे,
तब वे क्योंकर जायँ सुधारे,
अरे मिठास कहाँ कैसे, अमृत हम कानों मे घोलेगें ॥
नहीं सुहाता अगर किसी को,
हम क्यों पीडित करे किसी को,
घर के कोने में बैठ अरे, चुपचाप अकेले ही रो लेगें ॥

(४४)

मैंने निदाघ मे मिट्टी का, जल से, लघु सा, इक पात्र भरा !
मैंने तरु के ऊपर चढकर,
अत्यन्त यत्न से लटका कर,
चिड़ियों की तृषा बुझाने को, मृदु जल से उसका गात्र भरा ॥
उन ने धोखा समझा उसको,
हा कैसे समझाता उनको,
थी आकुल प्यासी घबराई सी, रे फिर भी नहि ध्यान धरा ॥
पापी कौवा इक चुपके से,
पी स्वयम् उड़ा अति झोके से,
जल गिरा दिया सारा उसने, कौवा था, काला कर्म करा ॥

(४५)

मै सागर तट पर बैठा था ।
कुछ जी अपना बहलाने को, कुछ संध्याटन कर आने को,
जलनिधि-क्रीड़ा लख आने को, मैं तट पर कल जा बैठा था ॥
पर जो देखा जी धड़क उठा, दावानल सा में भड़क उठा,
निज तट से टकरा लहरों को, जुल्म बलात् जलधि ढाता था ॥
बेचारी क्रन्दन करती थीं, हा फूट फूट कर रोती थीं,
रो रो कर मिट जाती थी पर अट्टहास वारिधि करता था ॥

जाने कितनी लहरें आईं, तट से आ आकर टकराईं,
मैं देख रहा था खड़ा हुआ, पर बस कुछ भी नहि चलता था ॥
मै मन मसोस रह जाता था, मै दाँत पीस रह जाता था,
तूफान अरे होता यदि मै, तो दुख उनका हर सकता था ॥
प्रलय मचा देता सागर मै, आग लगा देता सागर में,
रे तोड़ फोड़ चट्टानों को, सब गर्व चूर कर सकता था ॥

(४६)

मैने जग को रोते देखा !
मतलब के पीछे पड़े सभी,
परहित को ये तकते न कभी,
मै बिहँस पड़ा जब जग मैंने, अपना रोना रोते देखा ॥
ये आजीवन खाते रहते,
फिर भी सन्तुष्ट नही होते,
मृत पशु पर भूखे गिद्धों सम, नित एकत्रित होते देखा ॥
पर पीड़ा कोई क्या जाने,
मतलब के पीछे दीवाने,
मैने जगरथ को अवनति-पथ, पर द्रुतगति से बढ़ते देखा ॥

(४७)

क्यों काम ! अरे, तू सबल बना !
जब निज तीव्र वार करता है,
क्रोधित हो प्रहार करता है,
हिल उठता तब त्रिलोक कम्पित, होकर इतना क्यों प्रबल बना ?
अँधाधुन्ध क्यों तीर चलाता,
जाने कितनों को तड़पाता,
अपने बल पर क्यो इतराता, देता क्यों सब को निबल बना ?

तेरे अनंग जो तन होता,
कन्दर्प ! दर्प तू सब खोता,
पर छिप-छिप मेरे लिये अरे, हा ! क्यों तू दाहक अनल बना ?

(४८)

कल किसी की याद सताती थी ?
चन्द्रयुक्त रजनी मे, उर में, तम से परिपूरित अन्तर में,
अज्ञात कौन वह परिचित सी, बेरोकटोक आती जाती थी ॥
मै खोज न पाया क्यों उसको, पहचान न पाया क्यों उसको,
कम्पन स्पन्दन युत किमकी, मृदु स्मृति मुझे जगाती थी ॥
अपनेपन का कुछ ज्ञान न था, परिधानों का कुछ ध्यान न था,
होता जाता था बेसुध मै, सुध ज्यों ज्यों बढ़ती जाती थी ॥
क्यों बार-बार वह आती थी, चपला सी छिप-छिप जाती थी,
वह दीप-शिखा सी कौन अरे, बुझते-बुझते जल जाती थी ॥

(४९)

क्यों पद-चिन्हों को छोड़ चलूँ ?
यदि कोई चल बैठा उन पर,
पछताएगा वह जीवन भर,
अवशेषों को, है चाह यही, मै चलने पहले तोड़ चलूँ ॥

कोई भूलेगा भटकेगा,
नित रो रो कर सिर पटकेगा,
लटकेगा भग्न शृंखला सा, क्यों अपनी स्मृति छोड़ चलूँ ॥

कर्मो के फल जो पाये हैं,
धक्के मैंने जो खाए हैं,
वे ही यथेष्ट हैं क्यों कोई, के लिये तनिक भी छोड़ चलूँ ॥

बहती रहती है जल धारा।
कल कल स्वर में गाती रहती,
गिर-गिरकर उठ-उठ फिर चलती,
प्रतिदिन प्रतिपल जीवन-पथ में, बढती रहती है जलधारा ॥

विटपों का आलिगन करती,
जंगल मे नित मंगल करती,
वन के सुमनों से हिल मिलकर, क्रीड़ा करती है जलधारा ॥

चंचल अंचल झलमल झलमल,
कलकल छलछल स्वर से अविरल,
कंपित स्पन्दित हो प्रतिपल, नर्तन करती है जलधारा ॥

जलधारा से उलटा चलता,
नित बढ़ने के बदले हटता,
मैं बैठा रोया करता हूँ, हँसती रहती है जलधारा ॥

(५१)

मैंने अपने से प्यार किया।
वेदना व्यथा सब व्रीड़ा से,
मैंने अपने को पीड़ा से,
जीवन भर दूर रखा दुख से, सुख का प्रतिपाल संचार किया ॥

पर सुख था कितना क्षणिक अरे,
जिसको पाने के लिये अरे,
मै राह सत्य की छोड़ चला, हा क्यो उसको स्वीकार किया ॥

धोखा था मेरा वह सुख सब,
मैं समझ सका यह सब कुछ तब,
जब लौट नही सकता था मै, रे क्यों अपना संहार किया ॥

बस बस उजड़ा मेरा उपवन,
खिल खिल मुरझाया हृदयसुमन,
जब मैंने अपने को गड्ढे, मे गिरने को तैयार किया ।।

(५२)

मै दिन मे भी सो जाता हूँ ।
दिन भर सुस्ती मुझे सताती,
सत्वर नित संध्या आ जाती,
मै अपने जीवन के सारे, दिन यों ही खोता जाता हूँ ।।
क्यों मृत्यु ने घेरा अभी से,
क्यों वश नही निज पर अभी से,
भूल समझता फिर भी नित मैं, वही भूल करता जाता हूँ ।।
चिर, भाग्य में निद्रा लिखी हो,
रे नियति की इच्छा यही हो,
पर जूझ नियति से क्यों नहि मैं, ही अपना भाग्य विधाता हूँ ?

(५३)

मलयपवन बहता रहता है ।
मेरे समीप सहसा आकर,
अस्फुट स्वर मे कुछ गा गाकर,
किस के मौन सदेशे यह चुपके चुपके कहता रहता है ?
सुन सुन पागल मैं हो जाता,
पर समझ नहीं कुछ भी पाता,
कुछ विचित्र ही सुख–दुख की, अपनी गाथा कहता रहता है ।।
अति क्षीण दीप की बत्ती सा,
ऊँची डाली की पत्ती सा,
सुख–दुख के लघु झोकों से मन, भी कम्पन करता 'रहता है ।।

(५४)

आलोचक! क्या तू करता है ?
क्यों डरता है दुतकारो से,
अपमान, मान की मारों से,
पथ में सकट आ जाने से, क्यों रुक कर क्रन्दन करता है ?
क्यों कम्पित होता है इतना,
क्यों शंकित होता है इतना,
क्यों सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के, पथ पर डगमग पग धरता है ?
क्यों शिथिल हुईं तेरी बाहें,
करली नीची अरे निगाहें,
उठ अपनी लेखनि को सँभाल, क्यों ठंडी आहें भरता है ?
करा कराया काज बिगड़ता,
बना बनाया बाग बिगड़ता,
नूतन उपवन के ओ माली ! बैठा क्या सोचा करता है ?

(५५)

मैंने क्यों तुम से प्यार किया ?
मन-मन्दिर में तुम्हें बसाया,
हा, तुम पर सर्वस्व चढ़ाया,
प्राणों से भी बहुमूल्य जान, क्यों तुम से नित्य दुलार किया।
कुछ भी तो नहि सम्मान किया,
आघातों पर नहि ध्यान दिया,
यौवन मदिरा से मस्त देख, तुमने मुझको दुतकार दिया॥
जीवन का संहार करोगे,
मुझ घायल पर वार करोगे,
रे ज्ञात हुआ यह तब मुझको, जब सब कुछ तुम पर वार दिया॥

(५६)

मेरा साथी भी मतवाला।
पागल सा फिरता है वह भी,
घायल सा रहता है वह भी,
जग की आग बुझाने को उसमे भी सुलग रही है ज्वाला ॥
यदि जग मे दुखी नही होते,
तो सुखी अरे किसको कहते,
सब जग को सुखी बनाने को, उस ने भी है दुख को पाला ॥
है ज्ञात मुझे सब सह लेगा,
पर हित पीड़ा को झेलेगा,
धक्कों से वह हिम्मत वाला, पीछे कब है हटने वाला ॥

(५७)

मैं ही मुझको अभिशाप बना।
जिसके बल पर मैं गाता था,
जिसके बल सब ठुकराता था,
करता था जिस पर गर्व वही, यौवन, हा मुझको पाप बना।
यौवन से कितने दुख पाए,
प्रतिदिन कितने धक्के खाए,
वरदान जिसे समझा था मे, हा वही मुझे अभिशाप बना ॥
मैने इस पर विश्वास किया
मैने ही अपना नाश किया,
मैने ही मुझको कष्ट दिया, मै ही मुझको सन्ताप बना ॥

(५८)

प्रेयसी ! यह प्यार कैसा ?
मानकर तुम फूलती हो, जानकर तुम भूलती हो,
पास आना चाहती हो, तो वृथा हठ ठानती हो,
मानकर मुझको रुलाने, का पुराना वार कैसा ?

ठोकरें नित खा चुका हूँ, नित्य शिक्षा पा चुका हूँ,
खूब सब अजमा चुका हूँ, अब अरे घबरा चुका हूँ,
मुझे फाँसी पर चढ़ाने यह कुसुम का हार कैसा ॥
उपंकरण से खीझता हूँ, हृदय पर जब रीझता हूँ,
तब तुरन्त पसीजता हूँ, आसुओ से भीजता हूँ,
वाह्य कृत्रिम यह तुम्हारा, नित नया शृंगार कैसा ॥

(५६)

मै दिन भर हँसता रहता हूँ।
दिल मेरा रोता रहता है,
कम्पन, अन्त सोच करता है,
इसके दुख को दूर भगाने, अट्टहास करता रहता हूँ ॥
जीवन वसन्त मिट जायगा,
जब दुखद ग्रीष्म आजाएगा,
उपवन के मधुर सुमन सा मै, प्रतिदिन ही खिलता रहता हूँ ॥
जीवन दीपक बुझ जाएगा,
जब स्नेहहीन हो जाएगा,
अन्तिम लौ बुझने से पहले, मै हँस हँस जलता रहता हूँ ॥
मुरझाना है तब क्यो न खिलूँ,
बुझना ही है तब क्यों न जलूँ,
रोना ही है तब क्यों न हँसूँ, सोच यही हँसता रहता हूँ ॥

(६०)

मैं शरद-स्नान से डरता हूँ।
शीत, स्नान करने से लगती,
शीतरोग की शंका रहती,
जीवन में पल पल निज सुख पर, सम्पूर्ण ध्यान मैं धरता हूँ ॥

जल-स्पर्श से ही घबराता,
पल भरभी दुख नहि सह पाता,
शीतल जग सी पीड़ा से मैं, सदा तटस्थ रहा करता हूँ ।।
नित कर्मों को नहि कर पाता,
अपने से ही जान चुराता,
परहित कैसे होगा मुझसे, यह बैठा सोचा करता हूँ ।।

(६१)

जो यदि उल्लू मैं भी होता ।
कीड़ों घोंघों को ही खाकर,
सन्तोष पूर्ण जीवन पाकर,
नीरव निशीथ में उड़ स्वच्छन्द, विचरण मैं भी करता होता ।।
सारे जग को तुम पूर्ण जान,
उड़ता करने को सावधान,
पर जग—वैभव से दूर भाग, निर्जन बन में रहता होता ।।
स्वय अँधेरे मे रहकर भी,
जग में नित निन्दा सहकर भी,
जगा जगा कर सोते नर को, नश्वरता पर रोता होता ।।

(६२)

अब मत मुझको हैरान करो ।
मैं ऊब गया आघातों से,
थक चला अरे अब लातों से,
अब मत मुझको तड़पा तड़पा, मेरे शोणित का पान करो ।
कुछ दया करो मुझ पर अब तो,
बेहया बनो मत बस अब तो,
पैरों की ठोकर लगा लगा, अब मत मुझको बेजान करो ।।

रे मै किसके पथ का रोड़ा,
कब किसके स्वप्नों को तोड़ा,
हॅस लेंने दो अब तो थोड़ा, अब मत मेरा अपमान करो ॥

(६३)

मैनें जग से क्यों प्यार किया ?
दानवता दूर भगाने को,
अति सुन्दर इसे बनाने को,
नित उपकरणो से सजा सजा, कर क्यो इसका शृंगार किया ॥
इस पर जिसने विश्वास किया,
रे क्यो उसका ही नाश किया,
था जिसने सर्वस्व लुटाया, क्यों उसका ही सहार किया ॥
थी चाह नही उपहारो की,
परवाह नही दुतकारों की,
पर क्रूर व्याल से इस कृतघ्न ने, हा ! मुझ ही पर वार किया ॥

(६४)

जो प्रथम ही जान पाता !
प्रेम के पथ की जगत में, धूम दी मुझको सुनाई;
जब कभी पूछा किसी से, झट उसी ने की बढ़ाई,
काश कोमल कुसुम–कंटक का किसी से ज्ञान पाता ।
ज्ञात यौवन के सुखद औत्सुक्य से इस मधुर पथ पर,
पर क्षितिज से दूर, पचाली-वसन से अगम पथ पर;
चरण रखने से प्रथम ही, काश मुझ को ध्यान आता ॥
अब पलटना है असम्भव, दॉव चौसर पर पड़े है;
मै न बढ़ने में हिचकता, पॉव जिस पथ पर धरे है,
खेद है पर क्षणिक यौवन, का मुझे नित ध्यान आता ॥

यह अमर सुख प्राप्त कर भी, कौन सुख से रह सका है,
कौन परवाना शमा के पास जीवित रह सका है;
काश, मैं इस मधुर विष को, प्रथम ही पहचान पाता ।।

(६५)

बरसो मत मेघ अभी भू पर ।
ज्वाला धधक उठेगी मेरी,
छाती भभक उठेगी मेरी,
जल थल को भस्मीभूत बना, जाएगी तुम से भी ऊपर ।
सहसा क्यों आग लगाते हो,
जग मे क्यों प्रलय मचाते हो,
जलने दो तिल तिल कर मुझको, क्यो संकट लाते हो भू पर ।।
आँसू मेरे रुक जान दो,
ईंधन मेरा जल जाने दो,
बुझते देखो तब ढलकाना, छोटी बूँदें मेरे ऊपर ।।

(६६)

मुझको सपने आते रहते ।
मन मे सहसा उठती उमंग,
टकरा कर होती पुनः भंग,
ये सागर की चंचल तरंग सम नित आते जाते रहते ।
अज्ञान तिमिर मे हो विलीन,
अपनेपन से होता विहीन,
ये तब वैभव की निन्द्रा में, सोते देख जगाते रहते ।।
स्खलित सुमन से मिट जाते,
तन की नश्वरता बतलाते,
टूटे सपने अन्तिम क्षण के, मौन संदेशे लाते रहते ।।

(६७)

मन से बात किया करता हूँ।
यदि सत्कर्म हाथ में लेता,
मन मुझको प्रोत्साहन देता;
परामर्श लेकर इससे मैं, काम समस्त किया करता हूँ॥
जो कुमार्ग पर चरण बढ़ाता,
मेरा मन मुझको समझाता;
कथन मान कर इसका तब मैं, उसको छोड़ किया करता हूँ॥
परम हितैषी साथी के सम,
तम के भीतर ज्योती के सम,
जीव कौन यह जिससे मिलकर, मैं आलाप किया करता हूँ॥

(६८)

वीणा भी क्यों मचल रही है।
झंकृत कब से है ज्ञात नहीं,
रुकने की करती बात नहीं,
मेरी अन्तर वीणा से आवाज़ स्वयम् ही निकल रही है॥
जग कहता, तू क्यों गाता है,
क्यों हँसता है, पछताता है,
अरे कहाँ गाता हूँ मैं, रागिनी स्वयम् ही निकल रही है॥
कैसे स्पन्दन को रोकूँ,
मैं कैसे क्रन्दन को रोकूँ,
टूटे तारों से भी तो, झंकार स्वयम् ही निकल रही है॥

(७१)

जग में सुन्दरता बिखरी है।
सौन्दर्य विश्व में व्याप्त हुआ,
मानव को भी कुछ प्राप्त हुआ,
अद्भुत कला रचयिता की, जग के कण कण में बिखरी है ॥
पर नहीं सभी में है स्पन्दन,
रे कितने से सुनते धड़कन,
दूर दूर सब नश्वर भी तब, क्यों रूप पर आसक्ति दी है ॥
व्यर्थ किया श्रम शिल्पकार ने,
निराकार उस कलाकार ने,
पत्थर की प्रतिमाओं में, क्यों इतनी सुन्दरता भर दी है ॥

(७२)

जो जग निर्माता को पाऊँ ?
नित गुड़ियाँ नूतन रच रच कर,
तोड़ डालता खेल खेल कर,
कान मरोड़ अनश्वर का, बुद्धू को रस्ते पर लाऊँ ।
क्यों मानव को क्षणिक बनाया,
रे अब तक भी ध्यान न आया,
पल मे लातों घूसों से, क्रीड़ा करने का मजा चखाऊँ ॥
जग का सारा दुख बतलाऊँ,
सुख-पूर्ण बनाना सिखलाऊँ,
खोल प्रेम की पुस्तक नित मैं, भलमनसी का पाठ पढ़ाऊँ ॥

(७३)

मै नूतन जग निर्माण करूँ !

जहाँ न कोई कष्ट उठाए,

जिसे देखकर स्वर्ग लजाए,

मै उसमें रहने वाले जन जन, को असीम सुख दान करूँ ।।

जो दर दर ठोकर खाते हों,

जीवन मे सुख नहि पाते हों,

वे पीड़ित प्यासे आ जाएँ, मै सब का दुक्ख निदान करूँ ।।

दानव कोई भी नहिं आए,

केवल मानव ही रह जाएँ,

हों प्रेमी ही प्रेमी उस में, जिनका मैं नित सम्मान करूँ ।।

(७४)

मै पंछी वनकर उड़ जाऊ ।

नभ में स्वतन्त्र हो हरषाकर,

अपने पंखों को फैलाकर,

मैं अपने साथी के सँग उड़कर नित वन उपवन में जाऊँ ।।

दिन भर में दो दाने खाकर,

संध्या को अपने घर आकर,

प्रतिपल जग को नित जीवन में, हँसते रहना मैं सिखलाऊँ ।।

प्रेम सँदेसा जग को देकर,

प्रतिदिन सुख की निद्रा लेकर,

कोयल के से नित्य सवेरे, मीठे मीठे गान सुनाऊँ ।।

(७५)

मेरे मन मे आँधी आती ।
मन सें दुख का मेघ उमड़ता,
चीत्कार ही गर्जन बनता,
नैराश्य भरी आँधी आहों की, प्रलय नृत्य करती जाती ।।
पथ पर करती कटक विकीर्ण,
नित निरख सुमन होता विदीर्ण,
तृणवत् सुखद भावनाएँ सब, कर पददलित कुचलती जाती ।।
गिर पड़ते सुख के विटप सकल,
हा परम सुनहले पत्र सकल,
मेरी आशा की क्षीण लता, फिर भी जीवित ही रह जाती ।।

(७६)

मन इतनी जल्दी मत मुरझा ।
जीवन का वसन्त आया है,
परम हर्ष जग मे छाया है,
तू ग्रीष्म काल से पहले ही, रे मत उदास होकर मुरझा ।
ऊबे मत पट परिवर्तन से,
जग रंग मंच के नर्तन से,
ताण्डव, लास नृत्य से पूरित, नूतन अभिनय नित देखे जा ।।
निज सत्य सहारे दृढ़ रहकर,
परवाह पवन की तनिक न कर,
तू पीन ध्वजा सम अपने को, नित उलझ उलझ कर फिर सुलझा ।

(७७)

मै दिन भर खेला करता हूँ ।
नित्य विहँसती ऊषा आती,
खेल कूद सहसा छिप जाती,
मैं भी हँसते हँसते अपने, जीवन से खेला करता हूँ ।।

हँस हँस कर तारे छिप जाते,
करुणा कथा निज नही सुनाते,
मैं भी विनाश पर ध्यान न धर, यौवन से खेला करता हूँ ।।
मै चाहता निज को भुलाना,
नित खेल मे जीवन गँवाना,
मैं कन्दुक क्रीड़ा सम अपने, सारे दुख झेला करता हूँ ।।

(७८)

क्या प्रणय पर अधिकार मेरा ।
बरबस ही यह मुझे सताता,
मैं भी इसको रोक न पाता,
इस जीवन में क्या तोड़ सकूँगा, यह प्रेम कारागार मेरा ।।
आजीवन आहें मै भर लूँ,
पत्थर छाती पर मै धर लूँ,
पर हृदय-धड़कन रोकने का, है कहाँ अधिकार मेरा ।।
यदि हृदयतन्त्रि जीर्ण हो जाए,
चाहे टूट फूट गिर जाए;
तब भी सदा बजता रहेगा, रे यह अनश्वर तार मेरा ।।

(७९)

मेरा मन ही मधुशाला है ।
मैं ही मन का मधु-विक्रेता,
मैं ही इसका साक़ी बनता,
पी पी कर मैं ही मस्त हुआ, यौवन ही मधु का प्याला है ।
प्याले में नित झल झल करती,
रहती प्रतिपल छल छल करती,
मादक मेरा यह मधुर प्रेम, ही मधुशाला की हाला है ।।

कोई भी प्यासा आ जाए,
नित बिना मूल्य के ले जाए,
चाहे कितना ही मधु पीले, खाली कब होने वाला है ॥

(८०)

जल्दी मत छेड़ो कलियों को !
मादक पराग तो आने दो,
मधु से पूरित हो जाने दो,
हो स्वयं उठेंगी विकसित ये, मत तुम खोलो पंखड़ियों को ॥
खिल खिल कर ये इठलाएँगी,
रसिकों का मन ललचाएँगी,
ये हार बनेंगी किसी कंठ का,मत तुम खोलो पुत्तलियों को ॥
री पवन, जगा मत सोने दे,
सुखनिद्रा पूरी होने दे,
भ्रमरों से कह दो बन्द करें इन के समीप रङ्गरलियों को॥

(८१)

क्यों तू पपीहे ! रो रहा है ?
पीड़ा से नित पीला पड़कर,
एक स्वर मे क्यों क्रन्दन कर,
'पीऊ-पीऊ' रट रट कर क्यों, तू धैर्य अपना खो रहा है ?
तेरा 'पीऊ' खो गया किधर,
जग मे विलीन हो गया किधर,
है कौन मुझे भी तो बतला, क्यों विकल इतना हो रहा है ?
कब किधर गया कुछ समझा दे,
कैसा है सब कुछ बतला दे,
क्यों रूठ गया, कब से तुझसे, क्यों विकल इतना हो रहा है ?

तेरे हित मैं भी खोजूँगा,
पैरों पड़ उसको रोकूँगा,
चल उठ मत रो मेरे साथी ! प्रभात देख अब हो रहा है ?

(८२)

ओ गाने वाले गाए जा !
जग की झंझट पर ध्यान न दे,
जग की बातों पर कान न दे,
तेरी वीणा थक चले अरे, तू फिर भी तान सुनाए जा ॥

चाहे मैं आपद-ग्रस्त रहूँ,
पर सुनने में ही व्यस्त रहूँ,
युग युग अनन्त तक मस्त रहूँ, तू ऐसा राग सुनाए जा ॥

गाते रहने को कह न सकूँ,
चाहे जग में मैं रह न सकूँ,
मेरी मिट्टी ही को अपना, मादक संगीत सुनाए जा ॥

(८३)

मन ! तू क्यों रूठ गया मुझसे ?
क्यों तड़प तड़प होता अशक्त, क्यों बल अपना खोता समस्त,
तू विकल निकलने को है पर, कहता नहीं क्यों बात मुझसे ?
जाता तनिक बतला किधर है, तेरा रहता ध्यान किधर है,
यह क्या सूझी है आज तुझे, क्यों बात छिपाता है मुझसे ?
तुझको मैं कैसे जाने दूँ, मुझको क्यों कष्ट उठाने दूँ,
तेरा ही एक सहारा है, वह भी छिन जाएगा मुझसे ?
रे इतना कौन मनाएगा, नित मीठी बात सुनाएगा,
चल रहने दे अपनी उड़ान, तू कर यहीं आराम सुख से ?
मिन्नत मैंने करली सारी, पीड़ा तेरी हर ली सारी,
अरे मान मेरा कहना, प्रारम्भ कर आलाप मुझसे ?

(८४)

तुमसे ही मुझको प्यार मिला !
दो दिल के गाने गा गा कर,
तन की नश्वरता बिसराकर,
मीठी बातों से जी बहला, मुझको यौवन अभिसार मिला ।।
भोला भाला प्यारा प्यारा,
सारे जग मे सब से न्यारा,
इस मतलब की दुनियाँ मे भी, मुझको मेरा संसार मिला ।।
सुख दुख में कुछ अंतर न मान,
भूतल-नभ को करता समान,
ऊबड़ खाबड़ बाते करता, अपने जैसा ही यार मिला ।।

(८५)

मत करो पूजा हमारी ।
भक्ति से पहले तुम्हारे, हृदय पर सिक्का जमाया,
प्रेम का फिर चक्र देखा, क्या अजब मैंने चलाया,
अखिल जग पूजे तुम्हें, तुम पूजते अपना पुजारी ।।
आज क्यों तुम सकपका कर पुनः आंखें फेरते हो,
क्यों वृथा आपत्तियों को, पास अपने घेरते हो,
विफल अब तक हुई मेरे सामने विद्या तुम्हारी ।।
द्वार पहले खोल कर क्यों, पुनः अब सहसा लगाए,
फूल क्यों पहले बिछाकर, शूल अब आगे बिछाए,
क्या इसी सम्मान से अब तक बुलाते थे पुजारी ।।
गेह से तुमने हटाया, देह से कैसे हटूँगा,
जानता हूँ खूब मैं, उर मे तुम्हारे नित रहूँगा,
शक्तिमय समझूँ तभी, जब देह से निकलूँ तुम्हारी ।।

तुम मुझे अब तक रुलाकर, खूब जी भर कर हँसे हो,
देख लो उरदेवता ! तुम प्रेम में कैसे फँसे हो,
मान्यवर ! लो मै चला, करते रहो मिन्नत हमारी ।।

(८६)

मुझे न कोई रोक सकेगा !
मै सजग सदा से कर्म वीर,
मै युग युग से हूँ युद्ध धीर,
मेरी आँखों मे क्या कोई, पामर धूला झोक सकेगा ।
करने मे शिव सम गरलपान,
अभ्यस्त, युगो से विद्यमान,
मेरी अमर देह मे कोई, रे क्या खजर भोक सकेगा ।।
निज कर्त्तव्यो को करने से,
जीवन लक्ष्यों पर चलने से,
हँसते हँसते मर मिटने से, मुझे न कोई टोक सकेगा ।।

(८७)

मानव ! तेरा ध्यान किधर है !
प्रतिदिन पथ मे चलते चलते,
कर्त्तव्यों को करते करते,
सुस्ता कर क्यों लेट गया, चल उठ तेरा प्रस्थान किधर है ?
तेरे अन्तर की ज्योती को,
तेरे मानस की मोती को,
जगा जगा अब तो उसको, तेरा सोया भगवान किधर है ?
सब विश्व जगाने के बदले,
तुम स्वय सो गया रे पगले,
मुर्दे जिसको सुन फड़क उठें, वह जोशीला गान किधर है ?

(८८)

देखो मुझको भूल न जाना ।
अब दूर अरे मैं जाता हूँ,
मजबूर अरे मैं जाता हूँ,
आँखों से ओझल होते ही, परदेसी को भूल न जाना ॥
चाहे सब कष्ट उठाऊँगा,
विश्वास रखो फिर आऊँगा,
पर देखो ठुकराकर मुझको, मेरे मत तुम शूल चुभाना ॥
प्रतिदिन तुम हरषा हरषाकर,
स्नेह सुधा बरसा बरसाकर,
मेरे उजड़े मन-उपवन में, आशाओ के फूल लगाना ॥

(८९)

अब नौका मँझधार पड़ी है ।
अति तीव्र पवन झकझोर रही,
भंवरे पड़ चारों ओर रही,
प्रबल वेग आँधी वर्षा, पतवार हाथ से छूट पड़ी है ।
हो रहा उर्मियों का गर्जन,
है क्रोधित मन मे भी कम्पन,
उस पार उतरने को उर की, लहरों मे भी बाढ़ चढ़ी है ॥
है युद्ध लहरों में परस्पर,
है उभय जूझने को तत्पर,
निर्णय मे देर नही अब मेरी, वीर भुजाएँ फड़क पड़ी हैं ॥
तूफानों क्या रोक सकोगे,
क्या बढने से टोक सकोगे,
सन्मुख लोहे की छाती, मर मिटने को तैयार खड़ी है ॥

(९०)

मैने भी मरना सीख लिया !

मन-मधुकर ने मँडराने को,

मद पी पागल हो जाने को,

खिलती कलियाँ लखते लखते, अब क्रन्दन करना सीख लिया ।।

निर्झर सम वन के पौधो से,

लतिकाओ के अनुरोधो से,

पहले द्रुत गति नित बढ़कर, सहसा अब झरना सीख लिया ।।

क्रन्दन से ही हँसता हूँ मै,

रुकने से ही बढता हूँ मै,

यह मुझको तब विश्वास हुआ, जब मरकर जीना सीख लिया ।।

(९१)

आज किसकी याद आई ?

रात बीती जा रही थी, नीद कुछ कुछ आ रही थी,

मन्द मारुत बह रही थी, शान्ति थी सर्वत्र छाई ।।

उर्मि सी वह शान्त जल में, ज्योति सी वह शून्य तम मे,

कौन प्रतिमा मन-सदन मे, आज मेरे पास आई ।।

कुछ परिचित कुछ भूली सी, कुछ मुरझाई फूली सी,

रुक रुक चलती कौन विकल सी ललचाई सी आई ।।

भ्रमरो तुम भटको न अभी, कलियो ! तुम चटखो न अभी,

देखो वह सुनले न कहीं, घबराई सी है आई ।।

ऊषे, मत अन्धेर करो, छिप जाओ मत देर करो,

देखकर मुझको अकेला, अब अरे वह मुस्कराई ।।

(६२)

ऊषे ! मुस्काती ही आओ !

प्रतिदिन जग का दुख हरती हो, तुम नित्य तिमिर से लड़ती हो
लथपथ शोणित से होकर भी, हँसना सिखलाती ही आओ ॥

दुख में भी जो हँसना जाने, रण मे धीरज धरना जाने,
फिर विजयी वह कैसे न बने, यह सीख सिखाती ही आओ ॥

मेरे तम को भी दूर करो, मेरे गम को भी दूर करो,
मेरे सूने अम्बर में भी, ज्वाला धधकाती ही आओ ॥

मेरा गम ही कितना सा है, जग को तो वही तमाशा है,
मेरा सुख मुझको दुक्ख हुआ, तुम कष्ट मिटाती ही आओ ॥

प्रातः भी मै सोया रहता, अपने मे ही खोया रहता,
परहित कुछ करने को मुझको, हर रोज जगाती ही आओ ॥

निद्रा तजने को मै तत्पर, निद्रा मुझको तजती न मगर,
निद्रा देवी को संयम का, नित पाठ पढ़ाती ही आओ ॥

(६३)

मै हृदय की कामनाओं, की कहानी क्यों सुनाऊँ ?

मै छिपाकर ही तुम्हें, सब कुछ बताना चाहता हूँ,
दूर रहकर ही तुम्हारे, पास आना चाहता हूँ,
सूर्य सा मै भी कमिलिनी, सँग नही क्यों मुस्कराऊँ ?

पास आने पर भयंकर, कष्ट में सहसा पड़ोगी,
तुम सुकोमल मधुर इतनी आँच कैसे सह सकोगी,
विकल अतर की धधकती, आग तुम तक क्यों बढ़ाऊँ ॥

नित मुझे आलोक-पथ पर, पाँव धरना ही पड़ेगा,
जगत के कल्याण को, कर्तव्य करना ही पड़ेगा,
तुम विहँसती ही रहो, जब तक न अपना मुँह छिपाऊँ ॥

(९४)

अब मत हमसे आँख चुराओ ।
क्यों देख हमे कतराती हो,
क्यों मौन सदा हो जाती हो,
मन संशय मे रक्खो हमको, मत और अधिक अब तड़पाओ ।।
क्यों साफ नही बतलाती हो,
क्यो मौन सदा हो जाती हो,
सहन नही होगा हमसे, मत शूल हृदय मे अधिक चुभाओ ।।
ठुकराना है ठुकरा डालो,
जो कुछ कहना है कह डालो,
हम भी अपना रस्ता पकड़े, तुम भी अपने रस्ते जाओ ।।

(९५)

सो गये क्यों आज जग कर, भी अरे अरमान मेरे ।
मूक सा मैं नित्य बैठा, शोक मे दिन काटता था,
एक वीणा प्राप्त कर, प्रतिदिन बजाना चाहता था,
ध्वनित हो क्यों रुक गये, सहसा सजल ये गान मेरे ।।
बाल-रवि सा नित्य चलता, द्वार तक मै आ चुका था,
तनिक चिर आराध्य के, दर्शन अरे मै पा चुका था,
पट खुले क्यों गिर गये, क्यों छिप गए भगवान् मेरे ।
नयी दुनियाँ को बसाने, की किसी ने प्रेरणा की,
अन्त में निर्दय हृदय से, क्यों अरे अवहेलना की,
क्यों बिखेरे नित जुटा कर, आज सब सामान मेरे ।।

(९६)

अब न जीवन मे मिलूँगा ।
दूर जग में जा रहा हूँ,
नित सँदेसे पा रहा हूँ,
शान्ति का संदेश देने के, न मैं, पथ से हिलूँगा ।।

मै कुसुम सा नित्य झूमा,
डालियों को नित्य चूमा,
पवन से स्खलित हो अब, फिर न कानन मे खिलूँगा ।।
बस यही अन्तिम विदा है,
अब विरह ही सर्वदा है,
दीप सा मै स्नेह सी, स्मृति तुम्हारी से जलूँगा ।।

(६७)

मै तुम्हे कैसे भुला दूं ?
प्रेम करने का प्रथम, उपदेश तुमने ही सुनाया,
प्रेम से अमरत्व का, नित पाठ तुमने ही पढ़ाया,
आज मै अमरत्व पा, कैसे अनुग्रह वह भुला दूं ?
तुम न होकर आज से, ये ही मुझे जागृत रखेगी,
सुखद स्मृतियाँ तुम्हारी, तब कहो कैसे भुला दूँ ?
मै तुम्हारी प्रति दिवस, आराधना करता रहूँगा,
दूर रह कर भी चरण पर, फूल धरता ही रहूँगा,
दूर कर मै भी हृदय से, आज पट कैसे लगा दूँ ।।

(६८)

कुछ इधर की कुछ उधर की, बात करलें आज साथी !
मै विहग हूँ शून्य नभ का, थकित हो सहसा रुका हूँ,
रम्य वन अवलोक कर, मै चकित हो सहसा रुका हूँ,
अगम पथ पर मै युगों से, उड़ रहा दिन रात साथी ।।
मै पथिक परदेश का हूँ, तब यहाँ रह क्या करूँगा,
अब अधिक आमोद मे नित, डूबकर मै क्या करूँगा,
निष्क्रमण मेरा अटल है, है तुम्हे भी ज्ञात साथी ।।
आपदाओ से पुनः अवशेष जीवन ग्रस्त होगा,
सूर्य उगते ही हमारा, सूर्य सुख का अस्त होगा,
खूब कह लो, खूब सुन लो, आज अन्तिम रात साथी ।।

(९९)

अरे मेरी याद में आँसू बहा देना किसी दिन !
प्रेम से उन्मत्त दुनियाँ, नीद सुख की सो रही हो,
प्रेम-विह्वल विकल चकवी व्यथित हो जब रही हो,
सजग हो तब आह भरकर, फिर भुला देना किसी दिन ॥
शून्य-स्पन्दित हृदय की, स्वतः ही झंकार बोले,
मध्य निशि की चाँदनी में, जब हृदय का तार बोले,
याद कर मेरी विरह का, गीत गा देना किसी दिन ॥
शोक से संतप्त कोई दूर चलता रुक गया हो,
प्रेयसी की याद में जब, नित भटकता थक गया हो,
याद कर मुझको, उसे पानी पिला देना किसी दिन ॥
मैं तुम्हारे आँसुओं को, नित अमर करता रहूँगा,
अश्रु के वरदान से मैं, स्वयम् भी जीता रहूँगा,
मुझे स्वप्नों में बुला, उर से लगा लेना किसी दिन ॥

(१००)

क्यों कहूँ मेरी कहानी ?
जगत यदि सम्मान करता,
मैं सुखी हो गान करता,
डूबता सुख सिन्धु में मैं, याद अपनी भी भुलानी ॥
जगत यदि अपमान करता,
मैं दुखी हो आह भरता,
शोक से परिपूर्ण होती, शीघ्र यह मादक जवानी ॥
मैं तनिक सम्मान से ही,
या क्षणिक अपमान से ही,
लक्ष्य तज, पथ-भ्रष्ट बनता, भूलता अपनी कहानी ॥
मैं वृथा ही फूलता जब,
मैं मुझे ही भूलता जब,
स्वार्थी जग क्या रखेगा, याद, तब मेरी कहानी ॥

द्वितीय खण्ड

पिपासा

आमुख

द्वितीय रचना 'पिपासा', मे भी मानवतावाद चल रहा है-'मानवता की प्यास मुझे है' । निराशा के अन्धकार मे भी आशा की जोत जल रही है "मै पत्थर सा पत्थर सहता, देखो कितना उल्लास मुझे है" । साथ ही कवि को अपनी कौमार्यावस्था और अनुभवहीनता का भी ज्ञान है—

"अपने कच्चे पैरों से भी, मजिल तय करता जाता हो"

× × × ×

"एक भूखे मृदुल बालक, ने स्वतः मधुपान छोड़ा,
आज मानव के लिये जीवन समर्पण कर दिया है,"

× × × ×

"पाप जो करते जगत मे, रोज रोते हैं विचारे,
किन्तु पापी हूँ विलक्षण, पाप कर पाया कहाँ रे,
ग्लानि ही लेकर हृदय मे, मै कहाँ तक रोज़ सोऊँ" आदि पंक्तियां इसे व्यक्त करती हैं ।

हृदय मे ग्लानि के कारण कवि क्षुब्ध हो जाता है—कोई उससे बोलता नही, कोई हसता नही, जीवन मे कोई प्रेरणा नहीं—

"रे महाकवि का हृदय लेकर तड़पने भी न पाया"
"रे किसे उर मे सजाऊँ"
"प्रेयसि, तुझ को जो पा जाता"
"दिल लगाना दूर केवल मुस्कराना भी मना है" आदि पक्तियों मे यही भाव हैं । धीरे-धीरे कल्पित प्रेयसी की कल्पना हृदय में अधिक स्थान घेरने लगती है—"आज मिलने कौन आया"

"अपने पर मेरा बस न रहा ।
कोई रसना मे जा पहुँचा, मेरी सना मे रस न रहा"
"अब तो दिन मे सपने आते ।"
मै कहूँ किस से व्यथा, किस को सुनाऊँ बात साथी" आदि ।

कल्पित सगिनि के मुँह से भी कुछ कहलाने को जी करता है। यथा—

'पथी, सध्या है सुस्तालो।

इन आँखो मे आँखें धरकर, केवल दो क्षण तो मुस्करालो।"

किंतु, कल्पना से जी नही भरता—

"गीत लिख लिख रो पडा मै, वेदना वो ही बनी है"

और निराशा से खीझकर कवि को मेघ मल्हार सूझता है

"रे मै गदहा ही बन सकता।

प्रेम नही मिलता तब जी भर क्रन्दन तो कर सकता।"

गीतो मे किसी भावना की कोई शृखला नही है। जी न लगने पर पुन. कल्पित प्रेयसी को सम्बोधन प्रारम्भ होता है.—

"रे आग लगी है जाग अरी मेरे सपनो की रानी,

तू राग भरी अनुराग भरी, मेरी चिर अमर कहानी"

"मौन आधी रात सजनी"

एक तेरे मौन से हैं, मौन सब जलजात सजनी।।"

इन सब प्रेमालापो के बाद भी कवि समाज की अवहेलना नही करता—"है चाह यही जलता जाऊं!

भूले भटके को राह बता, अपने कर्तव्यो को करता,

चाहे कोई भी स्नेह न दे, अंतिम क्षण तक जलता जाऊँ"

"मै दीप जलाता जाऊँगा।"

छेडो मत छेड़ो तारों को, मै खुद ही गाता जाऊँगा।"

"मैं बुझे दीपक जलाऊँ" "विश्राम मरण का अग्रदूत"

"मेरे अन्तर मे नेह भरा!

जब तक ज्योती मेरे सग है, मेरा यह सूना गेह भरा।" इसके पश्चात् 'दीपक' और 'ज्योती', पर कुछ कला-प्रधान रचनायें हैं और अन्त में फिर वही 'पिपासा'—

"मैं प्यासा हूँ, इस प्यासे को पीने का लोभ नही छूटा

जीने का लोभ नही छूटा"

'दीपक'

पिपासा

(१)

मानवता की प्यास मुझे है।

प्यासी मानवता को कब से प्रतिदिन मानव ने ठुकराया,
मानव की पैशाचिक क्रीड़ा, से जिसने नित धक्का खाया,
उस को मानव के ही उर में, अब पा जाने की आस मुझे है।

निर्जन वन में आहें भरती, प्यासी निर्वासित तरुणी सी,
घायल हो शोणित से लथपथ, कोई अति पीड़ित हरिणीसी,
क्रंदन करती निर्भरणी सी, भावुकता की प्यास मुझे है।

चातक को रोते युग बीते, पर प्यास कहाँ बुझ पाई है।
वर्षा आने पर भी अब तक, वह बूँद कहाँ मिल पाई है,
मेरे जीवन की असफलता, का भी थोड़ा आभास मुझे है।।

पर मैं चिर आशावादी हूँ, मैं निर्भय हो आगे बढ़ता,
मानव को फिर मानव करने, मानव-दान से नित लड़ता,
मैं पत्थर सा पत्थर सहता, देखो ! कितना उल्लास मुझे है।।

(२)

आज अर्पण कर दिया है।

है खुशी मुझ को इसी ग़म, को कलेजे से लगाकर,
नित्य गीले गान द्वारा, गीत दुनियाँ के सुनाकर,
आज मानव के लिये, जीवन समर्पण कर दिया है।

तृप्त भी कुछ हो न पाया, पर तरुण अरमान तोड़ा,
एक भूखे मृदुल बालक, ने स्वत. मधुपान छोड़ा,
सकल जीवन के सुखो का, आज तर्पण कर दिया है।

एक मेरे तार से वीणा सभी झकृत हुई है,
शुद्ध उर से सैकडो, परछाइयाँ मुखरित हुई है,
सब निहारो, आज मैने, हृदय, दर्पण कर दिया है :

(३)

मधुमक्खी मधु से मोहित है ।

मैं हूँ काँटों मे पड़ा हुआ, वह प्रतिदिन सुमनों में जाती,
मै रोता, वह मादकता को, भर अपने नयनों मे लाती,
वह अरमानों से रँगी हुई, वह आशाओं से रोहित है ।

वह फिरती है गाने गाकर, मै बैठा आहें भरने को,
वह उड़ती है नित मुस्काकर, अपनी राहे तय करने को,
पर जग के जख्मों से जख्मी, मेरी छाती तो लोहित है ।

क्या कभी न शहद बटोरूँगा, मधु-मक्खी से शिक्षा लेकर,
क्या कभी न घर को दौड़ूँगा, मानवता की भिक्षा लेकर,
बस एक अनोखा भवन बने, यह छत्ता कैसा सोहित है ।

(४)

मैने एक दलित नर देखा !

था खड़ा हुआ भिखमंगा वन मानवता से कुछ आस लिए
प्यासे कवि सा वह रोता था, झोली छाती के पास लिये,
कुछ दिन पहले ठोकर खाता, मैने एक गलित नर देखा ।।

पर एक पड़ौसी के घर पर, जाते ही मैं तो दग रहा,
कुत्ते मखमल पर सोते थे, था जमा निशाचार रंग वहाँ,
झूठी माया में फँसता वह, मैने एक छलित नर देखा ।

ये दोनों ही अभिशाप बने, धरणी का सारा पाप लिये,
पै हृदय मिलाता दोनों के, सब सुख-दुख का संताप लिये,
कल सपने मे कैसा अद्भुत, मैंने एक ललित घर देखा ।।

(५)

पृथ्वी नभ का चुम्बन करती !
ये मौन किनारे है दोनों, फिर भी प्रेमी बन मिल जाते,
ये हर संध्या की राग भरी, मदिरा पी पी कर खिल जाते,
यह अमर सुहागिन जी भरकर, अम्बर का आलिगन करती ।।
हम उलझे रहते कामों में, इससे कुछ जान नहीं पाते,
हम दूर क्षितिज की हरकत को, कुछ भी पहचान नहीं पाते,
नित ही झुरमुट की ओटों मे, धरणी कितनी नर्तन करती ।।
पर वे पापी तारे देखो ऊपर रहकर भी पृथक् रहें,
ये पूँजीवादी से हँसकर, दिन भर सोने में अथक रहे,
रजनी में कोमल विधु पाकर, इनकी तृष्णा धड़कन करती ।।
सूरज की महिमा को सोचो, वसुधा से लेकर देता है,
सागर से थोड़ा जल लेकर, सब में जीवन भर देता है,
रे तब इनकी लिप्सा अपना, अपना ही क्यों चितन करती ?

(६)

यह ज्ञान कहाँ से आता है !
ज्यों-ज्यों बचपन घटता जाता, ज्यों-ज्यों धड़कन कुछ बढ़ती है,
ज्यों-ज्यों यौवन चढ़ता जाता, त्यो त्यों उलझन कुछ अड़ती है,
सुन्दरता से आकर्षित हो, अरमान कहाँ से आता है !
बचपन की उत्सुकता मे तो, उत्सुकता केवल रहती है,
पर यौवन के सन्धानों मे, मादकता घेरे रहती है,
कोई मीठे परिरंभन का, अनुमान कहाँ से आता है !

कितने प्राणी तो जीवन भर, मुर्दे रहकर ही मर जाते,
मिट्टी खाते, मिट्टी पीते, मिट्टी मे ही सत्वर जाते,
पर कवियो के कच्चे घट मे, यह प्राण कहाँ से आता है !

(७)

रे मै भी कितना रुखा हूँ ।

मुझसे मीठी बातें करने, कोई इच्छा भी करता हो,
तब भी केवल मुसका देता, चाहे कितनी तत्परता हो,
दुनियाँ की बाते सुनकर तो, जैसे मेरा जी मरता हो,
लेकिन कविता के चिन्तन से, उर में अमृत ज्यों भरता हो,
गन्दी गलियों से बचकर ही, देखो मैं कितना सूखा हूँ ॥

जैसे कोई भोला बालक, दूरी से रोता आता हो,
अम्मा से पिट कर भी उसके, पीछे दौड़ा ही जाता हो,
कुछ आस भरे नैरास भरे, गिरता पड़ता चिल्लाता हो,
अपने कच्चे पैरों से भी, मजिल तय करता जाता हो,
वैसे ही कुदरत की गोदी, में जाने को मै भूखा हूँ ॥

(८)

चेतना कैसे बनी है !

आप ही जग के तिमिर में, ज्योति कैसे आन कूदी,
ज्यो कवी के मौन अन्तर, में रसिकता आन कूदी,
मेघ के रसमय हृदय पर, चंचला कैसे तनी है ॥

प्रश्न जीवन औ मरण का, चेतना के साथ आया,
प्रश्न सृष्टि और प्रलय का, वेदना ले साथ आया,
याद सुख की, दुसह दुख के, कीच में कैसे सनी है ।

रे बता दे स्वर्ग से आकर मुझे अज्ञात कोई,
विश्व से ऊपर उठाने, है कहीं परिजात कोई,
हाय कितनी बार मेरी, देह बनती निर्धनी है ॥

(९)

आज धूँ आधार कैसा ?

मेदिनी है अब पुरानी, आसमाँ की ही कहानी,
देवता जिसमे रहे है, आज वह संसार कैसा ?
रँग बदलता जा रहा है, रँग प्रलय का आ रहा है,
आज के इन ताण्डवों का, यह नया शृंगार कैसा ?
मूर्त ही मैंने पुकारा, प्रेम-प्रतिमा को सँवारा,
जिस भरोसे मै जिया हूँ, आज वह आधार कैसा ?

(१०)

तुम भी क्या झुकने आई हो ?

मेरे आँसू बिकते रहते, धनवानों के बाज़ारो मे,
मेरे मोती सजते रहते, सूखे निर्मम शृंगारों मे,
क्या मेरे आँसू की प्रतिमा ! आँसू सँग बिकने आई हो ?
फिरना होगा दर दर तुमको, हरिजन फिरते ज्यों गरहन में,
मानवता पाने को जग मे, पीड़ा फिरती ज्यों बिरहन मे,
क्या मेरे गीतों की रानी, गीतों सग फिरने आई हो ?
सोचो समझो मेरी कविता, बनकर जाओगी धृष्टों में,
शायद ही कोई मिल पाए, अपनाए जो उत्कृष्टो मे,
क्या सोने की दुनियाँ मेरी, कूड़ों पर फिकने आई हो ?

(११)

सजनी ! अब तो जाना होगा !

कितने दिन बीते सब सहते, आने जाने की ही कहते,
बाहर की दुनियाँ से भी तो, ताजी बाते लाना होगा ।।

यदि हमको हम समझें यह ही, काफी होता तो रहते ही,
पर भूले देशो के लोगों, को भी तो समझाना होगा ।।
दानवता जग मे जीत गई, मानवता तो फिर बीत गई,
वह दिन आने से पहले ही, मुझको तो मर जाना होगा ?

(१२)

क्या कहूँ सबने कहा है ।
यह हिमालय और गगा, गीत नित अपने बनाते,
ये महाकवि से महत्तम, काव्य रसिकों को सुनाते,
कौन दरिया है नही, जो आँसुओ के सँग वहा है ।।
काव्य के स्वर्णिम पटल पर, सैकडों ग़म की कहानी,
धड़कनें इतनी हुई है, दूँ कहाँ नूतन निशानी,
हो चुका जो प्रेमियों में, दर्द वो ही हो रहा है ।।
विरह के विस्तृत जलधि मे, विरह मेरा भी निहित है,
मिलन की इस याचना में, मिलन मेरा भी निहित है,
यह विरह औ मिलन तो, लगभग सभी जन ने सहा है ।।

(१३)

मै कहाँ तक रोज़ रोऊँ ।।
एक ही रस प्राप्त करके, वेदना से भर गया मै,
यह करुणता, यह विवशता, रे अकेला मर गया मै,
विश्व को कुछ दान देने, नित्य क्यों चैतन्य खोऊँ ?
इस रुदन की ही प्रभा से, जिस्म घुलता जा रहा है,
सत्य-मिथ्या भेद मेरा, नित्य खुलता जा रहा है,
कृष्ण होते इन कपोलों, को कहाँ तक रोज धोऊँ ।।

पाप जो करते जगत में, रोज रोते है बिचारे,
किन्तु पापी हूँ विलक्षण, पाप कर पाया कहाँ रे,
ग्लानि ही लेकर हृदय मे, रे कहाँ तक रोज़ सोऊँ ।।

(१४)

परिचय करता ही रहता हूँ ।।
ये कामनियाँ भोली भाली, ये घुँघराले बालों वाली,
क्या समझें मै किन सुमनों का, सचय करता ही रहता हूँ ।।
उनको लखकर दिल नोचूँगा, दिन भर रजनी भर सोचूँगा,
अपनी यौवन की घड़ियों को, मै व्यय करता ही रहता हूँ ।।
चाहे ओले बरसें मुझ पर, चाहे गोले बरसे मुझ पर,
नित अच्छी अच्छी बाते ही, निर्भय करता ही रहता हूँ ।।

(१५)

सुख कहाँ पर पा सकूँगा ।
बुलबुलों का, कोयलों का, गान ठंडा हो रहा है,
गर्व से ऊँचा जहाँ मे, लाल झडा हो रहा है,
गीत मधु के, रक्त नीचे, कौन मुँह से गा सकूँगा ?
खून समझूँगा उसे मै, कोकिलों का, कामिनी का,
यामिनी का, जामिनी का, भामिनी का, दामिनी का,
इस बरसते खून नीचे, मै तड़प कर गा सकूँगा ।।
जीभ यह तलवार से, कैसे दबाई जा सकेगी,
प्यार पर दुतकार कैसे, रे दिखाई जा सकेगी,
मै ध्वजा को ही पकड़कर, प्रिय समझ कर गा सकूँगा ।।

(१६)

मैं उसका अर्चन बन जाता, वह मेरा अर्चन बन जाती ।।
कुछ वह भी मुझसे कह पाती, कुछ मैं भी उससे कह पाता,
कुछ वह भी गाकर मुस्काती, कुछ मै भी गाकर मुस्काता,
उसका परिवर्तन बन जाता, मेरा परिवर्तन बन जाती ।।

सूने दुख का कुछ छोर नही, मेरे नभ में कुछ भोर नही,
अमृत पीने को ठौर नही, दिल में दर्दीला दौर नही,
मै उसका चिन्तन बन जाता, वह मेरा चिन्तन बन जाती ।।

हम दोनों तो मिलकर जाने, क्या से क्या हो जाते पल मे,
मानव की असली औ कल्पित, दुनियाँ से बढ़ जाते पल मे,
मै उसका बन्धन बन जाता, वह मेरा बन्धन बन जाती ।।

(१७)

क्षीण मेरा पल्लवन है ।
मंत्र कविता का भ्रमर सा, वक्ष पर मँडरा रहा है,
कल्पना-कलि से मिलन को, मस्त होकर गा रहा है,
मधुर मधु कम है अभी, केवल हृदय में प्रस्फुटन है ।।

मै खड़ा हूँ मौन तरु सा, आँधियों से हिल रहा हूँ,
कुछ लताएँ मिल सकेगी, कुछ स्वयें ही खिल रहा हूँ,
एक थल पर ही हृदय का, यह अनोखा चक्रमण है ।।

इन झकोरों में निहित हो, मै पनपने भी न पाया,
रे महाकवि का हृदय लेकर तड़पने भी न पाया,
हास भी है पर, प्रिया का, रे कहाँ उर में शयन है ।।

(१८)

क्यों हिंडोला आज टूटा ?
अप्सराएँ झूलती थीं, विश्व के मधु-प्राँगणों में
नर अरे अब नाश पाता, जा रहा समरांगणों में,
स्वारथी पापी हृदय से, रूप भोला आज रूठा ।

देव बनता था मनुज, पहले परम आराधना से,
असुर अब बनने चला है, नीचतम नित साधना से,
आदमी अब पशु बना है, देव-चोला आज छूटा ॥

फूल झरते थे चमन में, हर्ष में हर उत्सवों मे,
विष मिलाया रे कहाँ से, हाय किसने आसवों मे,
आज 'एटम' गिर रहे है, कौन बोला, कौन रूठा ?

(१६)

तसवीरें ही अवशेष रहीं ।

काँपा करता था अम्बर भी, वाणी सुनकर डरते डरते,
नापा करता था यश जिनका, रजनीपति भी घटते बढ़ते,
उन मोटे मोटे लोगों की, ये रेखाएँ अवशेष रहीं ॥

दुबले से कवियों को देखो, जिनने रेखाएँ ही खींची,
दुनियाँ मे धक्के खाए है फिर भी कब गर्दन की नीची,
सदियों तक जो गूँजा करते, जिनकी वैसी ही ठेस रही ॥

मैंने सदमे भी खाए हैं, मैंने रेखाएँ भी खींची,
मैंने वाणी भी गरमाई, फिर भी गर्दन करली नीची,
सुख की दुनियाँ में जाने की, तदबीरें ही अवशेष रहीं ॥

(२०)

रे किसे उर में सजाऊँ ?

जब कभी मै प्रेम करने, को बढ़ा उल्लास लेकर,
वह हटी मुझसे निरंतर, लोक भय आभास लेकर,
जो बसा पाई न मुझको, आज क्या उसको बसाऊँ ?

वेदना भी थक गई, मेरे हृदय मे वास करके,
आस ने आवास छोड़ा, नित्य ही उच्छ्वास भरके,
पास मेरे क्या बचा है, हास मैं किसको सुनाऊँ ॥

जल रहा जितना जलन से, क्या कहीं कोई जलेगा,
गल रहा जितना लगन से, क्या कहीं कोई गलेगा,
आप ही उठती हृदय से, रे किसे बातें सुनाऊँ ।।

(२१)

मैं प्यार किसी का क्या छीनूँ ?
कोई भी मुझसे जीवन में, रे प्यार कहाँ कर पाया है,
फिर भी तो दुनियाँ ने मुझको, उँगली उँगली बतलाया है,
अधिकार बिचारे का क्या है, अधिकार किसी का क्या छीनूँ ?
जिनकी भी इच्छा हो मेरे, आगे जी भर शृंगार करें,
अपनी प्रिय के उर में प्रतिदिन, सुन्दर सुख का संचार करें,
इक़रार नही जब मिलता हो, अभिसार किसी का क्या छीनूँ ?
अपराध करे वह मानव तो, माफी माँगा करता सबसे,
अपराध बिना ही मैं निर्धन, क्या माफी माँगूगा सबसे,
उपहारों से क्या मतलब है, उपहार किसी का क्या छीनूँ ?

(२२)

चुपचाप रहा करता हूँ मै ।।
जैसे मतवाले हाथी के, मस्तक से मद चूता रहता,
वह तो चिघाड़ किया करता, पर मैं छाती छूता रहता,
आँसू रुकते ही हैं न कभी, क्यों आप बहा करता हूँ मैं ।।
जाने कितने बल्लम बरछे, मेरे ऊपर फेंके जाते,
मैं धूल उड़ाता अपने पर, जिससे मेरे व्रण ढक जाते,
रे जकड़ा हूँ जंजीरों में, अभिशाप सुना करता हूँ मैं ।।
मैं अपनी ही कमज़ोरी पर, कुछ जोर चला पाया न कभी,
दुनियाँ ने जोर किये उनको, झकझोर अरे पाया न कभी,
जग पाप करे क्या, अपना ही, संताप सहा करता हूँ मैं ।।

(२३)

घर पर कौन बुलाने आया ?

कोई मस्त शराबी है क्या, कोई साथी भावी है क्या,
बोतल एक बड़ी सी लेकर, दर पर कौन पिलाने आया ?
भँवरा कली बिना जिन्दा है, नित रो रो कर शरमिन्दा है,
पीकर प्रेम, प्रिया बिन कैसे, जीकर रोज़ रुलाने आया ॥
बुलबुल काँप रहा पाँखों मे, गुल क्यों नाच रहा आँखों में,
प्यासा पड़ा हुआ धरती पर, रे यह कौन जिलाने आया ?

(२४)

इन हँसते फूलों के भीतर, यह गन्ध कहाँ से आती है ?
रजनी के भेद भरे तम में, जाने क्या से क्या हो जाता,
जैसे ब्रह्मा के होठों से, वाणी का उद्भव हो जाता,
मदमस्त बनाती यह मुझको, मदअंध, कहां से आती है ॥
कैसे हलचल होती रहती, सजनी की श्वासों श्वासों में,
इन तार भरे आकाशों में, इन प्यार भरे मधुमासों में,
कल-हँसी के पग पग भीतर, गतिमंद कहाँ से आती है ॥
मलयानिल से यह मादकता, कैसे मिट्टी में आ जाती,
यौवन आने भर भावुकता, कैसे रग रग में छा जाती,
रमणी के हास-विलासों में, सौगन्ध कहाँ से आती है ॥

(२५)

आज शिष्टाचार सीखूँ !

विश्व की ओछी निगाहों, में पड़ा हूँ मैं अकेला,
बात भी करता नही हूँ, लग रहा हो रोज मेला,
आज दुनियाँ की तरह, मैं भी सभी व्यवाहर सीखूँ ॥

मौन रह कर ही अरे मै, बात करना चाहता था,
ग्रीष्म सा जलता हृदय, बरसात करना चाहता था,
मिल चुकी फटकार मुझको, आज क्या सत्कार सीखूँ ।।

तुम न मुझको मान पाए, मै तुम्हें मानूँ कहो तो,
हार तो मानूँ नही, मनुहार कुछ मानूँ कहो तो,
मैं सिखाता था जगत को, आज मैं भी प्यार सीखूँ ।।

(२६)

प्रेयसि, तुझ को जो पा जाता ।

रोया करते सुरपुर वाले, कोमल कोमल नूपुर वाले,
परलोकों का सारा वैभव, तेरे सँग जग में आ जाता ।।

जाने कितनी रातें हँसता, जाने कितने ताने कसता,
सूनेपन मे ही यह हालत, पा जाने पर क्या गा जाता ।

अपने अरमानों से मिलकर, यौवन के गानों से मिलकर,
वीणा का स्वर इस अम्बर में, कितने युग युग तक छा जाता !

(२७)

आज के मनहूस जग में, गीत गाना भी मना है ।

चाहता था भूल पीड़ा, मुस्करालूँ एक पल तो,
रे हृदय के बोझ को, कुछ तो मिटालूँ एक पल तो,
जल रहा जिस आग से उसको बुझाना भी मना है ।।

रो सकूँगा नित्य अब, दुनियाँ अगर खुश हो सकेगी,
आँसुओं से पर हृदय की, आग क्या कम हो सकेगी,
कौन सुनता है यहाँ पीड़ा बताना भी मना है ।।

मैं न रोकर पा सका हूँ, मैं न हँसकर पा सका हूँ,
विश्व के विस्तृत पहल पर, ईर्ष्या ही ला सका हूँ।
दिल लगाना दूर केवल, मुस्कराना भी मना है ॥

(२८)

नित्य मुझ को प्यास लगती ।

विरह की उर-निहित ज्वाला, से विकल सा मैं झुलसता,
आवरण युत दीप से टकरा पतंगे सा हुलसता,
आग पीता नित्य ज्यों-ज्यों, त्यों प्रणय की प्यास लगती ॥

प्यास बढ़ती देखता जब नयन मदिरा को छलकती,
प्रेम-वारुणि तरुणियों के, अरुण अधरों पर झलकती,
याद आती प्रेयसी की, आग विरहिन हा सुलगती ॥

मुझ अमर पर मृत्यु निर्बल, जब मधुर कटु वार करती,
आग ही तब प्यास बनती, प्यास ही तब आग बनती,
वेदना मुझको चिढ़ाती, मृत्यु का उपहास लगती ॥

(२९)

आज मिलने कौन आया !

जल बिना उजड़ी पड़ी सी वाटिका की विजनता में,
गगन से चिर शून्य उर की, बिन प्रणय मुरझी लता में,
साँझ के सूखे समय में, रे पिघलने कौन आया !

इस अमावस के तिमिर में, चाँद कैसे आ उगा है,
शुस्क सर में श्वेत पंकज, सुभग कैसे आ लगा है,
आज मेरी आग पर चलने, कुचलने कौन आया !

क्या दहकती ज्वाल थककर, आज मन्दी हो गई है,
पास आने की विकट हिम्मत किसे यह हो गई है,
आह से उत्तप्त घर में, रे उबलने कौन आया !

रम्य तम की चेतना से ज्ञान सारा खो चुका हूँ
दग्ध हो होकर विरह से, अब विभूती हो चुका हूँ
आज लिपटा कर मुझे, सहसा मचलने कौन आया !

आज का सुन्दर मिलन, हा, याद बन खलता रहेगा,
श्वास मेरा याद कर इसकी सदा चलता रहेगा,
इस मिलन से विरह का, आधार बनने कौन आया !!

(३०)

अपने पर मेरा बस न रहा !

ऐसा सम्मोहन बाण चला, लेकर मेरा संधान चला,
जिन हाथों से मन को जीता, उन ही हाथों में जस न रहा ।

पहले जैसे ज्यों के त्यों ही, रहते न अरे क्यों निर्मोही,
बन्धन अलसाए अन्तर के, जाने कैसे वह कस न रहा ॥

कोई उर में अरमान उठा, जिससे मेरा अवसान उठा,
कोई रसना में जा पहुँचा, मेरी रसना में रस न रहा ॥

(३१)

प्रिय ! प्रणय पीड़ितों की, प्रेमाश्रु पूर्ण अन्तिम, यह कहानी है ।
आज अन्तिम इस प्रहर में, मौन कब से हो हृदय को, बेध डाला है,
तीर रोक कर दृगों के, रूठ कर क्यों वृथा ही, छेद डाला है,
प्रिय प्रात अब निकट है, गलतियाँ जो हुई, हैं, सब भुलानी है ॥

भूल कोई हो गई हो, कोस लो खूब जी भर, क्यों छिपाती हो,
समय अब लो हो चला है, देखलो बार अंतिम क्यों लजाती हो।
गालियाँ आज देलो, रम्य वेला मिलन की, फिर न आनी है ।।

याद कर इन चितवनों को, मैं प्रणय की एक दुनियाँ नित बसाऊँगा,
स्निग्ध मेरी लेखनी से, स्वर्ग को ही इस धरा पर खींच लाऊँगा।
बस तनिक मुस्करादो, मैं अमर गान गा दूँ, यह निशानी है ।।

चक्रवाकी के स्वरों की, इस अँधेरी यामिनी में, गूँज छाई है,
देवता को अब रिझाने, लालिमा सी लो उषा ने, कुछ दिखाई है।
प्रिय ! होठ कुछ हिला दो, आज तक नित्य तुमने, बात मानी है ।।

(३२)

मैं बनूँ अनजान जग में ।।

प्रेम करता ही रहूँ हर एक से, अनजान ही में,
विरह पाकर आह भर लूँ, मैं सदा सुनसान ही में,
मनुज के अवसान का, प्रतिदिन बनूँ उत्थान जग में ।।

जान जाना तो किसी को, बोझ सा मुझको लगेगा,
ज्ञान पाकर भेद का संकोच, सा मुझको लगेगा,
जानने अपराध नर के, मैं बनूँ पाषाण जग में ।।

विश्व को मैंने भुलाया, प्रेम में जैसे उलझ कर,
विश्व भी सब भूल जाए, गलतियाँ तैसे समझ कर,
भूलना जग को सिखाने, मैं बनूँ मधुपान जग में ।।

मधुर नित उतना बनूँ, जैसे प्रथम-पहचान जग में,
गूढ़तम ज्यों ज्यों बनूँ त्यों त्यों बनूँ आसान जग में,
खान बन सम्मान की आखिर बनूँ इन्सान जग में ।।

(३३)

मै सब का हार बनूँगा ।।

चाहे अरमानों को मुझ से, कोई दुल्हिन दरसावे,
चाहे अर्थी पर तोड़ तोड़, कोई विधवा बरसावे,
मैं जन्म-मरण से जीर्ण न हो, चिर व्यापक प्यार बनूँगा ।

वह प्यार कहाँ जो यौवन के, झोकों सँग ही बह जावे,
उन्मत्त पयोधर सा दो दिन, ही बरस बरस तरसावे,
सूखे मेघों से भी बरसे, मै वह बौछार बनूँगा ।।

नर मुक्त बने दुख से जिससे, वह कारागार बनाऊँ,
अभिसारों से जो बज निकले, वह मोहक तार सजाऊँ,
मैं वीणा होकर भी खुद ही, नित वीणाकार बनूँगा ।।

मै कविता के बल पर, अपना संसार बनाता जाऊँ,
मै कभी न जग से हार मान, नित हार बनाता जाऊँ,
शृंगार बना सबके उर का, नित मालाकार बनूँगा ।।

(३४)

अब तो दिन में सपने आते ।।

मै स्वयं कभी बन जाता हूँ, शंकर दुख भंजन करने को,
मैं कभी पुजारी हो जाता, कोई का अर्चन करने को,
जाने अनजाने सब मिलकर, बन अपने ही अपने आते ।।

मै बैठा रहता हूँ फिर भी, खो जाता मादक चिन्तन से,
मैं बाते करता करता ही, सो जाता उर की धड़कन से,
मेरे अन्तस्थल में अद्भुत, गाने वाले गाना गाते ।।

अध्यन से उकता कर अब तो, अनुभव करने को मन कहता,
कोई उर में छिप जाने को, चंचल यौवन का तन कहता,
अब पुस्तक के पृष्ठों पर भी, रमणी के रदपट मुस्काते ।।

(३५)

आज क्यों तूफान आया ?

समय के अविरल प्रहारों, से बना अनजान सा जो,
पवन से हो धराशायी, छिन्न दलित वितान सा जो,
शोक से जर्जरित अन्तर को, किसी का ध्यान आया ।।

सुखद जीवन के तड़पते, होश से पागल बनाने,
विगत घड़ियों की सुनहली, याद से बेसुध बनाने,
क्यों रुलाने को मुझे, हँसकर किसी का मान आया ।।

जो नहीं जग में रहा, अवशेष उसकी याद ही है,
मैं न भेषज दे सका, उसकी अरे फरियाद ही है,
आज मेरे शून्य गृह में, क्यों मृतक महमान आया ।।

जीर्ण तंत्री से निकलते, दुखद बीते गान सा क्यों,
मुझ दुखी को कोसने को, हाय रीते दान सा क्यों,
रात होते ही किसी के, दीप का अवसान आया ।।

(३६)

मुझको भी क्या क्या करना था ।।

नित अरमानों को भर भर कर, मैं आगे आगे बढ़ता था,
पत्थर छाती पर धर धर कर, मैं चट्टानों पर चढ़ता था,
पर बिगड़ी मोटर सा ठहरा, भूला उस पार उतरना था ।।

मेरी इच्छाएँ रोती हैं, मानो ठुकराई नारी सी,
मानो मरती अपने हाथों, अत्याचारी से हारी सीं,
सूनेपन ने क्यों खा डाला, मुझको तो धीरज धरना था ।।

चाहा था यौवन के धागों में, बाँधूँ नूतन पन्थों को,
चाहा युग युग तक फागों में, घोलूँ रंगीन बसन्तों को,
पर मै ही घुलकर बीत चला, क्या इतनी जल्दी मरना था ॥

(३७)

रे मांझी मै भी हो जाता ।

नित मादक स्वर मे चिल्लाता, तट के लोगों को ललचाता,
सब उत्कंठित बालाओं को, अपनी नौका में ले जाता ॥
उद्वेलित हो करते कम्पन, नित निरख निरख नूतन नर्तन,
हो मस्त नदी की लहरों सा, कल कल स्वर में मै भी गाता ॥
करते क्रीड़ा आता जाता, जीवन में कितना सुख पाता,
इस पार गुजरती गाथाएँ, उस पार पहुँचकर कह पाता ॥
मन में नहि कोई आस लिए, संध्या को सुख की श्वास लिए,
रे नदी किनारे थोड़े से, टुकड़े खाकर नित सो जाता ॥

(३८)

आ गई बरसात साथी !

उपवनों में भूलकर देखो सभी खुशियाँ मनाते,
विविध पक्षी नृत्य कर, कलरव मुदित होकर सुनाते,
पर पपीहे को लगी है, क्यों रटन दिन रात साथी ॥
लौट कर परदेशगत सब पथिक, जीवन मीत पाते,
सुखद संचित कामनाएँ, भर प्रणय के गीत गाते,
मैं कहूँ किससे व्यथा, किसको सुनाऊँ बात साथी ॥
जिन प्रणयिनी के निकट बरसात में वर साथ होते,
प्रेम की उन्मत्तता में, प्रात भी मधुरात होते,
पर अरे सूनें हृदय में, रात भी अब प्रात साथी ॥

विहँसती धरणी अखिल प्रतिबूँद पाकर लहलहाती,
बूँद भी मम देह से पर, मिल दुखी हो छनछनाती,
मेघ-गर्जन, नित्य करता, वज्र सा आघात साथी ।।

निरख मुझको करुण वर्षा, सकल सुख साधन जुटाती,
हरित करने को मुझे हर रोज़ थक कर ऊब जाती,
देखकर असमर्थ निज को, रो पड़ी बरसात साथी ।।

मैं विरह के तीव्र झोकों, में अकेला झूलता हूँ,
दलित होकर भी अहर्निश, आस से ही फूलता हूँ,
अर्ध मैं, कैसे बनूँ सम्पूर्ण अपने हाथ साथी ।।

आह भर मैंने विरह से, जब कभी नभ ओर देखा,
सजल मेघों के हृदय में, खिच गई तब तड़ित रेखा,
मुँह ढका सब तारकों ने, विकल झंझावात, साथी ।।

बन्द कर ऊपर निरखना, मौन रहता नित झुका सा,
मै सदा जल मग्न रहकर, भी बना सूखा थका सा,
किस उषा की याद मे, मैं भी हुआ जलजात, साथी ।।

(३६)

क्या न प्रियतम आ सकेंगे ।।

प्रात बीते, रात बीतीं, सजल कितने मास बीते,
अश्रु से अविरल धधकते, हा तरुण उच्छ्वास बीते,
जीर्ण तन अवलोक कर, वे क्या न फिर अपना सकेंगे ।।

थकित ये उत्तप्त आहें, एक क्षण सम्मान पातीं,
काश ये निष्फल निगाहें, फिर उन्हें पहचान पातीं,
उन्हें पुलकित देखने की, क्या न प्यास बुझा सकेंगे ।।

अब निकट है अन्त मेरा, मैं तड़पती ही मरूँगी,
मनुज कोई सांत्वना दे, यह तभी सुख से मरूँगी,
देख मेरी लाश को ही, क्या न वे मुसका सकेंगे ॥

(४०)

पंथी ! सध्या है सुस्तालो ।
आए थे तुम गिरते पड़ते, फिरते जाने किन देशों से,
पानी पीकर ही चल निकले, आहे भर अपने क्लेशों से,
पछताना है तो रजनी भर, इस कुटिया मे ही पछतालो ॥
आँधी में भी बढ़ते जाते, तुम क्यों बरबस तत्परता से,
आखिर इतनी नफरत क्यों है, तुमको रसमय भौतिकता से,
ठहरो ! थोड़ा दम तो ले लो, रे कुछ खाना भी तो खालो ॥
छाती मेरी भर आई है, लखकर चरणों के छालों को,
अवलोक तुम्हारे मुरझाए, इन लाल गुलाबी गालों को,
इन आँखों में आँखें धरकर, केवल दो क्षण तो मुस्कालो ॥

(४१)

ओ पथिक ! क्यों रो रहे हो ?
कौन मीठी मार चुभती, कौन सी दुतकार चुभती,
कौन ऐसी ग्लानि को तुम, आँसुओं से धो रहे हो ॥
मै तुम्हारा साथ दूँगी, धर चरण पर माथ दूँगी,
आज तुम मेरे हृदय में, प्रेम कैसा बो रहे हो ॥
आज मै भी तो अकेली, इस कुटी में रे नवेली,
छोड़कर जाते तिमिर में, क्यों स्वयं भी रो रहे हो ॥

गीत लिख लिख रो पड़ा मै, वेदना वोही बनी है,
विश्व हँसता जा रहा, मम चेतना दुख से सनी है,
किस झरोखे से हृदय पर, पाश पड़ता जा रहा है ॥

बात वो ही, हाथ वो ही, पर न लिखने से थका हूँ,
नाम भी कब जान पाया, वह अनामा लख सका हूँ,
रूप उसका देख कर, यह लेख कढता जा रहा है ॥

(४५)

प्रिय ने दुख के घूँट पिए है।

मैंने समझा था मैं ही हूँ, जग मे आहे भरने वाला,
कोने मे निज को तड़पा कर, बैठा बैठा मरने वाला,
जिनको मै मादक समझा था, वे जाने कितने कूट पिए है ॥

वह भी तो बैरागिन निकली, झोली लेकर पीछे आने,
अपने अरमानों की उभरी, चोली लेकर सँग में गाने,
स्वर्गीय सुखों पर बस पाने, दुनियाँ से क्यों रुठ, पिए है ॥

वैभव युत सारे लालों को, ठुकराया है उसने भी तो,
पूरित विष के इन प्यालों को, अपनाया है उसने भी तो,
अंतर 'अपटूडेट' लिये औ, सँग में सारे सूट लिये है ॥

(४६)

प्यास बढते देख अपने, आँसुओं को पी गया मैं ॥

रे सितारो कुछ न बोलो, ओस गिरती है गगन से,
आज तो बहते हृदय को, आँसुओं से सी गया मैं ॥

हर्ष पीड़ा के झमेलों, में पड़ा था, क्यों अरे मैं,
मिलन औ बिछुड़न बताकर, रो रहा था क्यों अरे मैं,
स्वप्न का संसार तजकर, आज फिर से जी गया मैं ॥

जा रहा था दिल किसी के, पास क्यों संदेश देने,
ठेस जो मुझको लगी है, क्यों उसे भी ठेसे देने ।
आस बढ़ते देख निज में, हो गया खुद ही नया मैं ॥

(४७)

मालती कैसी खिली है ।
आज तो मकरन्द इसकी, क्यों रुलाती जा रही है,
यह जगाने की जगह, मुझको सुलाती जा रही है,
मन्द मीठी गन्ध में क्या, बूँद विष की भी मिली है ॥

खाट पर बैठा, पुरानी बात से आघात लगते,
हर समय हर प्रात में, बरसात में थे साथ जगते,
याद किसकी हर कली के, रूप में आकर खिली है ॥

मैं अचेतन सा खड़ा हूँ, गन्ध से परहेज कर क्यों,
आपरेशन को पड़ा हो, क्षीण रोगी मेज पर ज्यों,
भृंग मुझ पर भी विचरते, कल्पना मेरी मिली है ॥

(४८)

माली ! चुन ले सब कलियों को ।
जितनी खुश करतीं नहीं कभी, उससे ज्यादा इतराती हैं,
कतरे कतरे करतीं दिल के, फिर भी तो ये कतराती हैं,
मुझको कुछ तो सुख मिल पाए, ले जा इन हँसती ललियों को ॥

बचने नहीं पाए कोई भी, देखूँ फिर कौन रुलाएगा,
मेरी सिसकी की प्रतिदिन ही, खिल्ली फिर कौन उड़ाएगा,
ये आवारे इनको प्रिय हैं, रोने भी दे इन अलियों को ॥

मैं कब कहता ये मर जाएँ, यदि ये बस मुझ तक आ जातीं,
सुख देने से मजबूर अगर, मुख में ही मीठापन लातीं,
अवरोधित होने दे इनकी, रँगरलियों की सब गलियों को ।।

(४९)

विष क्यों मुझे पिलाती ?

झूटी पड़ती है छाती, यह कोयल कैसी गाती,
इस पगली लघु चिड़िया को, रे अमृत कहाँ पिलाया ?

मुश्किल बाते करना भी, मुश्किल धीरज धरना भी,
कोई ऐसा मत रोना, जैसा मैं गया रुलाया ?

जिसको मैं प्रतिदिन देखूँ, फिर भी केवल अवरेखूँ,
ऐसे निर्दय पापी ने, रे क्योंकर मुझे जिलाया ?

(५०)

अरे बेवफा ओ हमे ना बुलाना ।

गईं कितनी रातें सितारे ही गिनते,
बनाते रहे तुम हमेशा बहाना ।।

जलाना ही सीखा शमा रोज हमने,
भुलाया तुम्हीं ने यह दिल की बुझाना ।।

नही जानते थे यह सौदा है दिल का,
हमारे ही हाथों, बने हम निशाना ।।

खुदा जानता है, मेरी बेबसी को,
हर आँसू के पीछे, छिपा है फसाना ।।

कभी मुस्कराए नहीं जिन्दगी भर,
जनाजे के पीछे जरा मुस्कराना ।।

(५१)

रे मै गदहा ही बन सकता ।
लादे ही अपनी रचनाएँ, घर घर तो फिर सकता ।।
मै सुख से अपने जीवन में, भोजन तो कर सकता ।।
मेरी उपमा लेकर कोई, गाली तो दे सकता ।।
मेरा छोटा नाम किसी के, अधरों को छू सकता ।।
प्रेम नही मिलता तब जी भर, क्रन्दन तो कर सकता ।।

(५२)

लो तुम्हें मै भी मनाऊँ ।
पास मे केवल हृदय है, वेदना से जल रहा है,
यह तुम्हारे नाम से, आलोक पाकर पल रहा है,
देह से निर्देह को सब, मोह तज मै भी रिझाऊँ ।।
जेब मे पैसा नही, लो भेंट अपने को किया है,
आज मिट्टी के घड़े मे, प्राण मैंने भर दिया है,
निर्धनी हूँ प्रेम-धन से, नित नई दुनियाँ बसाऊँ ।।
आँसुओं की भी अजब, लीला पड़ी मुझको दिखाई,
आँख में से नाक मे जाकर, गले मे की घुटाई,
पर हृदय के देवता ! जो आज चाहो गीत गाऊँ ।।

(५३)

अब मुझको क्रोध नही आता ।
कविता करते करते ऐसी, रोने की आदत डाली है,
ऐसी नागिन मैंने अपनी, अलकों के भीतर पाली है,
इसके जहरीले दाँतों पर, क्यों मेरा रोब नहीं छाता ।।

बाहे हथियारों को लखकर, उठने मे रोने लगती है,
इस महाप्रलय की चिन्ता से, चिन्तित क्यों होने लगती हैं,
गरमाने को कोशिश करता, लेकिन यह क्षोभ नही जाता ।।

रे इतना ऊँचा उठ आया, नीचे क्या झुकना ही होगा,
दुनियाँ वालों मे ही जाने, उन्नति से रुकना ही होगा,
क्यों अपने उड़ते अन्तर को, बरबस अवरोध नही पाता ।।

(५४)

मेरे दुक्खों का पार नहीं।

मेरे अन्तस्थल से कोई, मानव कुछ लाभ उठा न सका,
जग ने इतना व्यापार किया, मेरे आभूषण पा न सका,
मै तो ऐसा सुनसान द्वीप, जिसमे कोई ससार नही ।

इस बीती दुनियाँ के ऊपर, आते रहते कितने पतझर,
सूखी जाती सब हरियाली, होती जाती धरती बंजर,
मेरा उर तो ऐसा निर्झर, जिसने पाया विस्तार नहीं ।

जग की नश्वर सुन्दरता से, मेरा मन ऐसा रूठ गया,
दुनियाँ के चमकीले पथ पर, चलने पहले ही ऊब गया,
मेरा यौवन ऐसा पागल, जिसको भाया शृंगार नहीं ।।

(५५)

हम भी दिल रखते थे उन पर ।

उस जोश मे कोई क्या बोले, मदहोश बिचारा क्या बोले,
ताने बरसाए जाते थे, हम गाफिल रहते थे सुनकर ।।

मधुबाला उठती आती थी, मधुशाला लुटती जाती थी,
महफिल भी रो रो गाती थी, जब पीने जाते थे धुन पर ।।

हम घुल घुल कर भी खुल न सके, हम मिलजुल कर भी मिल न सके,
जब हासिल कुछ भी हो न सका, तब हा सिल रखते हैं चुनकर ।।

(५६)

कामिनी का रूप धर कर, एक हिजड़ा गा रहा था ।।

साथ मे दो और भी थे, एक ढोलक कूटता था,
एक ताली पीटता था, और बेहद कूदता था,
देखने वाले जनों को भी, मज़ा कुछ आ रहा था ।।

हो रही हो नित्य चर्चा, इस कला की ही जहाँ पर,
कौन जीवित रह सकेगा, अल्प सा लेखक वहाँ पर,
मान बीता, गान बीता, वह प्रशंसा पा रहा था ।।

यह मधुरता, वास्तविकता, रे कवी लाएँ कहाँ से,
आँसुओं से गा रहे जो, यह छवी लाएँ कहाँ से,
प्रेयसी के रूप में, कम्बख्त क्यों तड़पा रहा था ।।

(५७)

सजनी ! सपना झूठा तेरा ।

बहलाने को चाहे कह दे, कहलाने को चाहे कह दे,
इतने दिन से मै भाँप रहा, जाने क्यो मन रूठा तेरा ।।

कोई प्रतिद्वन्दी आया है, तुझमे बन्दी बन छाया है,
मेरे प्रति सारे भावों का, अनजाने ही टूटा घेरा ।।

नूतन सा कोई तिरता है, तेरी आँखों में फिरता है,
हँसता रहता था तुझ में जो, वह अवलम्बन छूटा मेरा ।।

(५८)

तुम कहो नही तो कह जाऊँ ।
वैसे तो कहने को कोई, लम्बी चौड़ी यह बात नहीं,
तुम भी सुन सकती हो उर में, चाहो तो यह दिन रात यहीं,
फिर भी इसको सारी सुनकर, तुम सहो नहीं तो सह जाऊँ ।।

निर्भरणी से जो जो बातें, निर्भर प्रतिदिन करता रहता,
पथ की पीड़ा से पीड़ित हो, मरमर करता कहता रहना,
वह तो कलकल करती रहती, क्या मै आँसू बन बह जाऊँ?

आँखो ही आँखों में दहकर, पानी पानी बन छाई है,
इतने दिन तक भीतर रहकर, यह बात अधर तक आई है,
फिर भी मेरे वक्षस्थल में, तुम रहो नही तो रह जाऊँ ॥

(५६)

बहारें भी आईं मगर तुम न बोली !!

अरे चीखती बुलबुले थी चमन में,
उभारें भी आईं मगर तुम न बोली ॥

तड़पता पड़ा था बग़ल में तुम्हारे,
पुकारें भी आईं मगर तुम न बोलीं ॥

कलेजा हमारा बिखरने पड़ा था,
कटारें भी आईं मगर तुम न बोली ॥

(६०)

वे आँखें मतवाली काली ।

जब वे निश्चल हो जाती थीं, मदिरा मुझ में ढल जाती थी,
जब वे नीचे झुक जाती थी, लहरें मुझ में उठ जाती थीं,
आशा से थीं बिल्कुल खाली, भर दी मेरे उर मे लाली ॥

मधु उनमें रोता जाता था, मैं पागल होता जाता था,
सपनों में खोता जाता था, मै भी कुछ रोता जाता था,
जो पीड़ा थी उनने पाली, वो ही पीड़ा मैंने पाली ॥

रे वे बैठी है तड़पा कर, यदि हम बैठे है तड़पा कर,
तो उनसे भी कह दो जाकर, औ हम से भी कह दो लाकर,
अब तो तुम ही तुम हो आली, आओ मत आओ, मतवाली ।।

(६१)

नूतनता ज्योतिर्मय कितनी ।

शोभा नव-प्रातों की देखो, मेरा कुछ क्लेश मिटाती है,
मुझ को फिर से रसमय करने, मेरा मन खींचे लाती है,
कलियाँ खिलती,चिड़ियाँ उड़तीं,हँसती कोमल किसलय कितनी।।

क्या मैं भी इनके सँग हँस लूँ, क्या मैं भी निज जीवन बदलूँ,
पर मुझको इन नश्वर साजों, से मिलती है कब लय उतनी ।।

मुझको तो बीते युग की ही, रह रह कर याद सताती है,
वे रोती आवाज़ें आतीं, चुभती फरियाद बुलाती है,
जिसको ठुकरा कर आया हूँ, रे वह मुझमें तन्मय कितनी ।।

(६२)

पंछी ! आज किधर को उड़ता ?

पश्चिम को तो तेरा पथ है, तेरी इति मे तेरा अथ है,
पर सूनेपन से घबरा कर, पगले, क्यों तू इत उत फिरता ।।

ये सब तारे उड़ पड़ते हैं, दुख के काँटे चुभ पड़ते हैं,
चंदा हँस देता तब आकर, तेरा टूटा नाता जुड़ता ।।

तू तो रजनी का भूषण है, दिन में दर्शन भी दूषण है,
संध्या होने से पहले ही, कैसे चंचल होकर उड़ता ?

(६३)

काश मुझको शान्ति मिलती ।

तनिक ही वसुधा अरे यह, कवि-हृदय को परख पाती,
स्वच्छ कर उर-मुकुर को, प्रतिबिम्ब कवि का निरख पाती,
सकल भू कविमय बनाकर, नित्य मादक शान्ति मिलती ॥
विश्व के सब तुच्छ बन्धन, मैं अकेला तोड़ पाता,
काश केवल लघु चना ही, भाड़ सारी फोड़ पाता,
हाय मेरे व्यथित उर को, कुछ अलौकिक कान्ति मिलती ॥
प्रणय तज कर अखिल धरती, निधन धन से प्यार करती,
सुखद जीवन छोड़कर क्यों, मृत्यु से अभिसार करती,
क्या पता कैसे जगत को, नित्य ही यह भ्रान्ति मिलती ॥
मै धरा को प्रेममय सुखमय बनाना चाहता था,
साथ ही वह दिन स्वयं भी देख लेना चाहता था,
शान्त करने को हृदय को, काश मुझको क्रान्ति मिलती ॥
मैं बुझूँगा किन्तु मेरी, ज्योति जलती ही रहेगी,
मै मिटूँगा किन्तु मेरी, सृष्टि बनती ही रहेगी,
पर अरे इस जिन्दगी में, ही मुझे कुछ शान्ति मिलती ॥

(६४)

जन्म-दिन मै क्यों मनाऊँ ?

इस जगत के कथित मत से, मै बड़ा प्रति वर्ष होता,
किन्तु मेरी देह का पल पल अरे अपकर्ष होता,
इस अधिक कम में उलझ कर, कष्ट कोई क्यों उठाऊँ ॥
दिन मनाते वे जिन्हें, मरने मराने की पड़ी है,
आयु का प्रतिपल यहाँ तो, गीत गाने की घड़ी है,
व्यर्थ ही आँसू बहा क्यों, मेघ सा क्रन्दन मचाऊँ ॥

मैं अनादी हूँ अमर हूँ, सत्य से मेरा प्रणय है,
नित्य मेरे काव्य का उस रम्यतम से पूर्ण लय है,
इस मृतक जग में विचर कर, मोल अपना क्यों घटाऊँ ?
श्वास मे कविता छिपी, नित जन्म कवि को श्वास देती,
श्वास प्रति तब जन्म दिन है, जो कला की प्यास देती,
श्वास है तो आस है, निश्वास क्यों निज को बनाऊँ ?
पर मनुज के श्वास तक ही, मैं नहीं सीमित रहूँगा,
हर प्रलय की आह हूँ, हर सृष्टि में झकृत रहूँगा,
सत्य को कर लिप्त तन से, व्यर्थ दुख में क्यों फँसाऊँ ?

(६५)

आ गई फिर से प्रणियिनी !

मै विवश हूँ वेदना से, सान्त्वना कैसे मिलेगी,
और भी तड़पायगी वह, पास रहकर भी खलेगी,
छेदने मेरे हृदय को, आ गई तलवार पैनी ।।
जो विरह से ग्रस्त होते, वे अधिक मुझसे सुखी हैं,
दर्शकों के ही अभावों, से बिचारे वे दुखी हैं,
कह न पाया देख कर भी, आ गई वह हंस-बैनी ।।
कंठ मेरा बाँध कर जग ने मुझे सहसा भुलाया,
नीर भी मै पी न पाया, होठ से जिसको लगाया,
आज क्यों आँसू बहाने, आ गई अरविन्द नैनी ।।

(६६)

ऐसी अँधेरी रात मे, मुझसे छिपा जाता नही ।
वैसे सभी सोए हुए, दिखते धरा के लोग ये,
लेकिन सभी खोए हुए, जगते धरा के लोग ये,
हिलते हुए जलजात में, भँवरा कही गाता यही ।।

यह चंचला कैसी हँसी, पिक औ मयूरी बोलती,
चुपचाप कलियों को लखो, घूँघट अरे ये खोलती,
यौवन भरे इस गात मे, किसको नशा आता नही ।।

जो पायलों को सुन चुका, हो वात की झकार में,
वह सो भला सकता कही, इस मेघ की टंकार में,
इस प्यार की बरसात में, प्यासा रहा जाता नही ।।

(६७)

अब रात विरह की बीत गई ।

मन मे जो तम आ बैठा था, उससे ही प्रियतम ऐंठा था,
सपने में प्रिय बोले मुझसे, वह बात पुरानी बीत गई ।।

चाहे कितनी ही दुर्बल हूँ, फिर भी मै कितनी चंचल हूँ,
आखिर अब तो आएँगे ही, प्रतिघात हमारी जीत गई ।।

झड़ती ही रहती थी झड़ियाँ, ये आँसू की मीठी लड़ियाँ,
अब प्रात सुनहला प्राप्त हुआ, बरसात विरह की बीत गई ।।

(६८)

रे आग लगी है जाग अरी, मेरे सपनों की रानी ।

तू प्यार भरी मनुहार भरी, कैसे अब तक सोई है,
शृंगार भरी उपहार भरी, कैसे खोई खोई है,
सत्कार भरी, आभार भरी, इस यौवन की पहचानी ।।

प्रिय प्राण ! कहीं अनजान बनी, मन ही मन क्यों मुस्काती,
क्या ध्यान नही या मान कहीं, मन में लेकर बलखाती,
क्या राज़ छिपा नाराज़ हुई, तूने हठ कैसी ठानी ?

क्यों आ न सकी क्यों छा न सकी, तेरे होठों पर लाली,
यह रात चली बरसात चली, कुछ तो हँस ले मतवाली,
तू राग भरी अनुराग भरी, मेरी चिर अमर कहानी ।।

(६९)

मुझको धड़कन का ज्ञान कहाँ ?
मैं सुनता तो हूँ नित इसको, पर समझ नहीं कुछ भी पाता,
मैं उलझा तो हूँ युग युग से, पर सुलझ नहीं कुछ भी पाता,
मैंने जाना कब अपने को, मुझको मेरा सम्मान कहाँ ?

मैं रोता हूँ दुनियादारी, के चक्कर से आहें भर कर,
मैं अब तक चल पाया न कभी, इतनी सारी राहें धर कर,
मै बाहर ही बाहर फिरता, भीतर विचरण का ज्ञान कहाँ?

कोई आए तो समझाने, मेरे सँग थोड़ा जलने को,
आँखें फैला दूँगा चश्मे, सँग भू पर उसके चलने को,
रे मैं प्रतिदिन कम्पन सुनता, फिर भी इसकी पहचान कहाँ?

(७०)

कल सुनहली साँझ में, मैंने भिखारी दीन देखा ।
ध्यान भी था कुछ न उसको, गान उठता जा रहा था,
पेट के मारे स्वतः ही, प्राण उठता जा रहा था,
वस्त्र तो कुछ था न केवल, जीर्ण सा कोपीन देखा ।।

वेदना कैसी भरी थी, वृद्धि के एकेक स्वर में,
कौन दिल था जो न रीझा, अन्ध की भूखी नजर में,
गा रहा तम्बूर ले, मैंने दुखी वह क्षीण देखा ।।

एक मै ही था वहाँ जो, हाय कुछ भी दे न पाया,
आ गया चुपचाप, मुझको, एक घन्टे तक रुलाया,
आज जैसा तो कभी मैंने न निज को हीन देखा ।।

(७१)

मौन आधी रात सजनी ।

निविड़ तम की गूढ़ता में, हैं सभी भयभीत मानव,
आज तो जग मे कुपित हो, खेलता है एक दानव,
रो रही है युग युगों से, मौन यह बरसात सजनी ॥

देवि ! तेरे हास से ही, सृष्टि बनती है धरा पर,
नृत्य से भस्मासुरों को, मार दे खुद ही हरा कर,
मौन तरु के पात सारे, मौन मेरी बात सजनी ॥

क्या न तेरी मधुरिमा से, शान्ति जग मे जम सकेगी,
ताण्डवों के सामने, तू भी कहाँ छिपती फिरेगी,
एक तेरी मौन से ये, मौन सब जलजात सजनी ॥

(७२)

दीपक ने जलना कब सीखा ?

मैं तो तम में अन्तर्हित जो, पथ हैं उनको बतलाता हूँ,
मैं जग के सारे ज्योति पुंज की खिल्ली नहीं उड़ाता हूँ,
रे मुझ तक आने को कह कर, लोगों को छलना कब सीखा?

मेरे अन्तर की ज्वाला को, कोई चाहे तो अपना ले,
मै कब कहता प्रत्येक पुरुष, बरबस उर में पीड़ा पाले,
पीड़ा पहुँचा कर कोई की, आँखों में खलना कब सीखा ?

मेरे उर में ऐसे व्रण हैं, जिनको नित छेड़ा जाता है,
इन जख्मों के कच्चे धागों, को रोज़ उधेड़ा जाता है,
फिर भी मेरे जीवित उर ने, पक पक कर जलना कब सीखा?

(७३)

नभ मे रोज़ दिवाली आती !

ये मेरे साथी जलते है, ये कितने सुख से पलते है,
नेहभरित विधु-घट ले रजनी, प्रतिदिन ही मतवाली गाती ।

मुझसे पूछो मैं बतलाऊँ, दुनिया वालों को दिखलाऊँ,
ऊपर वालों को युग युग से, नित क्यों मीठी लाली भाती ।।

मै धरती का रहने वाला, नभ का अन्तर कितना काला,
बदली क्यों मुझको बहकाने, निश मे काली काली छाती ।।

(७४)

मै दिवाली पर जला था ।

मै अकिचन तुच्छ प्राणी, ज्योति मेरी बाल भर की,
मै जला, पथ को जलाकर, आस लेकर साल भर की,
वर्ष तो अति दूर, रजनी, मे शिथिल क्यों हो चला था ।।

जगमगाते देख सब को, प्रज्वलित मै भी हुआ था,
क्षणिक होकर भी उछल कर, गर्व से ऊँचा हुआ था,
भाग्य खुलते देख सब के, कष्ट मुझको क्यों खला था ?

क्षीण होकर दूसरों से, होड़ क्यों कर बैठता हूँ,
है हृदय मे जो उसे भी, तोड़कर मैं ऐठता हूँ,
तनिक मिट्टी का बना हूँ, कल्पना ने क्यों छला था ?

(७५)

मै कविता लेकर आया हूँ !

कविता-कामिनि के तीरों की, सब ही तक मार पहुँचती है,
कृष्णों पर भी, गोरों पर भी, इसकी फटकार पहुँचती है,
नभयानों में उड़ने वाली, ब्रज-बनिता लेकर आया हूँ ।।

मै अपने एक तराने से, सब पर अधिकार जमाऊँगा,
दुनिया पर, प्रिय पर, त्रिभुवन पर, मीठी तलवार चलाऊँगा,
खोलो दरवाजे महलों के, मैं जनता लेकर आया हूँ ।।

मेरे उर की ज्योती से तो, सारे दिनकर दब जाएँगे,
यह दीपक ऐसा शीतल है, प्रलयंकार भी शरमाएँगे,
जगमग करने वाला निशदिन, प्रिय सविता लेकर आया हूँ ।।

(७६)

है चाह यही जलता जाऊँ !

भूले भटके को राह बता, अपने कर्तव्यों को करता,
कर सारा तम पाखण्ड दूर, मैं जग में उज्ज्वलता लाऊँ ।।

नित जीवन पर अभिमान न कर, अपने वैभव का गान न कर,
अगरिणत सदियों तक सत्पथ को, मैं ज्योतिर्मय करता जाऊँ ।।

जग मुझ पर ध्यान धरे न धरे, मेरा सम्मान करे न करे,
चाहे कोई भी स्नेह न दे, अन्तिम क्षरण तक जलता जाऊँ ।।

(७७)

चाँद ! क्यों परिहास करता ?

देख कर मेरी विवशता, क्षीरण तन की क्षरण भँगुरता,
मुझ दुखित को क्यों चिढ़ा कर, तू अरे अटहास करता ।।

मुझे लघु दीपक समझ कर, पवन से आक्रान्त लख कर,
गर्व कर निज उच्चता पर, निडर नभ में वास करता ।।

तू अरे कलुषित हृदय है, अरिणक तेरा भी उदय है,
रूप नश्वर प्राप्त कर भी, क्यों वृथा उपहास करता ।।

(७८)

मै दीप जलाता जाऊँगा ।

संध्या आई है जल्दी हो, सूरज भी तो डूबा देखो,
मानव के पैशाचिक पापों, से एकाकी ऊबा देखो,
मै अपनी ज्योती सुलगा कर, अंधेर मिटाता जाऊँगा ॥

ईश्वर जाने किन पापों से, निर्जीवों के सँग रहता हूँ,
फिर भी इन सब से बेढंगे, अपने ही ढँग मे रहता हूँ,
मनहूसों मे रह कर भी मै, नित ही मुस्काता जाऊँगा ॥

मुझमें जो कुछ अन्तर्हित है, बाहर आने को तत्पर है,
दुनिया भी अपनाएगी क्या, मेरे भीतर जो सुन्दर है,
छेड़ो मत छेड़ो तारों को, मैं खुद ही गाता जाऊँगा ॥

(७९)

दीपक पर परवाने आते ।

मरने की क्षमता इनमें भी, इस उठती ज्वाला के सँग में,
मेरे जख्मों से लाल हुई, इस लोहित हाला के सँग में,
इस मदिरा में गोते खाकर, घावों को उकसाने आते ॥

मेरा दिल कब से जलता है, गरमाए शोणित का प्याला,
लपटे उठती है श्वासों से, हर रोज ऊजाले को पाला,
इस अन्तर को ढाढस देने, बन बन कर दीवाने आते ॥

मै कैसे मोल चुकाऊँगा, वीरानों के अहसानों का,
अपने को तोल बिकाऊँगा, आभारी हो बेगानों का,
मेरे सूने दरवाज़े पर, ये कितने मस्ताने आते ॥

(८०)

दीप हूँ, कब तक छिपूँगा ?

विश्व खुद ही चाहता है, मैं प्रकाशित हो न पाऊँ,
चाहता मैं भी जगत के, सामने कुछ रो न पाऊँ,
किन्तु कब से जल रहा हूँ, जिन्दगी भर क्या छिपूँगा ।।

रे गगन के उड्गनों से, ईर्ष्या मुझको रही है,
सूर शशि को देखकर, मेरी न हिम्मत हो रही है,
एक कोने मे पड़ा हूँ, मैं किसी से क्या कहूँगा ?

छिप चुका, चुपचाप कितनी, तरुणियों के वक्ष भीतर,
उच्चतम अट्टालिकाओं के, कठिनतम कक्ष भीतर,
पर न लेकर लेखनी कर मे, किसी से कुछ छिपूँगा ।।

(८१)

मैं बुझे दीपक जलाऊँ ।।

राग ऐसा जानता हूँ, जो जलाएगा सभी का,
रो रहा हूँ आज वैसे, ही रुलाएगा सभी को,
हो गए ठंडे सभी जो, आज उनसे सुर मिलाऊँ ।।

रे कवी तेरी यहाँ पर, आखिरी यह दौड़ है क्या,
छोड़ दे या तो जगत को, तू अरे बेजोड़ है क्या,
आज या तो मिट चलूँगा, या सकल धरती जलाऊँ ।।

आ रही बरसात अब तो, यह हवा ऐसी चलेगी,
ज्योति मेरी ले चलेगी, ज्योति सबको दे चलेगी,
रो रहे जो जो धरा पर, आज उनसे उर मिलाऊँ ।।

(८२)

यह हवा कैसी चली है ?

शाम होते ही जगत मे, शाम क्यों होती दिनों दिन,
आज घनश्यामों बिना क्यों, शाम भी रोती दिनों दिन,

हाय नभ की मौन छाती, क्यों सितारों से जली है ?

मै सितारों को बजाता, इन अँगारों को बुझाने,
मै विचारों को बताता, कुछ सुधारों को सुझाने,

आज कैसी बेकली है, भावना जिसने दली है ॥

बाग मेरा जो लुटा है, आज उस पर क्यों न रोऊँ,
आग यह लखकर हृदय की, फाग से कैसे न धोऊँ,

जल रहा हूँ मैं प्रणय से, यह बुझाने क्यों चली है ?

(८३)

जलता ही रहेगा दीपक क्या, या बुझने की आस करे।

घर में बेचारा वह जलता, जग में मानव मानव जलता।
खलता ही रहेगा नर को क्या, या थकने में विश्वास करे॥

कर ली चिंतन से बरबादी, फिर भी मन में कितनी शादी,
पलता ही रहेगा परिणय क्या, या पकने का उच्छ्वास भरे॥

वह तो सूने का ही सूना, रस्ता दूने का ही दूना,
चलता ही रहेगा राही क्या, य' रुकने का उल्लास भरे॥

(८४)

पीड़ा मुझ में पलती रहती।

पहले तो मै ही जलता था, आहों के हरदम जाने से,
श्वासों की सीढ़ी पर चढ़कर, पीड़ा के भीतर आने से,
सगत से लौ पाकर यह भी, मदिरा बन छलछलती रहती॥

लहरें ढलमलती रहती है, उर में कैसी ध्वनि को सुनकर,
चिन्ता खलबलती रहती है, प्रतिदिन मेरा सिर धुन धुन कर ।
आँसू की धारा, गर्मी की, सरिता की कलमलती रहती ।
फिरता ही रहता हूँ दिन भर, उजड़ों में उलझा रहता हूँ,
गिर गिरकर मिट्टी मे मिलते, उखड़ों को देखा करता हूँ ।
वह कौन गली है रे अलियो, कलियाँ जिसमे खिलती रहती ।।

(८५)

विश्राम, मरण का अग्रदूत ।

उप क्रम करते रहने से ही, मानव जीवित रह सकता है,
जड़ से आगे बढ़ सकता है, निज को चेतन कह सकता है,
फिर भी लाखों प्राणी जग मे, चुपचाप पड़े रहते अछूत ।।
कैसी तत्परता रहती है, कामों से जी बहलाने में,
चाहे उत्तीर्ण बनें न कभी, सच्चे गतिशील कहाने मे,
सुलझा न सकूँ जीवन भर भी, उलझा है जो यह प्रेमसूत ।।
मुझको अपनी परवाह नही, सेवा करता ही उठ जाऊँ,
धन, वैभव, यश की चाह नहीं, मानवता के हित मिट जाऊँ,
प्यासा ही रह कर मर जाऊँ, कहने न सके कोई 'सपूत' ।।

(८६)

हँसने पर आँसू आते है !!

बतलाएगा इसको वो ही, जो हँसकर ठोकर खाता हो,
जिसके कर से मधु का प्याला, पीते पीते छिन जाता हो,
ये बादल तो गर्जन करने, से भी दूना बरसाते हैं ।।
जैसे पनिहारी की गगरी, छल छल करती ढुल जाती हो,
बाती जल कर ज्यों स्नेह भरी, दीपक में ही घुल जाती हो,
गिरते परवाने भावों के, आधे जलकर रह जाते है ।।

जब कोई अपना मुँह फेरे, तब चारा ही क्या रह जाता,
हँसने में कोई साथ न दे, तो कवि बेचारा बह जाता,
बैनों के अवरोधित होने, पर नैनों से ही गाते है ।।

(८७)

रजनी ! रुको, तुम्हीं सँग गाऊँ ! !
सोई है धरती बोलो मत, केवल आहों में बाते हों,
एक प्रहर में ही अगणित ये, प्यार भरी सुख बरसाते हो,
तेरी बाहों में ही छाऊँ, तेरी आहों में ही गाऊँ ।।

मै अनजान बना मर जाऊँ, दुनियाँ मुझको जान न पाए,
मैं अहसान लिये दब जाऊँ, कसकों को पहचान न पाए,
सजनी तो मिल सकी नहीं रे, तेरे आँचल में छिप जाऊँ ।।

तुम तो देखो मेरा हँसना, मैं तिल तिल जल कर मुस्काऊँ,
अबतो सदा तुम्हीं सँग रहने, मैं बस घुल घुलकर मिट जाऊँ,
कुछ क्षरण और बचे बुझने में, ठहरो मैं भी तुम तक आऊँ ।।

(८८)

प्रेम करना ही न आया !
आँसुओं से तर बतर हो, नित उबलता ही गया मैं,
कामनाओं के झकोरों, से मचलता ही गया मैं,
भीगता इतना गया नित, क्षीण जलना भी न आया ।।

झूठ सच के बीच में नित, बैठकर इतना हँसा मै,
पाप-पुण्यों के प्रपंचों, से अरे इतना उठा मै,
इस द्विचक्री पर सँभल कर, आज गिरना भी न आया ।।

सुक्ख-दुख कोई इसे, कोई उसे, जग मे समझता,
बात दोनों एक ही है, बस यही मैं तो समझता,
तैरना सीखा कहाँ से, डूब मरना भी न आया ॥

(८९)

दीप हूँ मै टिमटिमाता !
ज्योतिपुंजों के उजाले, में भला कैसे जलूँ मै,
बस किसी तम के शिविर में, आह ले लेकर पलूँ मैं,
सूर्य बनना तो न चाहूँ, जो दिवस भर चमचमाता ॥
एक मादक प्यार हूँ बस, मै नहीं ललकारता हूँ,
कामिनी के क्षेत्र मे कोई न नर को मारता हूँ,
गीत कलियों को सुनाता, भृंग हूँ मै गुनगुनाता ॥
किन्तु भौतिक क्षेत्र में, मुझसे न स्पर्धा करो तुम,
काट दूँगा एक क्षण में, जोश मुझ में मत भरो तुम,
सूर्यवंशी हूँ भला, कैसे न बोलूँ सनसनाता ॥

(९०)

मेरे अन्तर मे नेह भरा !!
कैसा ही कोई जख्मी हो, फौरन अच्छा कर देता हूँ,
बातों बातों में ही कैसा, अनुपम अमृत भर देता हूँ,
सुरलोकों से लाया जिसको, मेरे उर में अवलेह भरा ॥
सारे जग को ठुकरा सकता, मेरा दिल इतना ऊँचा है,
लेकिन सेवा करने सबकी, पातालों से भी नीचा है,
मैं सबको प्यास बुझाता हूँ, मेरी आँखों में नेह भरा ॥

कोई आए, कोई जाए, मेरी इच्छाएँ दूर हुईं,
मेरी रचना बनते बनते अब तो जन्नत की हूर हुईं,
जब तक ज्योती मेरे सँग है, मेरा सूना यह गेह भरा ॥

(६१)

दीपक ! काजल क्यों उड़ता है ?
तुम तो जलते हो ज्योति लिये, इसको क्यों दूर भगाते हो,
अपने कालेपन को भीतर, से बाहर क्यो लाते हो,
जिस ओर तुम्हारी लौ मुड़ती, उस ओर विचारा मुड़ता है ॥

तुम तो उसको प्रतिदिन तजते, वह तुमसे भी ऊपर जाता,
तुमतो बलखाते रहते हो, जब चाहो तब गिर भी जाता,
तुमसे ही बन कर निकला है, मन में तुमसे ही कुढ़ता है ॥

जब तक तुम ज्योती के सँग हो, वह भी उसके सँग जाएगा,
तुम ज्योति बिना बलहीन बने, वह आँखों में मुस्काएगा,
उसका इस सुन्दर ज्योती से, यह कैसा नाता जुड़ता है ॥

(६२)

दीपक ! ज्योती से दूर रहो !
माना तुम दोनों का नाता, ऐसा है टूट नही सकता,
दीपक टूटे तो टूट पड़े, ज्योती से रूठ नही सकता,
फिर भी तुम दो हो एक नहीं, इतने न नशे में चूर रहो ॥

वह तो तुम पर झुकती आती, अपनी कटि को लचकाती है,
अंतर जल जाएगा देखो, जितनी ही वह मुस्काती है,
कह दो उससे कुछ दूर रहे, थोड़े से तो तुम क्रूर रहो ॥

तुम जितने हँसते हो अब तक, उतना ही तुम्हें रुलाएगी,
यदि ज्योति मिली दीपक से तो, उसका भी गेह जलाएगी,
जब भी वह देखे ललचाकर, चुपचाप रहो, मग़रूर रहो ।।

(९३)

दीपक ! तुम भी भयभीत बनो !
मारुत का झोंका आएगा, तुमको भी सँग ले जाएगा,
छीनेगा ज्योती को तुमसे, तुम सब लोगों के मीत बनो ।।
तुम भी क्या खून बहाओगे, तुम भी क्या अश्रु सुखाओगे,
तुम लाल हुए जाते हो क्यों, पहले जैसे ही पीत बनो ।।
देखो सृष्टी जाए न कहीं, दानवता आ जाए न कहीं,
बेंडर बनना चाहो यदि तो, सारी दुनिया को जीत बनो ।।

(९४)

दीपक ! ऊपर तक भर आए ।
अपने उर के अरमानों से, तुम पूर हुए मुस्कानों से,
अब तो ढलने की बारी है, तुम पूजा इतनी कर पाए ।।
लेकिन खुद ही कलुषित होते, तुम भर भर कर दूषित होते,
अपनी पीड़ा ही और बढ़ी, तुम पीड़ा किसकी हर आए ।।
अब तक तुम खाली के खाली, आई उर में न अभी लाली,
जैसे बाहर को निकले थे, वैसे ही अपने घर आए ।।

(९५)

दीपक ! तुम खुद जलते न कभी !
कोई तुम में आभास भरे, कोई तुममें मृदुहास भरे,
अपने हाथों को तुम खुद ही, सपने में भी मलते न कभी ।।
कोई तुम सँग जलने आए, कोई तुम सँग पलने आए,
तब ही तुम भेंट करो उससे, खुद जाकर तुम खलते न कभी ।।
कोई चलने की बात कहे, कोई मिलने की बात कहे,
तब ही चलते उसके घर तक, अपनी रुचि से चलते न कभी ।।

(९६)

दीपक ! परवाना आन पड़ा !!
कोई यह साथी प्यासा है, इसको भी पूर्ण निराशा है,
तुमको जलते लखकर देखो, यह भी हठ कैसा ठान पड़ा !!
यह कौन अभागा आया है, यौवन से जागा आया है,
यह भी रो रो कर हार गया, मुझको तो ऐसा जान पड़ा !!
सब दीपक थोड़े ही होते, सब लेखक थोड़े ही होते,
यह भूला भटका बेचारा, कर अपने को बलिदान पड़ा ।।

(९७)

दीपक ! बुझने के दिन आए !
जलने नही पाए पूरे से, तुम तो हो अभी अधूरे से,
इस क्रोधित मारुत से सहसा, जी भर लड़ने के दिन आए ।।

तुमने अपना धूँआ छोड़ा, निज को उज्ज्वल करने छोड़ा,
लेकिन बस मौन रहो दिन भर, अब तो घुटने के दिन आए ।।

छोड़ो अपनी इस ज्योती को, देखो इस धरती रोती को,
विध्वंसों से रक्षा करने, अबतो मिटने के दिन आए ।।

(६८)

मेरे सपने छोटे पड़ते ।

उन भाव भरे प्रेमी-जन से, जो प्रतिदिन ही देखा करते,
स्वप्नों को सत्य बनाते है, लेखनि से अवरेखा करते,
मेरे कल्पित सपने उनके, आगे थोडे खोटे पड़ते ।।

उनके लम्बे लम्बे सपने, मेरे छोटे छोटे सपने,
उनके तो काव्य बड़े ऊँचे, ये गीत मधुर से है अपने,
मुझ से छोटे से मानव को, ये ही कितने मोटे पड़ते ।।

यह तो पेशा ही ऐसा है, जिसमे कुछ तो बनना पड़ता,
या तो बिल्कुल ही दास बनो, या फिर ईश्वर बनना पड़ता,
कोई छोटे हो या मोटे, अपनी अपनी ओटे पड़ते ।।

(६९)

जीने का लोभ नही छूटा ।

पत्थर कितने ही मारे है, मैने खुद ही पागल बन कर,
मै जूझ पड़ा अपने मन से, कितनी रातों मे ठन ठन कर,
मेरा, पापों से पूर्ण घटक, जाने क्यों हाय नही फूटा ।।

वैसे तो मैने छोड़ दिया, सारे जग को नित अपना कर,
सब कुछ छोड़ा, नाता तोड़ा, जीवन को मीठा सपना कर,
कविता-कामिनि ही बच पाई, रे अब तक मोह नहीं छूटा ।।

यौवन के सुख तो दूर बड़े, रे वाणी से ही बहलाए,
मदिरा पीने की बात गई, पानी ही तो लेकर आए,
मै प्यासा हूँ, इस प्यासे को, पीने का लोभ नही छूटा ॥

(१००)

मेरा जीवन कितना विचलित !!

कितनी ही रातें ऐसी है, जिनमे मै सो सकता न कभी,
इतना विह्वल हो जाता हूँ, जी भर कर रो सकता न कभी,
चाहे औरों को सुख पहुँचे, करता हूँ निज का नित अनहित ॥

जैसे नूतन घटिकाओ मे, खुद ही चाबी लग जाती है,
वैसे मेरे अन्तर में भी, कुछ आभा आती जाती है,
मै तो बेसुध हो जाता हूँ, होता रहता प्रतिपल गुंजित ॥

व्यापक मुझ में अनहद का स्वर, बजता रहता तन के भीतर,
उसके सन्मुख कोई भी स्वर, सुनता न कभी उर के भीतर,
कोई के आगे गा न सका, फिर भी रहता कितना झकृत ॥

तृतीय खण्ड

लो हम भी हँसें

आमुख

प्रस्तुत रचना हास्य प्रधान है। काव्योपवन के हास्य-कुंज मे विचरण करने की इच्छा से ही यह प्रेरित है और हास्य का आधार, 'गर्दभ' बनाया गया है। यह भोला भाला पशु चिरकाल से हास्यरस का एक सुन्दर पात्र रहा है, किसी अन्य व्यक्ति की ओर कटाक्ष न करके,कवि ने गधे की खाल ओढ कर स्वयम् गर्दभ रूप धारण किया है। 'गर्दभ काव्य' विश्व मे यत्र तत्र सर्वत्र मिलता है। आजकल अनेक हास्य पत्रो, व्यग चित्रो और कवि की अनुभूतियों मे हम इसे पाते है। 'शकर्स वीकली' प्रति सप्ताह एक गर्दभ चित्र प्रस्तुत करके अच्छा मनोरजन करता है। अंग्रेजी मे अलेक्जेन्डर पोप का 'डन्सियड' (Dunciad) नामक काव्य और स्टीवेन्सन की 'ट्रेवल्स विद ए डन्की' नामक गद्य रचना ऐसी ही कृतिया हैं।

किन्तु पुस्तक में' गर्दभ' ही सब कुछ नही हैं। वास्तव मे यह काव्य, आदि से अन्त तक समाज की आलोचना से भरा हुआ है। इसमे कुत्सित वातावरण और समाज में फैली हुई बनावटी शराफ़त का खूब भडा फोड किया गया है। प्रजातत्र मे आलोचना आवश्यक है। साहित्य भी यथार्थ से विमुख नही रह सकता। चाहे कवि को अपना स्तर झुकाना पड़े, चाहे वह कटुता को कम करके माधुर्य का मिश्रण करे, फिर भी समाज की वास्तविकता का परिचय देना कवि का एक कर्तव्य है।

हास्य रस की ओर कवि का स्वाभाविक झुकाव है। नवोदित यौवन और स्फूर्ति के कारण उसका हृदय, जीवन की वेदना को भूलकर अट्टहास करना चाहता है मानो वह हास्य के उच्च स्वर में अपनी कसको को डुबो देना चाहता है। फिर भी साम्राज्य तो दु:ख का ही है। अन्धकार शाश्वत है और दीपक का प्रकाश केवल एक अपवाद । यही कारण है कि निशीथ की नीरवता मे सतप्त हृदय पर से जब कभी कवि का अधिकार उठ सा जाता है तभी उसकी वेदना मुखर उठती है, आँसू गिरने लगते हैं और कविता बनने लगती है। उस समय के भाव भरे गीत मानो उन दुखद घडियो का प्रमाण देने के लिए ही बन

जाते हैं अन्यथा कवि एक सतत सुखी प्राणी की भांति समाज के आगे आता है और मिट जाता है।

अतः यह रचना दुःख और निराशा के विरुद्ध एक निष्फल सा आन्दोलन है कवि के हास्य का एक विकृत सा प्रतिबिम्ब है—प्रबल पवन के विरुद्ध जबर्दस्ती जलने वाले दीप की एक मन्द सी आभा है। दुःख पर विजय पाने का श्री गणेश कवि ने १५ अगस्त अर्थात् स्वतंत्रता के प्रथम प्रभात में किया था। पुस्तक की पहली कविता का जन्म और उससे लिपटी हुई भावनाओं का आभास, जिन्होंमे बाद में प्रस्तुत आकृति को धारण कर लिया, उसी दिन हुआ।

एक बात और—आजकल लोग कविता के द्वारा कवि के जीवन को समझना चाहते हैं किन्तु मेरा जीवन प्राय. तर्क से चालित हैं भावनाओ से बहुत कम। मेरा कवि—जीवन, मेरे जीवन का एक अध्याय है—शायद एक स्वर्ण अध्याय। समय समय पर कल्पना की सुखकर उडान शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक स्वास्थ्य की नितान्त आवश्यकता है। अत. लेखनी यदि उसे लिपिबद्ध कर दे तो अनुचित क्या है, वह भी ऐसी दशा में जब कि मनोरंजन के साथ समाज सुधार की भी आशा हो।

दीपक

लो हम भी हँसें

(१)

लो जी भर कर हम हँसे आज ।
नित रेंक रेंक आँसू आए, आखिर ईश्वर भी घबराए,
अब रस्सी टूट गई दुख की, हम लोटें, कूदें, हँसें आज ।।
आहें जा पहुँची अम्बर तक, अल्ला के भी पैगम्बर तक,
मालिक ने जब आज़ाद किया, तब बाड़े में क्यों घुसें आज ।।
मक्खी मच्छर ने खा डाला, नित कितना सा चारा डाला,
अब हिल मिल पूर्ण स्वतंत्र फिरें, सब प्रेम सूत्र में फँसें आज ।।

(२)

मैं भी तो कविता करता हूँ ।
तुकबन्दी से पिंड छुड़ाता, तब मैं फूला नही समाता,
किन्तु बोलते समय रजक से, मैं भयभीत रहा करता हूँ ।।
मित्रों को लख जान अकेला, खरबूजे ने भी रँग बदला,
पहन वेशभूषा अब कवि की, चाल शेर की मैं चलता हूँ ।।
स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से च्युत, सत्यं, शिवं, सुन्दरं से युत,
मेरी कविता में सारे गुण, यह एलान किया करता हूँ ।।

(३)

मै पढ़ने से घबराता हूँ ।

पुस्तक देख पसीना आता, फल सोच सोच रोना आता,
पर याद कहाँ हो सकता है, रोटी ज्यादा खा जाता हूँ ।।

गर्मी मे नित गर्मी लगती, सर्दी में नित सर्दी लगती,
वर्षा में मक्खी मच्छर से, बचकर झटपट सो जाता हूँ ।।

निद्रा आने पर भी पढ़ता, तो विरही सा आहें भरता,
चुपचाप बन्द कर पुस्तक को, टेबिल पर ही झुक जाता हूँ ।।

आयु यों ही खोता हूँ मै, पढ़ने में ही रोता हूँ मै,
क्यों सफल बनूँगा जीवन में, बस सोच यही दुख पाता हूँ ।।

(४)

क्या मुझे समझे हुए हो ?

चरम चिर औदार्य्य से अपलाभ क्यों अब तक किया है,
परम मेरी नम्रता से, अर्थ क्या सब ने लिया है,
बर्फयुत ज्वालामुखी को, शिथिल क्यों समझे हुए हो ?

लौह के सब सींकचे अपने करों से तोड़ दूँगा,
शक्ति पाते ही जगत को, मै पकड़ झकझोर दूँगा,
थकित बन्दी केसरी को, स्यार क्यों समझे हुए हो ?

मै नही यह रेणु हूँ जो, पवन सँग प्रतिदिन विचरती,
राख मेरी कर चुका जग, आग है फिर भी सुलगती,
नित धधकती निहित ज्वाला, शान्त क्यों समझे हुए हो ?

डगमगाते देख कुछ वसुधा कुटिल उपहास करती,
अल्प सी उर की विवशता, पर मुदित हो हास करती,
वासना का क्यों मुझे नव, केन्द्र सब समझे हुए हो ?

मधुर जल को क्यों, मरुस्थल ने अरे बेकार माना,
रसिक क्रन्दन क्षीण जगती, ने सजग दुष्प्यार जाना,
निबिड तम में रज्जु विषधर, सर्प क्यों समझे हुए हो ?

(५)

हाय गर्दभ रो रहा है ।
सारगर्भित एक स्वर में, भावना सब कुछ बताता,
जग-प्रसिद्ध रहस्यवादी, बन विरह के गीत गाता,
रम्य तम की खोज में, दिन रात आकुल हो रहा है ॥

प्रेयसी है दूर कितनी, यह न गर्दभ सोचता है,
एक पथ पर नित्य चलना, ही उसे तो रोचता है,
अमर सुख की याद कर, चैतन्य अपना खो रहा है ॥

आज का कवि-जगत तो, घड़ियाल सा आँसू बहाता,
जेब में पैसे पटक कर, आँसूओं के गीत गाता,
किन्तु स्वाभाविक स्वरों में, वह व्यथित हो रो रहा है ॥

(६)

मुझ पर भी कुछ रंग चढ़ा है ।
अब कुछ दिन से मुझमें नूतन, लखता हूँ अनेक परिवर्तन,
नित झलक आ रही यौवन की, स्पन्दन भी कुछ अधिक बढ़ा है ॥

नूतन राही सा मत्त हुआ, नित चलने को उन्मत्त हुआ,
मेरा मन जीवन-जलनिधि के, तट पर आकर मौन खड़ा है ॥

उस पार जाना चाहता हूँ, परिणाम यद्यपि जानता हूँ,
मैं रंग में डूबूँ न डूबूँ, यह प्रश्न अब आकर अड़ा है ॥

(७)

क्या मुझे अपना सकोगी ?

नित्य मैं अपना सभी जग, ऊब कर उच्छ्वास भरता,
पर मुझे कोई न अपनाता, अकेला वास करता,
हाय मेरी मौन कसकों की, दवा बतला सकोगी ?

जगत-हित कर्तव्य करने, से कहाँ मैं जी चुराता,
मैं नही प्रतिदान इच्छुक, काश पर विश्राम पाता,
क्या मुझे उत्साह देने, को कभी मुसका सकोगी ?

प्रवर होकर भी अरे मैं, परम निधन अछूत सा हूँ,
अखिल जग की शूद्र आँखों, में कहाँ मैं पूत सा हूँ,
क्या मुझे पहचान कर तुम, पास मेरे आ सकोगी ?

विश्व का कण कण सदा, अपना समझ मैं मुस्कराता,
जानवर तक को प्रफुल्लित, नित्य हो, पानी पिलाता,
क्या मुझे पानी पिलाने, में कभी शरमा सकोगी ?

(८)

क्या मुझे पहचानती हो ?

मोल मेरी मधुर कसकों, का तुम्हें क्या कुछ विदित है,
सजग यह उन्मत्तता मेरी, तनिक तुमको विदित है,
या गरल जल ही मिलाकर, मधु पिलाना जानती हो ?

मैं तुम्हें निर्जीव वीणा, सा कहाँ कुछ जानता हूँ,
नित्य बजकर भी सदा, ही मौन रहना जानता हूँ,
यह निनादित मूकता तुम, क्या कभी पहचानती हो ?

आत्म-श्लाघा कर सदा, गुण-रूप बहुत बखानती हो,
बीनकारी की कला भी, पर अरे कुछ जानती हो,
या वृथा ही भग्न तारों, को पकड़ कर तानती हो ?

(९)

क्या मुझ पर विश्वास नहीं है ?
निर्जीव तुम्हारी छाया भी, अब मेरे पास नहीं आती,
इन प्रतिपल चंचल नयनों से, अब सुख की श्वास नहीं आती,
क्या मुझ से मिलने को तुमको, थोड़ा सा भी अवकाश नहीं है ?
तुम खिलती हो पर सौरभ का, तुम में आवास नहीं मिलता,
तुम गाती हो उस कोकिल सा, जिसको मधुमास नही मिलता,
सच कहो तुम्हारे चेहरे पर, क्यों पहले का सा हास नहीं है ?
अम्बर से नित मेरे ऊपर, रजनी भर ओस गिरा करती,
सूनेपन में सूने मन को, रह रह कर कोस गिरा करती,
मै प्यासे का प्यासा रहता, पर क्या तुमको प्यास नहीं है ?
रे निर्मम किन अभिशापों से, अब तुम उच्छ्वास नहीं भरतीं,
पहले सी प्रेमालापों से, दिल मे उल्लास नहीं भरतीं,
क्या मेरे अधरों पर मादक, सुख का कुछ भी आभास नही है ?

(१०)

मै तुम्हें फिर से बुलाता।
मैं प्रतीक्षा में तुम्हारी, विकल हो कब से खड़ा हूँ,
प्राण की बाजी लगा कर, हाथ धो पीछे पड़ा हूँ,
क्यों तुम्हारा द्रोह मुझको, आज जी भर भर रुलाता ?

जगत के अविरल प्रहारों, से न मेरा प्रण डरा है,
भर्त्सनाओं से न मेरा, आज तक अन्तर भरा है,
लो तुम्हारा नाम ले ले, आज फिर जग को भुलाता ।।

मेघ जल से सरस उर को, कौन हा लौटा सकेगा,
तीर कोसों जा चुका कैसे पुन. अब आ सकेगा,
मैं अत. असमर्थ हो, सजनी तुम्हारे पास आता ।।

मैं तुम्हारे विमुख उर से, प्यार करके ही रहूँगा,
प्राणदायी प्रबल घातक, वार करके ही रहूँगा,
लो तुम्हारी शुष्क दृढ़ता, आत्म-बल से फिर हिलाता ।।

चिर तुम्हारी निठुरता को, आज फिर ललकारता हूँ,
प्राण रहते मैं न जीवन, में किसी से हारता हूँ,
दग्ध उर फिर आज धधकाने तरल आँसू बहाता ।।

(११)

आज तुम्हें हँसना ही होगा ।

मुझको जितना छेड़ चुकी हो, उस पर तुम खुद ही पछतालो,
मेरे कहने से पहले ही, अच्छा हो तुम ही मुस्का लो,
दूर नही रह सकती हो अब, अन्तर में बसना ही होगा ।।

मेरे युग युग के धीरज ने, रे मुझको चंचल कर डाला,
मेरी अवरोधित तृष्णा ने, लो अपना अंचल हर डाला,
चाहे नकली क्रोध बताओ, पर अब तो लसना ही होगा ।।

जैसे तूफानों की शंका से, लहरें कसमस करती है,
जैसे भ्रमरों के चिन्तन से, कलिकाएँ रसमस करती हैं,
तैसे अपने उर के ढीले, बन्धन को कसना ही होगा ।।

(१२)

जो चकित चितवन निहारूँ।
मृग-शिशु जिसमे विचरते, हों तरुणता को बताकर,
जो विहँसती हो हृदय से, स्वच्छता अपनी दिखाकर,
तो न उनके पास जाने मे, कभी कुछ भी विचारूँ ॥

आज टूटी कामनाएँ, हाय उड उड़ कर निकलती,
इन्द्रधनुषों सी गगन मे, मुदित मुड मुड़ कर निकलती,
जोड़ दे यदि वह इन्हे, तो मै सकल पीड़ा बिदारूँ ॥

नीर पर ज्यों हंस-गति से, तीर सी बनती तरंगें,
प्रणय रेखा खीचकर, कोई उठादे त्यों उमगे,
तो मधुरिमे ! उस विलोकन, से सदा सर्वस्व हारूँ ॥

कामिनी अनपढ़ भले ही, हो जगत की पुस्तकों से,
किन्तु परिचित हो तनिक सी, कवि-हृदय के मस्तकों से,
आज डी. लिट. की उपाधी, तो अभी तत्काल वारूँ ॥

(१३)

प्रेयसी, इक बात पूछूँ।
हृदय मेरा भृंग सा क्यों, स्वतः गुंजन कर रहा है,
पवन-चिन्तन नव सँदेसों, से प्रकम्पन भर रहा है,
मन-सरोवर-पद्मिनी सी, अल्प मीठी बात पूछूँ ॥

क्यों निरख अन्तर अरे तुमको, छलाँगे मारता है,
मचल कर यह क्यों स्वयं, सर्वस्व तुम पर वारता हूँ,
है विकल क्यों आज तुमसे, परम कम्पित गात पूछूँ ॥

नित्य मुझ से हृदय-धड़कन को समझना सीखती हो,
और दिन से आज तुम भी, अधिक पुलकित दीखती हो,
प्रणय-बन्धन से उलझते, प्रश्न क्या इक साथ पूछूँ ।।
अधर धर कर मधुर अधरों, पर अमर मै हो सकूँगा,
मै तुम्हें पाकर सदा को, क्लेश अपना खो सकूँगा,
आज चिर उर की अभीप्सित, क्या मिलन की रात पूछूँ ।।

(१४)

क्या तुम्हे समझा सकूँगी ?
प्रेरणा पाकर प्रणय की, मै तुम्हारे पास आई,
नित तुम्हारे हास से मैने प्रणय की श्वास पाई,
विकल उर की आह क्या, तुम तक तनिक पहुँचा सकूँगी ?
स्वतः स्पन्दित हृदय की, कामना प्रतिदिन मचलती,
प्रेममय जीवन-जलधि में, विवश नौका सी उछलती,
क्या न तुमको पास बैठा कर, तनिक सुख पा सकूँगी ?
तुम तरंगों से तरगित, हो प्रकम्पन भर रहे हो,
नाव तज मँझधार में, पर क्यों किनारा कर रहे हो,
क्या न तुमको अब डुबा कर, पार मै ले जा सकूँगी ?

(१५)

प्रियतम, अब झुरमुट से निकलो ।
सूना बन, कोई पास नहीं, कोई आने की आस नहीं,
झाँको पत्तों मे से धीरे, धीरे चुपके चुपके निकलो ।।
सोई है चारों मौन दिशा, मैं प्यासी, यह तमपूर्ण निशा,

जब तक तुम मुझसे दूर रही, मैंने कब पीड़ा पहचानी,
पर अब बैठा सोचा करता, जब से सोई क्रीडा जानी,
मै खुश था इस बेदर्दी से, मुझको क्यों हमदर्द बनाया ॥

(१८)

समझा देना भी आता है ।
तुम चपला बन सकती हो तो, मै चप्पल से फटकारूँगा,
तुम कमला बन सकती हो तो, कम्बल सिर पर दे मारूँगा,
मत समझो तुम ही तड़पाती, तड़पा देना भी आता है ॥

मै कवि हूँ, कविता कामिनि को, सुखमय जीवन देता रहता,
दुनियाँ की गर्मी कम करने, ठंडी आहें लेता रहता,
लेकिन मुझको तलवारों से, सिखला देना भी आता है ॥

हँसती हँसती रो सकती हो, चाहूँ तो बातों बातों में,
में चिर प्यासा हूँ ओ निष्ठुर ! पावस की प्यासी रातों में,
दुःख की बदली, बदली न अगर, बदला लेना भी आता है ॥

(१९)

आज उर से उर मिलाकर, प्रेयसी ! क्यों रो पड़ी तुम ?
क्यों तुम्हारे सजल मुक्ताकण बिखरते जा रहे हैं,
क्यों मुझे कर खिन्न निर्धन से बनाते जा रहे है,
मै पड़ा हूँ क्षुब्ध सा क्यों, धैर्य अपना खो चुकी तुम ?

क्या भयानक स्वप्न था, जैसे प्रलय की गर्जना हो,
भक्ष्य पर बैठे क्षुधित, मृगराज की ज्यों तर्जना हो,
प्रिय कहो किस दृश्य से, भयभीत इतनी हो पड़ी तुम ?

क्या तुम्हें भी देह की, अति क्षणिकता की याद आई
क्या तुम्हारे हृदय की, क्रन्दनमयी फरियाद आई,
विद्ध हरिणी सी शिथिल, क्यों आज आकुल हो पड़ी तुम ?

जीव है अपना अमर, हम जन्म लेते ही रहेंगे,
प्रेम का सब विश्व को, सन्देश देते ही रहेंगे,
हम बनेंगे विश्व का कण कण, व्यथित क्यों हो पड़ी तुम ।।

हर प्रलय में सृष्टि है, हर सृष्टि में विध्वंस रहता,
पर अजर सुख में सदा, यह अमर मानस हंस रहता,
तब करों से क्लेश के, भीषण अचल क्यों ढो पड़ी तुम ?

स्वर्ग में मरने बिछुड़ने का मजा मिलता कहाँ है,
तब चलें हम स्वर्ग में क्यें, जब न नूतनता वहाँ है,
स्वर्ग से यह जग भला, क्यों व्यर्थ दुख से रो पड़ी तुम ?

देखना हम देवता सा, कर्म कोई कर न बैठें,
देवगण जलते सदा, तुझको कहीं वे हर न बैठें,
चुप रहो क्यों इंदिरा सी, मोतियों में सो पड़ीं तुम ?

(२०)

मैं भी पाषाण बना होता ।
मैं मलय-पवन के झोकों से, सुमनों सा क्यों खिल उठता हूँ,
लज्जित अलसाई ऊषा की, लाली लख क्यों हिल उठता हूँ,
स्वाभाविकता का मर्दन कर, मै भी निष्प्राण बना होता ।।

उँगलियाँ बताता जग मुझको, सब कुछ आश्चर्यचकित सुनता,
मै अपनी भावुकता विषयक, नित बातें विविध घृणित सुनता,
मेरे इस कटु स्पन्दन से, मैं भी अनजान बना होता ।।

मेरी सीमित मुस्कानों पर भी घूर घूर कर सब तकते,
आशा की खिलती पंखड़ियाँ, सब चूर चूर कर ही थकते,
इस शुष्क अचेतन जगती में, मैं भी बेजान बना होता ।।

ये निर्बल दुनियाँ वाले सब, मुझ पर कीचड़ फेका करते,
हर रोज दुलत्ती भी चलती, गर्दभ-स्वर मे रेंका करते,
इन से छुटकारा पाने को, मै भी चट्टान बना होता ।।

(२१)

आज मैं रेकूँ न रेकूँ ।।

आज मानव रो रहा है भूख से प्रतिदिन बिलख कर,
दुख मुझे भी हो रहा है, यातना उसकी निरख कर,
साथियों सँग सुर मिलाकर, क्षुब्ध हो रेकूँ न रेकूँ ।।

मेदिनी की मौन पीड़ा, मोच खाकर उठ चुकी है,
क्रूर धनिकों से सुहागिन, आज सहसा लुट चुकी है,
आज मैं भी व्यक्ति अपने, हृदय को सेकूँ न सेकूँ ।।

विश्व तो सब जल रहा है, मै प्रणय के गान गाता,
सृष्टि के भीषण प्रलय में, मैं तरुण हो मुस्कराता,
पर जले नर पर सुधा की, बूँद कुछ फेंकूँ न फेंकू ?

(२२)

क्या मैं भी कुछ हँस पाऊँगा ?

सारी दुनिआँ हँसती रहती, मैं रोता गीत बनाने को,
प्रिय को खुश करने को रोता, अपना वह मीत बुलाने को,
वह एक बार तो आ जाए, बस मैं सारा जस पाऊँगा ।।

कविता ही मेरा अर्चन है, रोना ही मेरा ध्यान सभी,
उसकी स्मृति में खो जाना, ही मेरा सचित ज्ञान सभी,
मेरे रोने से ही तो मैं, मुझ में मादक रस लाऊँगा ॥

मेरे आँसू नीचे गिर कर, रोते जब उसे हँसाने को,
क्यों देर लगाती है तब वह, मुझको कुछ और रुलाने को,
आने तो दो, मैं रो रो कर, उसको थोड़ा कस पाऊँगा ॥

पर खुद ही रोकर हँस पड़ता, उसको पाने की आशा से,
मैं पूरा रोया क्यों न कभी, उर को भर, पूर्ण निराशा से,
विश्वास मुझे, पूरा रो कर, उसको जल्दी बस पाऊँगा ॥

तुम कुछ न समझ रे जगवालों, कातर क्यों होते देख मुझे,
मैं तो हँसने को रोता हूँ, पर तुम क्यों रोते देख मुझे,
रो कर मेरे सँग फँसो नही, वर्ना मैं भी फँस जाऊँगा ॥

(२३)

मैं हँसता हूँ या रोता हूँ ।

मेरे क्रन्दन में हास निहित, दोनों से ही जग पूर्ण विदित,
जग हँसता पहले फिर रोता, मैं तो रोने पर हँसता हूँ ॥

चाहे इसको गाना समझो, चाहे इसको रोना समझो,
बस मेरा यही एक स्वर है, मैं जब भी आतुर होता हूँ ॥

पहले लम्बी सी एक टीस, जैसे गायक की प्रथम फीस,
पीछे धीरे धीरे गाकर, मैं सुख से बेसुध होता हूँ ॥

(२४)

उस पार दिखाई पड़ता है ।

चश्मे से धुँधली धुँधली सी, कुछ छाया सी दिख पाती है,
इस तम में भी उस प्रियतम की, यह क्या माया भरमातीहै,
वह कौन रेंकता सा कोई, आकर दिखाई पड़ता है ?

उसके पीछे है पडी हुई, कवियों की सारी कविताएँ,
मानो मिलने को मचल रही, मुरलीधर से ब्रज बनिताएँ,
वह भी कोई इस कलियुग का, अवतार दिखाई पड़ता है ।।

वह सत्य, शिवं, सुन्दरं से, जग को मधुमय कर डालेगा,
अपने निर्मल वंशीरव से, पीडा सारी हर डालेगा,
बस यही एक स्वर उस प्रिय का, हथियार दिखाई पड़ता है ।।

चिर मोहक के सुन्दर स्वर को, मेरे सब साथी कवि सुनते,
मैं मौन ठगा सा रहता हूँ पर वे तो सब कुछ ही गुनते,
शायद उसका उनके घर पर, अभिसार दिखाई पड़ता है ।।

रे पोस्टमास्टर को लाओ, मेरी धडकन को सुन डालो,
मैं समझ नही ध्वनि को पाता, फौरन कागज पर लिख डालो,
उस निराकर चिर साथी का, कुछ तार दिखाई पड़ता है,

(२५)

यह मुझे क्या हो गया है ?
सृष्टी को मैंने समझने, नित हृदय पर वश किया था,
जीत कर सब कामना, पैदा जगत में यश किया था,
आज पर अब अन्त में, यह फेल कैसे हो गता है ।।

लो जँभाई बन हृदय से, ज्ञान उड़ता जा रहा है,
सत्य के प्रिय मार्ग से, क्यों ध्यान उठता जा रहा है,
कौन भेदी, दुर्ग मेरा, तोड़ भीतर घुस गया है ।।

क्रूर मेरी मौत के दिन, भी सरकते आ रहे हैं,
कोस कर मुझको, निकट, प्रतिदिन अरे मँडरा रहे हैं,
आज मेरी नाव का, पतवार कैसे खो गया है ?

गाल पिचके, बाल बिखरे, हाल बिगड़े ही अभी हैं,
पार जाने के लिये अरमान तगड़े ही अभी है,
हाय छायावाद सा यह, कौन मुझ मे खो गया है ?

शिथिल सा मै हूँ पड़ा, निज खाट पर कुछ भिनभिनाता,
भ्रान्त मधुकर सा व्यथित, टूटे स्वरों में गुनगुनाता,
एक मच्छर तनतनाता, पास आकर रो गया है ;

(२६)

उलझन कैसी आकर्षक है ?

मैं अपने हाथों ही अपनी, शय्या पर फूल बिछाता हूँ,
कोई कल्पित साथी लेकर, मन की बातें बतलाता हूँ,
पर उत्तर भी मिलते रहते, क्या पास कहीं पर दर्शक है ?

मैं सुलझा सुलझा कर थकता, नित नई पहेली को पाकर,
ये नित्य उमड़ क्यों पड़ती हैं, सुकुमार सहेली सी आकर,
मै मुक्ति-द्वार कैसे जाऊँ, बाधा जग की अपकर्षक है ।।

मुझ में यौवन की हलचल से, मतवाली लहरे टकराती,
मै बी. बी. सी. का स्टेशन, जिस पर खबरें आती जाती,
मै गीत सुनाया करता हूँ, पीड़ा भी कितनी हर्षक है ।।

मेरा मन एरोड्रोम बना, जिस पर नभयान उड़ा करते,
आते जाते चक्कर खाते, क्रीड़ा कर रोज मुड़ा करते,
मै घाव बनाता हूँ इसमें, फिर भी यह तो उत्कर्षक है ।।

(२७)

साथी, मै अभिसार करूँगा !

रे किस ने अब तक, जीवन में, मुझसे कुछ भी प्यार किया है,
जग ने युग युग तक निर्धन, पर कितना अत्याचार किया है,
अब मै भी मौके मौके से, पुलकित हो शृंगार करूँगा ।।

इस धरती को सीख सिखाने, हूकें सी उर में उठती है,
मुक्त-स्वरों से आज हृदय में, कूकें सी रह रह उठती हैं,
इस बूढ़ी सोई दुनियाँ को, मै निर्मल सँसार करूँगा ।।

प्रेम कही छिप सकता है क्या, पाकर आश्रय मेरे उर का,
मैं अविरल पीयूष लुटाता, लाकर एक घड़ा सुरपुर का,
सारी पृथ्वी को कविता से, मैं अपना परिवार करूँगा ।।

जो रोता है कुछ हँसने को, वह भी बस मुझ तक आ जाए,
मै भी ऐसी तान सुनाऊँ जिससे उथल पुथल मच जाए,
जीवन मे निन रेंक रेंक कर, चौड़े धाड़े धाड़े प्यार करूँगा ।।

(२८)

साथी, लो अब तुम सो जाओ ।

कितनी जगती रातें बीती, प्यासी आँखों ही आँखों में,
भँवरे फिर फिर कर अलसाए, मानों पाँखों ही पाँखों में,
सूने बाड़े में बन्द हुए तुम, भी अपने में खो जाओ ।

मैं तो सोया था कुम्भकरण, सा नश्वर साँसें ले लेकर,
अब तो जग लेने दो थोड़ा, अमृत उच्छ्वासें दे देकर,
मेरे सँग दुनियाँ जागेगी, तुम सोकर ताजे हो जाओ ।।

जैसे मैं पहले प्रियतम की, सुध में बेसुध हो जाता था,
अद्भुत अद्भुत चिन्ताओं से, नित कुछ का कुछ हो जाता था,
अपने बैसाखी सपनों मे, अब तुम घायल हो, रो जाओ ॥

(२९)

चाँद थोड़ा और उठ जा ।
आ रही होगी थिरकती, प्रेयसी कुछ लहलहाती,
श्याम पट-घन मे निहित हो, दामिनी सी मुस्कराती,
राह बतलाने उसे झटपट, गगन में पूर्ण उठ जा ॥

पास की आतुर तरंगे, कामना सी उठ रही है,
है किसे कुछ ज्ञात यह, जो प्रेम घटना घट रही है,
यह प्रणय-संदेश लेकर, विकल तारों के निकट जा ।

वह मिलेगी आज मुझसे, ब्रह्म मे मानों प्रकृति सी,
बात लगती है बुरी, मेरी सभी तुझको कुमति सी,
म्लान मत हो, पर यहाँ से, जा अरे कुछ दूर हट जा ॥

(३०)

आज मतवाली बनीं क्यों ?
मै तुम्हारा नाम ले दिन रात चलकर आ सका हूँ,
याद कर अभिसार सारे, सांत्वना कब पा सका हूँ,
तुम चिढ़ाने को मुझे सुसराल की गाली बनी क्यों ?

मै प्रतीक्षा मे खड़ा था, क्यों वृथा हो देर कर दी,
आस जब मिट्टी हुई, कैसे अरे तब खैर कर दी,
इस थके दिल को जलाने, आज मधु प्याली बनीं क्यों ?

क्रूर आतप से दलित हो, सकल खेती सूखती थी,
चाँदनी से खिन्न होकर, कामनाएँ कूकती थीं,
आज रुक कर अब बरसने, तुम घटा काली बनी क्यों ?

भ्रान्त राही सा व्यथित हो, तारको को तक रहा था,
विविध चिन्ता मे पड़ा मै, सब दिशाएँ लख रहा था,
अब प्रणय-पथ को बताने, आज बन-माली बनी क्यो ?

सूर्य सा दिन भर उबल कर, मै शिथिल हो रो चला था,
तृषित शिशु सा कुछ बिलखकर, शान्त होकर सो चला था,
राग भर अब फिर जगाने, प्रात की लाली बनी क्यों ?

बन्द है कब से विवश हो, जंग प्रति दिन बढ़ रहा है,
पर सुनहले स्नेह से, अब रंग फिर से चढ़ रहा है,
खोलने मेरे हृदय को, आज तुम ताली बनी क्यों ?

(३१)

प्रेयसी बारह बजी है ।

देख सूखी घास पर अब, ओस भी तो गिर पड़ी है,
पर मुझे क्यों कोस कर तू, ठोस होकर ही खड़ी है,
आज नभ में चाँदनी सी, मुग्ध हो कैसी सजी है ।।

क्या इलेक्शन में लड़ी थी, जो शिथिल है आज ऐसी,
वोट दिलवाने गई थी, या किसी के काज ऐसी,
आज तूने मत्तता निश्वास ले, कैसे तजी है ।।

मेघ से गम्भीर स्वर में, मैं खड़ा भोंपू बजाता,
देख धोबी को शयन में, मै तुझे अविरल बुलाता,
पर अभी तक दूर रहकर, तू न जाने क्यों लजी है ?

(३२)

वे जाने क्या क्या करते है ?

जाने किन किन उन्मादों ने, भ्रमरों सा उनको आ घेरा,
उनके क्षण भर हँस देने से, हो जाता है रोज अँधेरा,
वे क्लब मे घूमा करते है, हम बैठे ताका करते हैं।
उनकी बदनामी सुन सुन कर, आ जाता है रोज पसीना,
उनके फैशन के जीवन से, कैसा जीना, कैसा पीना,
वे गप्पे मारा करते है, हम बैठे फाका करते है ॥
अपने मन को बहलाने को. हम रो देते कविता रचकर,
हम कोने में दुबके रहते, चप्पल की मारो से बचकर,
वे जब औरों सँग इठलाते, अँगारे बरसा करते हैं ॥

(३३)

कुछ कहने को मन ललचाता ।

अब मै भी तो हूँ कुछ जवान, मुझ पर भी रंगत आई है,
बच्चों के ऊपर की दुनियाँ, में अपनी टाँग चलाई है,
मेरी उगती मूँछों को भी, नित बढ़ने का प्रण तड़पाता ॥
अब तक मैंने पीड़ा पाली, पीड़ा ने भी मुझको पाला,
वारिधि ने सीपों को पाला, उन ने रत्नाकर कर डाला,
निर्जीवों को पीड़ित पीड़ा, से करने को मै हूँ गाता ॥
कविता करना क्या शुरु किया, नित नारी को देखा करता,
मै स्वयं न नारी बन जाऊँ, यह डर डर कर सोचा करता,
मेरा चश्मा भी आँखों पर, अब तो चढ़ने मे शरमाता ॥
मैं कुछ भी नहीं बनू फिर भी, नित सब कुछ ही बन सकता हूँ,
कवियों से कुछ भी दूर नही, शीतल दाहक हो सकता हूँ,
मै बन बन कर ही मिटजाता, पर असली कभी न बन पाता ॥

(३४)

रे मै तारों तक जा पाता ।।

इस धरती पर रहने वाले, जब रुपये से अभिसार करें,
जीवित होकर भी जड़ बन कर, नित निर्जीवो से प्यार करें,
तब क्यों न सभी कविताएँ ले, मै इनसे ऊपर उड़ जाता ।।

इस जग मे बैठे ही मैं तो, इन सब से बोला करता हूँ,
चाहे जग वाले सुने नही, अपना दिल खोला करता हूँ,
वे रोज बुलाते हैं मुझको, पर मैं रोकर चुप हो जाता ।।

ये दुनियाँवाले क्या जानें, तारों मे प्रेमी रहते है,
बस रात हुई औ हम अपनी, सुख-दुख की गाथा कहते है,
हम प्रतिदिन मिलते रहते है, पर विरह सदा ही तड़पाता ।।

हमको भाषा से क्या मतलब, हमतो बस भाव समझते है,
जो तृप्त नही हो पाया है, वह प्रणय अभाव समझते हैं,
समझे भी समझे मुझे कहाँ, पर नासमझों को समझाता।।

सरिता के कूलों पर बैठे, चकवों से आहें भरते है,
वे रात देख आकुल होते, हम प्रात देख रो पड़ते हैं ।
तारों के आँसू गिर पड़ते, शबनम से बेसुध हो जाता ।।

बस जाने की ही देर मुझे, वे मौन खड़े हैं प्रणय-कुंज,
देदीप्यमान हैं कब से वे, मेरी आशा के ज्योति-पुंज,
पर मै तो कोई प्रेयसि को, इस वसुधा पर भी ले आता ।।

इस जगवालों को तरसाने, अपना स्पन्दन दरसाने,
इन पर भी अमृत बरसाने, इनमे भी पीड़ा सरसाने,
उस को अपने सँग हँस हँसकर, नित सीनेमा मे लेजाता ।।

(३५)

क्यों मुझे उपदेश देती ?

था समय जब मै प्रतीक्षा मे, खड़ा नित काँपता था,
प्रेम के प्राकट्य के डर से, शिथिल हो हाँपता था,
पर उसी भौतिक विषय का, आज क्यों सन्देश देती ?

पल्लवन तो हो चुका, प्रतिदिन तुम्हारे पास रह कर,
अब हृदय ऊपर उठा है, दिव्यता की श्वास लेकर,
आज मेरी कल्पनाओं, को वही क्यों भेष देती ?

तुम बनो मत शृंखला, मेरी प्रणय के अगम-पथ पर,
बल्कि मेरे साथ रह कर, ही चलो स्वर्गीय रथ पर,
आज बढ़ते देखकर तुम, क्यों पुरानी ठेस देतीं ?

(३६)

मैं बातें कैसी करता हूँ ॥

युग युग के सब विद्वानों का, मुझ में सारा सन्देश भरा,
मेरे मस्तक में भी देखो, ईसाओं का उपदेश भरा,
मै दर्शन और पुराणों को, देखे अनदेखे धरता हूँ ॥

पर यौवन के उन्मादों से, बाते बाते ही रह जाती,
मेरी आहें कहते कहते, नित कुछ का कुछ ही कह जातीं,
मै गीता पढ़ कर भी प्रतिदिन, आँसू बन बन कर झरता हूँ ॥

मेरे भीतर कोई ऐसा, रहता है जो सोहित होता,
सब वेदों को अपनाकर भी, सुन्दरता पर मोहित होता,
रे मैं कैसे विद्वान् बनूँ, बैठा बैठा ही मरता हूँ ॥

(३७)

आज चिन्तन कर चुका हूँ ।।

प्रेयसी से दूर रहकर, मैं किताबों पर झुका था,
खोजने प्रिय अमर पीड़ा, मैं अँधेरे में लुका था,
किन्तु उससे, ग्रन्थ पढ़ कर, भी न ग्रन्थन कर चुका हूँ ।।

बुद्धि बढ़ते देख कर, मेरी कई विद्वान् रेंके,
वाद पर मैंने सभी, उनके सदा झकझोर फेंके,
आज किसके क्षीण झोंके, से प्रकम्पन कर चुका हूँ ।।

स्वप्न में किसको बुला कर, विकल उर के शूल छोड़े,
आज अपने आप मैंने, भावना के फूल तोड़े,
किस विमुग्धा को सजाने, आज गुम्फन कर चुका हूँ ।।

(३८)

बलवती दुलत्ती चलती है ।

यह मेरा सबसे प्रबल शस्त्र, जिसके आगे सब थर्राते,
मेरे पग, वज्र गिराने को, माया - ईश्वर से जुड़ जाते,
जो कोई भी पीछे रहता, उसकी ही गलती खलती है ।।

लोगों के पापों के कारण, जब मैं चिन्तित हो जाता हूँ,
जब धर्मों की ग्लानी होती, फौरन ही दौड़ा आता हूँ,
बजते ही मेरा शंखनाद, वसुधा पर आँधी चलती है ।।

केवल अवशेष यही साधन, अब नूतन विश्व बनाने का,
घबराई दुनियाँ को झटपट, समझा कर आगे लाने का,
मेरी लातों में ही देखो, मानवता प्रतिदिन पलती है ।।

(३९)

मैं होते ही क्यों मर न गया ?

मै प्रतिदिन हँसते हँसते ही, सबको तड़पाता आया हूँ,
मै सब की चलते चलते ही, क्यों धूल उड़ाता आया हूँ,
मं अपने उल्टे रस्ते से, क्यों थोड़ा भी हटकर न गया ?

किसने मेरे उर को देखा, मैंने किसके उर को देखा,
मैं तो अपनी ही ओट रहा, बजते कब नूपुर को देखा,
इस सूनेपन से घबराकर, पहले ही क्यों जी भर न गया ?
पीड़ा पाकर मेरे मुँह से, अब तक तो गाली ही निकली,
सदमे खाकर मेरी श्वासें, नागिन सी काली ही निकलीं,
रे इतना बकने के बदले, मैं क्यों कोई के घर न गया ?

(४०)

एक अध्यापक बखानूँ ।

हाथ फैलाकर पढ़ाता, भैंस के ज्यों सीग टेढ़े,
ठीक जैसे बायलाजी मे, बटुक मेंढक खदेड़े,
हँस पड़ो तो क्रुद्ध होता, एक पर उसकी न मानूँ ॥
रोज वह मेनर सिखाता, एक भी मेनर न उसमें,
क्लास से बाहर निकाले, बस यही तहजीब उसमें,
पिट चुका दो तीन से तो, किन्तु मैं क्यों बैर ठानूँ ॥
हाय मैंने नोटबुक को, क्यों वृथा काली करी है,
रोज़ उसकी चेषटा के, कारटूनों से भरी है,
वह हमारा तो गुरू है, मैं उसे क्यों गैर जानूँ ॥
रोल नम्बर पूछता इम्तान में कैसे न रोऊँ,
जो कही वह जान पाया, तो कहाँ मैं पास होऊँ,
मैं न बटरिग कर सका हूँ, किन्तु मरने की न ठानूँ ॥

(४१)

मैं ऊब गया बकते बकते ॥

गाली देने की भी हद है, गाली देकर ही ज्ञात हुआ,
माली होना कितना मुश्किल, माली होकर अवदात हुआ,
कितने पशुओं को ललकारूँ, इनके पीछे भगते भगते ॥

इन सूखे पौधों को कब तक, काटूँ मैं सीधे बढ़ने को,
बनचर से रक्षाकर इनकी, सींचूँ नित ऊँचे चढ़ने को,
मैं तो कर पर कर, धर करके, बस बैठ गया थकते थकते ॥

चातक सा ऊपर लखता हूँ, बादल ही एक सहारा है,
अब तो बूढ़ा बन रो रोकर, मैंने परजन्य पुकारा है,
मैं जल के आने की आशा, में बूढ़ गया तकते तकते ॥

(४२)

कैसे माया का फन्द मिटे ?

ऐसी कुटिला हो बैठी है, मेरे सीधे वक्षस्थल में,
जैसे मादकता घर करती, नव यौवन के अन्तस्थल में,
यह ढकने से उमड़ी पड़ती, कैसे इसका आनन्द मिटे ॥

जब तक यह भीतर रहती है, तब ज्ञान न अन्दर आ सकता,
इस पर्देवाली से देखो, सम्मान न कोई पा सकता,
इस नखरे करने वाली का, दिन भर हँसना स्वच्छंद मिटे ॥

मैं तो राजी हूँ ले जाए, कोई सुसरी खर्चीली को,
जो सिगरेटों में रहते हों, इस रम्य सिगार नशीली को,
आखिर मुझे पढ़नेवाले के, घर से तो इसकी गन्ध मिटे ॥

(४३)

नियति ! मनुज क्यों मुझे बनाया ?

कितने बोझों से लदा हुआ, मानव का जीवन होता है,
मेरे कर्त्तव्य बड़े गुरुतर, मन सोच सोच कर रोता है,
रे किस चक्कर में ला डाला, अति बुद्धिशील क्यों मुझे बनाया ?

जग ने मुझको पाला पोसा, मुझको भी तो कुछ करना है,
बेरोक टोक बन निशानाथ, वन उपवन में कब फिरना है,
सब बोझ हटाना ही होगा, सच्चा सेवक क्यों मुझे बनाया ?

मैं अड़ा रहूँ पर हटूँ नहीं, फिर भी तो सीधा साधा सा,
मै फर्जी बनने को उत्सुक, मानो शतरंज का प्यादा सा,
मै जीतूँगा इच्छाओं को, पर अति दुर्बल क्यों मुझे बनाया ?

मेरा उर भी कितना विस्तृत, फिर भी मै रहता शरमाया,
अभिलाषाओं से गरमाया, रहकर भी रहता नरमाया,
मै रेंका करता खड़ा खड़ा, इतना चिन्तित क्यों मुझे बनाया ?

(४४)

मै अब तक कैसे ज़िदा हूँ ?

अट्ठारह बरसातें झेलीं, मैंने छोटे से छाते पर,
कविता लिख लिखकर हार गया, सूने यौवन मदमाते पर,
मुझ को बुड्ढा क्यों नहीं किया, मैं अब तक तिमिर परिन्दा हूँ ॥

मैं भी धीरे धीरे चलता, कोई कुछ मेरी भी सुनता,
मै भी अपने बेटे पोतों को, समझाने को सिर धुनता,
आखिर मैं क्यों नवयुवकों के, निन्दित जग का बाशिन्दा हूँ ॥

दुनियाँ पर मैंने जुल्म किया, जो मन में आया बक डाला,
जिन्दा दिल की सब हरकत ने, निज जीवन भी कब ढक डाला,
मुझसे बर्दाश्त नही होता, करता अपनी भी निन्दा हूँ ।।

मैंने जाने क्या ठाना था, जग को देना हरजाना था,
गलती पर भी पछताना था, चुल्लू भरकर मर जाना था,
पर अब भी साँसें लेता हूँ, मैं खुद भी तो शरमिन्दा हूँ ।।

विधवा की आँखों सा मुझको, भी हँसते आँसू पीना था,
मुझको भी ऐसी दुनियाँ मे, मुर्दा बनकर ही जीना था,
फिर जग का बोझा बनने को, क्यों जिंदा रहकर ज़िदा हूँ ।।

(४५)

मुझको मेरा मन लौटा दो ।।

बस चिन्तन करना छोड़ेंगे, इस बोझी निर्मम धरणी का,
रे सलिल कहाँ मिल सकता है, अतिशय सूखी निर्झरणी का,
खाली गड्ढे में छूट पड़ा, मेरा रीता मन–लौटा दो ।।

कितने रुपयों से लदा हुआ, इसका लोभी उदरस्थल है,
कूड़े करकट से भरा हुआ, अन्तर निर्जीव मरुस्थल है,
मुझ निर्धन का जीवन साथी, मेरा खोया धन लौटा दो ।।

मैं समझा था सुन्दर होगा, इसका अन्तर्हित अन्तस्थल,
झूठी छाया से प्रेम किया मैंने भी क्यों बनकर निर्मल,
लाओ मेरे उपकार भरे, सारे आलिगन लौटा दो ।।

मैंने अपना मन भी खोया, सुख पाने की तो बात कहाँ,
मैंने अपनापन भी खोया, मेरे दुक्खों का प्रात कहाँ,
नर के निर्धारित नियमों के, सारे उल्लंघन लौटा दो ।।

अब तक जितने अभिसार किये, उन पर रो रो कर गाऊँगा,
मैं मन की प्यास बुझाने को, अपने आँसू भर लाऊँगा,
बस साथ लगा हो जिसके भी, मेरा प्यासा मन लौटा दो ॥

(४६)

जाओ हम भी याद रखेंगे।
पाला पड़ता है प्रतिदिन ही, कोई उल्लू के चाचे से,
उल्टे, सीधे, मोटे, पतले, असली मानव के ढाँचे से,
इन गदहों की अगले दिन से, हम कापी में तादाद रखेंगे ॥

कितने नम्बर का बेवकूफ, क्यों हँस हँसकर मिलने आया,
मेरी बगिया में कौन फूल, क्यों हिल हिलकर खिलने आया,
हम भी मानवता में फँसकर, सब का दिल आबाद रखेंगे ॥

हम बहुत सुखी हैं सब आएँ, जग के सब शहरों गाँवों से,
हर कुछ फरमाएँ मुख रूपी, अपनी गम्भीर गुफाओं से,
अपना कोई उनके आगे, हम कभी नहीं अवसाद रखेंगे ॥

हम प्रेम करेंगे सबसे ही, मधु के टूटे से प्यालों सा,
कोई पीये कोई फेंके, कर में लेकर मतवालों सा,
पर दुनियाँवालों के आगे, पीने की ही फरियाद रखेंगे ॥

नित रात मचलती आएगी, नित हमको खूब रुलाएगी,
नित रह रहकर सूनेपन में, हम पर तलवार चलाएगी,
पर बेहोशी मे भी उनकी, हम हल्की सी याद रखेंगे ॥

बस रोज हमारी फुलवारी, यों बस बस कर ही उजड़ पड़े,
जीना सीखेंगे उस सुख से, जो बन बनकर नित बि ड़ पड़े,
हम अपने हाथों अपने घर, को जीवन भर बरबाद रखेंगे ॥

(४७)

मेरी दुक्खों से अनबन है ।।

जब से मैं डेमोक्रेट हुआ, आफत मुझसे घबराती है,
मेरी आकुलता देख सदा, पीड़ा घुडदौड़ मचाती है,
पर मुझको लख पागल होता, रोता क्यों मेरा अध्यन है ?

यह सदी बीसवी कैसी है, जिसमें उल्लू दिन मे फिरते,
रोते रहते कायर बनकर, प्रतिदिन चुल्लू भर कर मरते,
पर मेरा मन सूना होकर, भी मुझको तो नन्दन वन है ।।

मैंने दुक्खों को धमकाया, तुम हटो यहाँ से भगो कही,
बीमारी से हँसकर बोला, तुम सो जाओ, अब जगो नहीं,
पर नींद मुझे कब आएगी, खिलता रहता मेरा मन है ।।

(४८)

मैं रोता बातों बातों में ।।

कुछ काम नही कुछ काज नही, यों ही मक्खी मारा करता,
कुछ करता भी तो इधर उधर, सड़कों पर आवारा फिरता,
मैं नित ठुकराया जाता हूँ, दुनियाँ की लातों लातों में ।।

फिर भी मैं ऐसा गाफिल हूँ, बैठा गप्पें ताना करता,
जिनका न कहीं भी ओर छोर, ऐसी बातें छाना करता,
मै सूरज चमका देता हूँ, कितनी ही रातों रातों में ।।

मुझको तो कुछ ऐसी चिढ़ है, दुनियादारी के चक्कर से,
तबियत ही लगती नहीं कभी, इस फीके से गुड़ शक्कर से,
ऊपर से बेदर्दी सहनी, पड़ती है घातों घातों मे ।।

(४६)

मैं नित मुस्काता रहता हूँ ॥
मेरे अधरों पर ओस भरी, नर्मी दिन रात बनी रहती,
चाहे कितना ही संकट हो, मस्ती भरपूर छनी रहती,
ये सूख न पाएँ जीवन भर, आँसू बरसाता रहता हूँ ॥

जैसे मदिरा की लघु प्याली, पूरी भरने पर ढलती है,
वैसे ही प्रणय अश्रु धारा, उद्वेलित हो बह चलती है,
अपने आँसू की बूँदों से, मैं बीन बजाता रहता हूँ ॥

जैसे धोबी अपने तट पर, जब कपड़े धोता रहता है,
कोई देखो या मत देखो, गाकर खुश होता रहता है,
वैसी ही, प्यार करो न करो, मैं ही खुद गाता रहता हूँ ॥

(५०)

स्वप्नों पर अधिकार किया है।
जब भी चाहूँ, जिससे चाहूँ, प्रश्नोत्तर करता रहता हूँ,
मेरी बाधा, भव की बाधा, उतरोत्तर हरता रहता हूँ,
मैंने अपने अन्तस्थल को, सपने में ही सुकुमार किया है ॥

मेरे बर्तावों को पूछो, उन लोगों से जो आए हैं,
मेरी सब मादकताओं सँग, जिनने नित रूप दिखाए हैं,
कवियों कैसा प्रतिदिन अनुपम, अति कोमल शिष्टाचार किया है ॥

है किसकी इतनी हिम्मत जो, आने से कुछ इन्कार करे,
मेरे आगे बन्दी बनकर, झुक जाना अस्वीकार करे,
मैंने तो मीठे शब्दों से, सब के ऊपर ही वार किया है ॥

(५१)

क्यों किसी को मन बताऊँ ?

विश्व मेरी वारुणी का, मोल करने क्यों चला है,
आम खाले पेट भर, गुठली निगलने क्यों चला है,
दे सका उतना दिया, अपना निजी क्यों धन बताऊँ ?

देख लो पद-चिन्ह केवल, पथ नहीं पूछो सजल से,
अथ इती पूछो नहीं बस, वेग से बढ़ते विकल से,
मैं चला ही जा रहा, कैसे कहाँ उपवन बताऊँ ?

भावना क्या है हृदय में, यह न कोई जान पाए,
प्रेयसी है कौन मेरी, यह नही पहचान पाए,
मैं स्वयं कब देख पाया, कल्पना से तन बताऊँ ॥

(५२)

दो दो मिलकर हम चार हुए।

मेरा दिल, मेरी सजनी भी, दोनों ही मुझ में रहते है,
मेरी सजनी में मैं रहता, वे दोनों भी कुछ कहते हैं,
इन कुटियों के भीतर जाने, कितने अब तक अभिसार हुए ॥

हम दोनों ही है एक, मगर अगणित हो जाना आता है,
हम दोनों के प्रेमी दिल को, नित रास रचाना आता है,
दिल की दिल में ही रख रखकर, हम चारों ही बेकार हुए ॥

ऐसी औषध मिल सकती है, क्या दुनियाँ के विज्ञानों में,
जिसको खाकर हम युग युग तक, हँसते जाएँ मधु पानों में,
बीमारों के उपचारों हित, हम चिन्तित सौ सौ बार हुए ॥

(५३)

मूक पत्थर जा रहे क्यों, कोसते मेरी जवानी ?
चाहते क्यों, दे चुनौती, मै प्रथम इनको समझ लूँ,
छोड़कर उत्कर्ष निज को बाध्य कर, इनसे उलझ लूँ,
किन्तु क्योंकर बीत सकती, है यहीं मेरी कहानी ?

मैं हिमालय हूँ भला, कैसे कभी इनसे हिलूँगा,
नित कहाँ तक पतन कर अपना धरातल से मिलूँगा
बम गिराओ पर न मिट, सकती कभी मेरी निशानी ॥

ये खुशी होंगे अगर, नदियाँ बहाना छोड़ देऊँ,
शून्य बनकर इन सरीखा, लेखनी को तोड़ देऊँ,
क्या लड़ूँ इन कंकड़ों से, धूल है जिनकी जवानी ॥

(५४)

गर्दभ में छोटापन भी है ।
थोड़े से तृण खाकर समझे, लो साफ करी है धरती को,
दस योजन पर भी जा ढूँढ़े, अपनी चिर आहें भरती को,
अड़ रहता पत्थर सा पट्ठा, छोटे में खोटापन भी है ॥

अपने बैसाखी चिन्तन से, नित मोटा होता जाता है,
जब भी वह रेंका करता है, मन मे खुश होता जाता है,
उसके स्वर में भी सहगल सा, जाने क्यों मोटापन भी है ॥

वह रस्ते चलते चलते ही, कुछ मक्कारी कर देता है,
ज्यों बाँस बरेली का बढ़ई, थक कर आरी धर देता है,
नँदनन्दन सा नर्तन करने, से थोड़ा ढोटापन भी है ॥

(५५)

रे मै काम नही कर पाया ।।

सोचा था मैंने जीवन में, एक घूँट तो पी ही लूँगा,
मदिरा की प्याली से मैं भी, जैसे तैसे जी ही लूँगा,
लेकिन मेरे टूटे मन से, कोई जाम नहीं भर पाया ।।

मैंने जिसको सुख समझा था, वह केवल पागलपन निकला,
रमणी का कोमल चिन्तन तो, मेरा भौतिक बन्धन निकला,
यश पाना तो दूर रहा, निज को बदनाम नहीं कर पाया ।।

जैसे रोज जुलाहा उठकर, संध्या तक बुनता रहता है,
वैसे ही भावों को चुनकर, कवि मस्तक धुनता रहता है,
इस दो कौड़ी के पेशे से, कुछ आराम नहीं कर पाया ।।

(५६)

सपने आते ही रहते है ।।

जब भी देखो इनकी बाजी, कैसी दमतोड़ लगी रहती,
नारी जन में सुन्दरता की, जैसे नित होड़ लगी रहती,
जाने कितने भावुक हम से, कुछ कहलाते ही रहते हैं ।।

गधियाँ जग की, परियाँ बनकर, मेरे सँग क्यों हँसती रहती,
निर्दय से निर्दय भी कोमल, बन कर उर में बसती रहतीं,
ईश्वर जाने हम भी कितने, उर में जाते ही रहते हैं ।।

आना जाना इस दुनियाँ का, रे हर दम जारी रहता है,
मीठे मीठे सपनों पर भी, यह जीवन भारी रहता है,
हम रोक न पाए अपने को, बस शरमाते ही रहते हैं ।।

(५७)

कीचड़ जल पर क्यों उठ आया ?

रे किसने कोशिश की मेरे, विषयों को बाहर लाने में,
कुछ वर्ष लगेंगे फिर मुझको, मेरा जल साफ बनाने में,
मेरे मन पर हमला करने, क्या कोई गुट का गुट आया ।।

क्या कोई गन्दी साँसों ने, जल मे जाकर आवास किया,
मन के जल की निर्मलता से, आकर्षित हो अटहास किया,
या मुझ में भी युग के कूड़े, से इतना कूड़ा जुट आया ।।

मानव-तन के सब दलदल में, मेरा मन ही बस एक महल,
यह पुण्डरीक ही ज्योतिर्मय, रखता मैं जिसको पूर्ण धवल,
इससे स्पर्धा करने को, लीचड़पन क्यों मन में आया ।।

(५८)

आवरण कैसा पड़ा है ।

रात भर जग जग व्यथित, उर ने हजारों दिन बिताए,
हृदयहीन असंख्य तारक-वृन्द सब गिन गिन बिताए,
पर अभी लज्जित उषा का, भेद वैसा ही पड़ा है ।।

तुम क्षितिज सी दूर होतीं, काश मैं कुछ पास आता,
नीद प्रतिदिन दूर करने, प्रातयुत मधुमास आता,
आह भर कब से वियोगी, उर, प्रतीक्षा में पड़ा है ।।

क्यों प्रकृति ! तुम कवि-हृदय से, भी छिपाना जानती हो,
'सत्य, शिव, सुन्दर' उपासक, से लड़ाई ठानती हो,
चन्द्रमुख को क्यों छिपाने, मेघपट घूँघट कढ़ा है ।।

(५९)

प्रेत क्या मै भी बनूँगा ?

विश्व ने जो कुछ व्यथाएँ, दी वही क्या है तनिक सी,
जीव मेरा नित तड़पता, क्या सजाएँ है क्षणिक सी ?
ताड़ना का और विस्तृत, खेत क्या मैं भी बनूँगा ?
इस जगत की भर्त्सना ने, खूब मुझको पीस डाला,
दाँत पर मेरे न पिसते, व्यर्थ मुझको घीस डाला,
उस जगत की नित्य पिसती, रेत क्या मै भी बनूँगा ?
प्रेम करते जो सभी से, प्रेत वे बनते सभी है,
मनुज की अति घृणित, शंकाएँ सकल यदि ये सही हैं,
साथियों सँग तब प्रणय के, हेत, क्या मैं भी बनूँगा ?
जीव औ निर्जीव बनकर, कल्पना से तन बदलता,
कवि बना क्या कम यही, मैं प्रेत सा नित रँग बदलता,
श्वेत रहता मै यहाँ ही, श्वेत क्या फिर भी बनूँगा ।।

(६०)

दुनियाँ गदहे पर क्यों हँसती ?

भोला भाला, सीधा साधा प्रेमी भी कितना सच्चा है,
जंगल का राजा भी उससे, आगे बढ़ने में कच्चा है,
वह भू के ऊपर हँसता है, पर धरती क्यों उस पर हँसती ?
सबसे अच्छा भाषण देता, लीडर भी कितना अच्छा है,
पशुओं में डेमोक्रेसी का, प्लीडर भी कितना अच्छा है,
मानव मूरख समझे न कभी, पर उन्नत नारी क्यों हँसती ?
आवश्यकता क्या रहती है, उसके आगे कन्वेसर की,
वह चीटिंग करता है न कभी, बातें न बनाता बे सर की,
मंत्री होना उसका हक है, कोई दलबंदी क्यों हँसती ?

(६१)

कहते भी तो बनता न कभी ॥

रजनी भर साहस करता हूँ, दिन में उससे कह देने को,
रसधर सा घिर कर चपला का, चुंबन तक भी कर लेने को,
पर जग की मारुत से उल्टा, बहते भी तो बनता न कभी ॥

उस तक जाते ही सब चिन्तन, वैसे का वैसा रह जाता,
जैसे कन्दुक टप्पे खाकर, वापस हाथों मे आ जाता,
पर इस कन्दुक को कर मे हो, रहते भी तो बनता न कभी ॥

मेरे अन्तर को जानें क्या, रे सूनापन खलता रहता,
सूने तम में कोई दीपक, जैसे रोता जलता रहता,
यह घुल घुल मिटना सावन में, सहते भी तो बनता न कभी ॥

(६२)

मिट्टी में मिलाकर भी मेरा संसार लिये बैठे हैं वो ॥
काँटें फैलाकर भी पथ में, गुलज़ार लिये बैठे हैं वो ।
सारी दुनियाँ का ही दिल में, अभिसार लिये बैठे है वो ॥
रे हमको सुलगाने वाले, अंगार लिये बैठे हैं वो ।

कितने सीधे साधे दिखते, तलवार लिये बैठे हैं वो ॥
अपने हाथों ही जख्मी कर, बीमार लिये बैठे है वो ।
करते करते ही प्यार अभी, अधिकार लिये बैठे हैं वो ॥

कहते जाते हैं ऊपर से, उपचार लिये बैठे है वो ।
नित आकर्षित करने वाला, व्यवहार लिये बैठे हैं वो ।
अपने अधरों पर जगती का, शृंगार लिये बैठे है वो ॥

(६३)

जीता न कभी इस जीवन में, पर जीना पड़ता है मुझको ।।

काँटों सी चुभती है जग को, मेरी यह खोटी सी मस्ती,
मैं रोज़ भुलाने बैठा हूँ, मेरी यह छोटी सी हस्ती,
पीता न कभी कविता रस को, पर पीना पड़ता है मुझको ।।

मर जाना तो कायरता है, चुप रहना उससे भी मुश्किल,
लड़ना भिड़ना अपराध बना, छुप रहना उससे भी मुश्किल,
करता न कभी मादक क्रन्दन, पर करना पड़ता है मुझको ।।

धरणी को कब अच्छा लगता, मेरा यह बहना घुल घुलकर,
मैं कविता से रोके रहना, मेरा यह रहता खुल खुल कर,
सीता न कभी इन घावों को, पर सीना पड़ता है मुझको ।।

(६४)

प्रिय इतनी जल्दी कौन उठे ?

इन छिपते तारों को देखो, सुख से आमण्डित हैं अब भी,
प्रेमाश्रु गिराकर कलियों पर, कितने आनन्दित हैं अब भी,
हम तो फिर नूतन प्रेमी है, मन को कलपाकर कौन उठे ।।

सुस्ती में भी चंचलता है, जग के बीते रंगों में भी,
जीवन का यह कैसा अनुभव, इन अलसाए अंगों में भी,
कोमलता में भी शक्ती हे, पत्थर भी जिससे मौन उठे ।।

हम दोनों ही उठ जाएँगे, निर्माण खलेगा जब हमको,
आना जाना तजकर जग में, निर्वाण मिलेगा जब हमको,
मीठे मीठे सपने देखो, टूटा दिल लेकर कौन उठे ।।

(६५)

आज नयनों में बसा हूँ ।।

रो चुका हूँ मै बहुत कुछ, अब रुलाने की पड़ी है,
जा चुका प्रिय तक बहुत कुछ, अब बुलाने की पड़ी है,
मिट गया उसको मिटाने, रम्य अयनो में बसा हूँ ।।

आँसुओं की भेंट देकर, मूक मैने मन दिया था,
विश्व के इन प्रचुर पत्रों में, न विज्ञापन दिया था,
आहुती अपनी चढ़ाकर, आज सैनों में बसा हूँ ।।

बोलती है स्वयम् से ही, सारिका सी चहचहाती,
मौन छिप सकती भला क्यों, पौन से ही लहलहाती,
बीस बरसों बाद उसके, आज बैनों में बसा हूँ ।।

(६६)

वह सपने में भी शरमाती ।

चाहे मुझको सपना आए, चाहे उसको सपना आए,
नीचा मुँह कर बैठी रहती, बातें करते ही घबराती ।।

फिर भी उसमें इतना दम है, नारी में ये ही क्या कम है,
जब भी इंगित कर देता हूँ, फौरन शरमाने ही आती ।।

उसकी लज्जित मुस्कानों ने, मेरे वर्जित अरमानों मे,
ऐसा कुछ नाता जोड़ा है, निद्रा भी जिससे बल खाती ।।

(६७)

सारी दुनियाँ पागल खाना ।।

औसत सब पागल के पागल, थोड़े ज्यादा ही कम होते,
सोते हैं सब खाते पीते, कितने से जग, हँसते रोते,
चण्डूखाना बनता रहता, कितना सा जनता मैखाना ।।

पागल में पागल को कैसे, कोई पूछे कोई जाने,
घोड़े पागल, गदहे पागल, चिल्लाते हैं सब मन माने,
पर मैंने प्रिय को पहचाना, सजनी ने भी मुझको जाना ।।

रे मेरे जैसे पागल तो, कोई कोई मिल पाते हैं,
खुद भी पागल बनते जाते, औरों को रोज़ बनाते हैं,
यदि संशय हो कोई को तो, पढ़ते ही मेरे घर आना ।।

(६८)

आखिर पहले मैं ही बोला ।।

सोचा था मैंने जीवन में, जीतूँगा ही नारी से तो,
युग युग से मुझ में व्याप्त हुई, इस मीठी बीमारी से तो,
मैं पर्वत सा मजबूत बना, मैंने अपना साहस तोला ।।

मै क्रूर बनाता जाता था, वे कोमल बनती जातीं थीं,
मै जितना ही चिल्लाता था, वे उतनी ही मुस्काती थीं,
मैं पागल हो उन तक आया, उनने मुझ में अमृत घोला ।।

नारी की क्षमता मानव से, बढ़ ही जाती है बन्धन में,
नर की समता तो दानव से, टक्कर खाती है उलझन में,
दिल देकर मैं ही शरमाया, रे मैंने ही अन्तर खोला ।।

(६९)

अब जाकर वह मुस्काई है ।

मेरा मुस्काना बन्द हुआ, छेड़ा था जब मैंने रोना,
उसका दिल सारा ढूँढ चुका, ढूँढा था जब अंतिम कोना,
तब ही मेरा दिल मिल पाया, अब चोरी पर शरमाई है ।।

केवल सीधी बातों से तो, दुनियाँ में काम नहीं निकला,
पिघली आखिर वह तब जाकर, जब उसके आगे जी निकला,
मेरा दिल बेदिल होने पर, लो अब वह खुद ललचाई है ।।

उसका दिल भी था ऊब रहा, बैठा रहने से घबराकर,
मेरे दिल के सँग में आकर, आ बैठा आकर्षण पाकर,
लो वह भी बेदिल होते ही, चिल्लाकर दौड़ी आई है ॥

(७०)

प्रिय, तुम वापस जा सकती हो ।

तुमने अपने पर मान किया, जिसने मेरा अपमान किया,
बरसों पीछे मिल पाई हो, बरसों आगे जा सकती हो ॥

जो कुछ कहना था कह डाला, जो कुछ सहना था सह डाला,
चाहे रोओ, चाहे धोओ, चाहे नित मुस्काती हो ॥

तुम भी, कहना हो, तो कहलो, रहना हो तो अब भी रहलो,
जितना तड़पाया है मुझको, उतना फिर तड़पा सकती हो ॥

(७१)

✓ हँसता ही रहा इस जीवन में, रोने की तमन्ना कैसे करूँ ।

अपने गहरे घावों ऊपर, मैंने तह की तह रक्खी है,
सब लोगों से बातें कितनी, झूठी सच्ची कह रक्खी हैं,
मलता ही रहा मैं तो मरहम, धोने की तमन्ना कैसे करू ॥

सदियों तक लो खुशबू भर दी, मैंने मुरझाए फूलों में,
जन्नत में तुमको पहुँचाया, अपने आँसू के झूलों में,
खिलता ही रहा मेरा उपवन, बोने की तमन्ना कैसे करूँ ॥

कोमल हाथों से कोई भी, इन घावों को सहलाए तो,
मीठी बातों से कोई भी, टूटे दिल को बहलाए तो,
जगता ही रहा इस जीवन में, सोने की तमन्ना कैसे करूँ ॥

(७२)

उनके कटु हासों को सुनकर, मेरा मधु चिन्तन क्यों उठता ?
कोई आभास नही उनसे, कोई विश्वास नही उनसे,
रीते उच्छ्वासों को छूकर, मेरा स्पन्दन क्यों उठता ?
ये सुख के पत्थर भी थोड़े, हँस देते है कुछ मुँह मोड़े,
सूखे आवासों सँग रहकर, मेरा मन रंजन क्यों उठता ?
बिजली सी जलती रगरग मे, पीड़ा क्यों पलती पग-पग में,
सूने मधुमासों को लखकर, रे यह अलि-गुंजन क्यों उठता ?

(७३)

अब नींद मुझे क्यों आएगी ?
तरुणाई आई, लाई क्या, केवल घंटों निशि मे रोना,
चाहे कोई आए न कभी, रोते रोते कातर होना,
सजनी रूठी सो तो रूठी, सुसरी यह भी तड़पाएगी ।।
कैसे अपने मन को जीतूँ, मै हार चुका जीती बाजी,
मँझधार पड़ी नैय्या अब तो, बहना है राजी बेराजी,
मै डूब सकूँ या ऊब सकूँ, तब ही तरणी तर पाएगी ।।
रोना पड़ता है उसको जो, हँस सकने पर भी मौन रहे,
कसकें उठती है उसमे जो, बढ़ सकने पर भी गौण रहे,
यौवन जाने पर सुख आया, तो मादकता मिट जाएगी ।।

(७४)

सखि, जब वे दर्शन दे देते ।
अच्छे अच्छे वीरों का भी, लख कर दिल हिलने लग जाता,
नर-नारी के समुदायों में, जाकर जब गर्जन कर देते ।।
मरुथल सा उनका वक्षस्थल, लम्बोदर से भी बढ़ जाता,
कहते कहते ही श्रोताओं, के सुख का मर्दन कर देते ।।
चुप हो जाते सारे गदहे, बादल शरमाकर भग जाता,
भाषण करते करते जब भी, वे थोड़ा गुंजन कर देते ।।

(७५)

साथी, छोटे हो, क्या जानो ?

हूके उठती मेरे उर में, यह कैसा क्रन्दन सुरपुर में,
मेरे ठडे बर्तावों से, यह सरगर्मी कैसे जानो ॥
यौवन आने पर देखोगे, अनुभावों को अवरेखोगे,
कुछ मान नहीं वक्षस्थल मे, मेरा मन कैसे अनुमानो ॥
जग मेरे सँग रोओगे क्या, अपने सुख को खोओगे क्या,
जाओ सो जाओ बिस्तर पर, मत मेरी पीड़ा पहचानो ॥

(७६)

बागबाँ ! काँटे समेटो ।

पुष्प तो तुम चुन रहे हो, ये अलग ही बढ़ रहे है,
प्रेमियों को रोकने को, क्रूर होकर कढ रहे है,
फावड़ा लेकर प्रबलतम, हाथ धोकर शीघ्र भेंटो ॥
तुम यहाँ हो, और को, सद्प्राप्य सुख साधन जुटाने,
स्वेद देकर सज्जनों को, शेष सब पीड़ा उठाने,
कर चलो उपकार थोड़ा, रात का यह कष्ट मेटो ॥
तुम गृहस्थी हो नही, शृंगार क्योंकर जानते हो,
प्रेम करना पाप है, कहना नहीं क्यों मानते हो,
सुमन-शय्या पर वृथा ही, पागलों से तुम न लेटो ॥

(७७)

मैं अकेला क्या करूँगा ?

रो कही सकता दुखी हो, सो नही सकता सुखी हो,
पुष्प चुन चुन कर चरण पर, हाय मै किसके धरूँगा ?
कल्पना भी दूर हो ली, खूब मेरे पास रो ली,
कौन साधन पास में है, पेट मै कैसे भरूँगा ?
देख डाली पूर्ण धरती, पर न असली आह भरती,
आ रही है मृत्यु अब तो, बस उसी पर मै मरूँगा ॥

(७८)

तकदीर पढ़ूँगा आज कहीं ॥

रोती होगी जाने कब से, भूखी प्यासी पीली पीली,
कोई बुढ़िया के मुरझाए, गालों पर आँसू सी गीली,
मैं भी निर्बल भिखमँगे की, तसबीर बनूँगा आज कहीं ॥
संध्या ही रहती है मुझ में, बरसों से रोता आया हूँ,
इस रीते अस्थी-पंजर को, बरबस ही ढोता आया हूँ ॥
फिर भी सजनी से मिलने की, तदबीर करूँगा आज कहीं ॥
गाना ही है यों जीवन भर, जैसे चातक गाता रहता,
जाना ही है जग से फिर क्यों, सूनापन तड़पाता रहता,
कोई प्रण करने को कहदे, प्रणवीर बनूँगा आज कहीं ॥

(७९)

आज वह भी सो रही है ॥

आ चुका हूँ आह भरता, और दुख लेकर जहाँ से,
जा चुका था पास उसके, वह नदारद थी वहाँ से,
मैं उसे फिर खो चुका हूँ, आज वह भी खो रही है ॥
रे हमारे प्राण ही कोई पवन जाकर मिलादे,
या उसे इस प्रेम का, विश्वास जीवन भर दिला दे,
मैं उसे नित रो चुका हूँ, आज वह भी रो रही है ॥
आँसुओं से स्नान करता, हूँ सदा मैं सर्दियों में,
क्या अजब जो और भी, तैय्यार हो हमदर्दियों में,
पाप अपने धो चुका हूँ, आज वह भी धो रही है ॥

(८०)

तुम भी बोलो, हम भी बोलें ।

आखिर मैं ही कब तक बोलूँ, सजनी जब निद्रा लेती हो,
शय्या पर फूलों को भी जो, पाकर मुरझाने देती हो,
इस छोटे से जीवन में कुछ, तुम भी हो लो, हम भी होलें ॥

अम्बर भी काला होता है, वर्षा में आये बादल से,
जीवन मतवाला होता है, यौवन के छाए काजल से,
इस काजल के लग जाने से, तुम भी रो लो, हम भी रो लें ।।

हम से जगने को कहती हो, जिससे सारा जग, जग जाए,
पर तुम क्यों साँसे लेती हो, जिससे चिन्तन ही दब जाए,
सोना ही है तो फिर सँग सँग, तुम भी सो लो, हम भी सोलें।

(८१)

मानव भी क्या है एक फूल ।

इस जग के विस्तृत जंगल में, सहसा आकर खिल उठता है,
तितली को मँडराते लखकर, मादकता से हिल उठता है,
मारुत के झोकों से हँसता, कैसा मादक यह कनक फूल ।।

फूलों की विकसित होने को, तितली पर दृष्टि लगी रहती,
धरणी की सृष्टि चलाने को, मेघों से वृष्टि लगी रहती,
कोई निज में सम्पूर्ण नही, चुभता सब ही के यही शूल ।।

सूने नर का अस्तित्व नहीं, जैसे सरिता का एक कूल,
वह प्रेम बिना कैसे जीवे, जैसे भारत में ब्रिटिश रूल,
मानव, ब्रह्मा की रम्य भूल, जैसे गर्दभ की अर्द्ध भूल ।।

(८२)

मुझको मानव ही रहने दो ।

मैंने अपनी दानवता को, बरसों से खूब दबाया है,
जन साधारण से पृथक न हो, सारा देवत्व छिपाया है,
मै अपनी पूजा से डरता, बस मुझे भिखारी रहने दो ।।

पूरा दानव हो जाने पर, जग से नीचा हो जाऊँगा,
मैं पूरा देव कहाने पर, जग से ऊँचा हो जाऊँगा,
मानव, सुर-दानव का मिश्रण, मुझको जग में ही रहने दो ।।

जग की नजरों से गिरने से, मेरा मन-दर्पण बिखरेगा,
मानवता से ऊपर उठना, भी तो दुनियां को अखरेगा,
बस प्रेम-पंथ ही संधि-रेख, मुझको उसको ही गहने दो ।।

मै नही चाहता डंडे से, दानवता दरसाई जावे,
मैं नहीं चाहता हूँ मुझ पर, मालाएँ बरसाई जावे,
मत मुझे किनारा करने दो, मँझधारो मे ही बहने दो ।।

(८३)

समालोचकों ने खा डाला ।

किसको अपनी व्यथा सुनाऊँ, किसको अपनी कथा सुनाऊँ,
मुझ पर ही क्यों अरे पापियों, ने बल अपना अजमा डाला ।

इतनी जल्दी क्यों नाश किया, मुझको क्यों हाय हताश किया,
जिन पर मैंने विश्वास किया, उनने ही अरे दबा डाला ।।

घायल पर रे क्यों वार किया, सारा जीवन बेकार किया,
मेरे ग्रन्थों को ओट ओट, भूखों ने हाय चबा डाला ।।

(८४)

मैं रोया करता अपने को ।

मैंने अब तक के जीवन में, अपने मतलब की बात कही,
जब देखो तब अपने सिर पर, अपनी ही सूखी लात सही,
क्या मेरे सिर के बाल सभी, तैयार न होंगे पकने को ।।

फिर भी मैं समझ नही पाया, अपने ही अन्तर की पीड़ा,
सब जग को कैसे समझूँगा, क्या करूँ हकीमों सी क्रीड़ा,
मैं जोड़ा करता जीवन के, अपने ही टूटे सपने को ।।

जग तड़प रहा, मै भड़क रहा, अपने ही उर की ज्वाला से,
मैं रो देता, लिख भी देता, अपनी अमृतमय हाला से,
मेरे आँसू जग का शोणित, क्या नही थकेंगे रुकने को ।।

(८५)

दुनियाँ हँस देती है मुझ पर, जब मैं गीत सुनाता ।
मेरी हालत पर धरती क्या, अम्बर भी हँसता है,
रे मेरी आहों को सुनकर, मजा तुम्हें मिलता है,
मेरे संग में रोने वाला, मीत नहीं मिल पाता ।।
इस झूठी दुनियाँ से कोई, कैसे प्रीत लगाए,
लोगों ने फूलों के नीचे, पथ में शूल बिछाए,
मै बेसुध होकर बढ़ता हूँ, रो रो कर मुस्काता ।।
मै गाता जाता हूँ धुन में, ही मतवाला होकर,
ज्यों सारस बोला करता है, प्रिय की सुध में खोकर,
बगुले हँस देते हैं जब मे, कातर हो चिल्लाता ।।

(८६)

मै अपने को रोक न पाया ।
ऊजड़ उर्वर भेद न लखकर, जैसे वर्षा जल गिरता है,
मानव के हित मानवता, दरसाने वैसे जी करता है,
मै सबसे मिलता रहता हूँ, नीचों को भी टोक न पाया ।।
मै काफी ऊँचा हूँ जग से, कविता रस इस पर बरसाने,
पर दिग्गज तो हरदम मुझको, नीचा ही नीचा नित जाने,
वे तो कहते ही रहते है, सारा जीवन झोक न पाया ।।
चातक तरसे तो तरसे पर, मैं कैसे इतनों को छोड़ूँ,
केवल विद्वानों के हित ही, कैसे औरों से मुँह मोड़ूँ,
इतनी रचनाएँ रचकर भी, सीधी कीली ठोक न पाया ।।

(८७)

मैं न्हाता हूँ तब गाता हूँ ।
आहें खुद ही गाना बनतीं, औरों की साँसों तक चढ़ने,
बाहें खुद ही ऊपर तनती, सूने आलिगन को बढ़ने,
पुस्तक रे कुछ जी बहलाकर, मुस्काता हूँ तब जाता हूँ ।।

गूँजा करता कोना कोना, स्नानागारों में जाते ही,
चालू होता रोना धोना, सुन्दर सूनापन पाते ही,
शावर के सँग आँसू भी तो, बरसाता हूँ, सुख पाता हूँ ॥

मेरे गाने रोने में क्या, अन्तर है लोगों से पूछो,
आँसू दोनों में आ जाते, मेरी हालत को मत पूछो,
न्हाते गाते हैं सब ही पर, मैं गाता हूँ तब न्हाता हूँ ॥

(८८)

समझे थे जिसे हम बेगाना, अब तो लो उसी से पाला पड़ा ।
उजड़ा उजड़ा सा रहता था, मादकता की बौछारों मे,
उखड़ा उखड़ा सा रहता था, वह युवको के गुलजारो में,
समझे थे जिसे हम वीराना, उससे ही गड़बड़झाला पड़ा ।

उलटा सीधा बक देता था, हर कुछ ही मुँह मे आने पर,
वह भी थोड़ा हँस देता था, घण्टे भर तक मुस्काने पर,
समझे थे जिसे हम दीवाना, उससे ही मुँह पर ताला पड़ा ॥

सोचा हमने जल जाएगा, पागल खुद ही रोते रोते,
सोचा हमने क्या पाएगा, जीवन अपना खोते खोते,
समझे थे जिसे हम परवाना, उससे ही उर में छाला पड़ा ॥

(८९)

कार्यभारों से मरा हूँ ।
मर रहे हैं विश्व के, सारे महाकल्याणकारी,
आ रही जिम्मेवरी, पूरी महाउत्थानकारी,
शहर की बीमारियों से, क्षुब्ध काजी सा डरा हूँ ॥

एटलस भी क्या बिचारा, सोच सकता था अधिकतर,
आँसुओं से बह रहा हूँ, मैं यहाँ निर्भीक निर्भर,
देखने वाले बताते, मै सदा रहता हरा हूँ ॥

(९२)

आज रस्ते में मिली थी।

आ रही थी हसिनी सी, देह मे कुछ सनसनी सी,
मेघ-उर-विध्वंसनी सी, कुछ चली थी, कुछ हिली थी ॥

झूलती आई कहाँ से, फूल सी आई कहाँ से,
गिर चुकी थी जो नजर से, आज पलकों मे झिली थी ॥

बन्द रहती थी अभी तक, कुछ न कहती थी अभी तक,
कौन सा झोका लगा था, आज जाने क्यों खिली थी ॥

(९३)

आ गया मधुमास सजनी।

तुम बुलाती थी मुझे कब, तुम हँसाती थी मुझे कब,
किन्तु अब तो हँस पड़ेंगे, है मुझे विश्वास सजनी ॥

बुलबुलें भी बोलती है, हाय रो रो डोलती हैं,
आज फिर हम क्यों न बोलें, बोलता आकाश सजनी ॥

और का मधुमास बीता, और का उल्लास बीता,
किन्तु हम बीतें कहाँ से, आ गया बैसाख सजनी ॥

(९४)

तू जो रूठी हुई है, आज मुस्कराले।

तू क्यों बाहर ही बाहर, आज कसमसाती है,
मेरे सपनों की कली, आज रसमसाती है,
तेरे सिर से मेरी, यह गोद, गुदगुदाले ॥

तेरी गर्दन जरा क्यों आज थरथराती है,
तेरी साड़ी जरा क्यों आज सरसराती है,
मेरी इन बाहुओं में, खूब छटपटाले ॥

मेरे आकाश मे कोई भी नही टिमटिमाता,
अरे क्यों चन्द्र-मुखी का न हृदय चमचमाता,
मेरे बहते हुए इन आँसुओं में झिलमिलाले ॥

(९५)

प्रिय, अब आना क्यों छोड़ दिया ?

पहले तो तुम ही तुम रहती, थी मेरे सूने अन्तर में,
किरणों की शीतल छाया में, रजनी सी हँसती थी घर में,
तुम ने ही जिसको छेड़ा था, वह अफसाना क्यों तोड़ दिया ?

रे बुद्धी के बल पर मानव, कब तक रह सकता है जिन्दा,
अपने को केवल यंत्र बना, होता है खुद ही शरमिन्दा,
कुछ पागल बनना भी सीखो, जी बहलाना क्यों छोड़ दिया ?

कवि तो उठते जाते जग से, अरमान अभी कुछ जीते हैं,
मधुशालाएँ मिटती जातीं, पीने वाले कुछ पीते हैं,
मर जाएँ क्या हम भी, कह दो, वह मर जाना क्यों छोड़ दिया?

(९६)

सपने में तुम को समझेंगे !

सखियों की शह पाकर तुम भी, कह जाओ जितना कहना हो,
इनकी तीखी बौछारों में, वह जाओ जितना बहना हो,
हम इतने हल्के है न कभी, जो इन बातों पर चित देंगे ॥

पर याद रहेगी रातो में, इन तीरों के सब घावों की,
हम पर हावी होने वाली, तदबीरों की सब दावों की,
इन से ही उकताकर इन पर, हावी होने को सुलझेंगे ॥

मेरे हाथों में आने पर, कब तक तुम इठला पाओगी,
मुझ को इन तर्कों से कैसे, कोने में बिठला पाओगी,
तुम शरमाई जाती हो क्यों, आखिर हम तुम से क्या लेंगे ?

(९७)

लो तुम्हे उर में बसा लूँ ॥

पास प्रति दिन रह सकोगी, साँस मीठी ले सकोगी,
तुम खड़ी शरणार्थी सी, लो तुम्हें पुर में बसा लूँ ॥
हम तुम्ही यदि रो पड़ेंगे, तो सभी खुश हो पड़ेंगे,
लो तुम्हारे करुण स्वर को, व्यंग के सुर में बसा लूँ ॥
जब पड़ेगी यह दुलत्ती, तब मिलेगी घास पत्ती,
बज्र सा मधुवार करने, लो तुम्हें खुर मे बसा लूँ ॥

(९८)

सजनी, आज यहाँ मत बोलो ।

बीराना बनना पड़ता है, आपस में उर में बसने पर,
फाँसी प्रर लटकाया जाता, है लोगों को कुछ हँसने पर,
दुनियाँ मुझ को पापी कहती, मेरे सँग तुम भी मत डोलो ॥
मैंने खुद ही आँसू भरकर, दुनियाँ को नाहक दे डाले,
गिरने दो इनको धरती पर, इनकी मादकता मत तोलो ॥
आ जाना यदि आने पाओ, मेरे सपनों की रानी बन,
वीराने सँग बीरानी बन, दीवाने सग दीवानी बन,
प्यासे को प्यासा रहने दो, आज यहाँ अन्तर मत खोलो ॥

(९९)

सजनी, आज और सुस्ताले ॥

वीणा यह कब से रोती है, तू भी तो कातर होती है,
जीवन की संध्या आएगी, रजनी दिन में अभी बुलाले ॥
किसकी ताक़त है जो मुझको, रोकेगा कहने से मुझको,
जब तक तू सन्मुख बैठी है, मुझसे जो चाहे कहलाले ॥
जीने का अरमान न छूटा, पीने का अरमान न छूटा,
तू परदेसी, मैं परदेसी, जी भर आज और मुस्काले ॥

(१००)

तुम्हीं हँस रही हो, तुम्ही रो रही हो।
भुलाया तुम्ही ने मुझे इस कदर है,
हमारे बदन मे तुम्ही हो रही हो ॥
पता ही न चलता सुबह शाम का भी,
तुम्ही जग रही हो, तुम्ही सो रही हो ॥
मरूँ या जिऊँ क्या पता तुम सँभालो,
तुम्ही बस रही हो, तुम्हीं खो रही हो ॥

चतुर्थ खण्ड

कसौटी

आमुख

'कसौटी' में आदि से अन्त तक यथार्थवाद है। अनेक व्यवसायी, कवि के जीवन में आये और उसकी कविता के पात्र बन गये। उसे किसी व्यक्ति विशेष से कोई वैमनस्य नही। उसका विरोध मानव की बुराई से है—मानव से नहीं। उसे आशा है कि बुरी से बुरी वस्तु भी दुलारने से अच्छी हो जाती है, इसलिये उसे अपने पात्रों से सहानुभूति है।

समाज की वास्तविकता सब को विदित होते हुए भी, साहित्य में उसका सही अंकन करना कठिन होता है। प्रस्तुत पुस्तक काव्य भी है और आलोचना भी। चाहे कुछ लोग इसे पढ़कर बुरा मान जायें, किन्तु आनेवाली संतानों को यही पुस्तक इस समय की परिस्थितियो का एक ऐतिहासिक परिचय देगी। जिस समाज मे कलाकार भूखो मरता हो, वहाँ उससे यह आशा कैसे की जाय कि वह पेट पर पट्टी बाँधकर, दिन रात स्वप्न-लोक में ही विचरण करता रहे।

हिन्दी में आलोचनात्मक काव्य काफी लिखा जा चुका है। मेरे ये गीत अंग्रेजी के सेटायर (satire) साहित्य से मिलते है और किसी अंश तक ये पाश्चात्य यथार्थवाद से प्रेरित भी हैं। साथ ही इसमें निजी जीवन की कुछ अनुभूतियाँ भी छिपी हुई हैं।

दीपक

कसौटी

(१)

कविवर ! जी भर चिघाड़ करो ।

गाने का मौसम आया है, तुम पर भी यौवन छाया है,
दुनियाँ मे पूर्ण निरंकुश हो, जागो, अपनी ललकार करो ।।

तुम धरती पर सबसे महान्, तुम सा क्या कोई बुद्धिमान्
अपनी भाषा का खुले आम, भारत मे खूब प्रचार करो ।।

हो जाये धरती में कम्पन, जागे मानव का स्पन्दन,
फिर भी कोई पूछे न तुम्हें, तो अपने से ही प्यार करो ।।

(२)

लेखनि ! तुझ पर सब कुछ वारूँ ।

अनुरक्त हुआ तुझको पाकर, मैं तृप्त हुआ कुछ मुस्काकर,
तेरी मधुर मधुर ध्वनि पर, सब जग के वाद्य यंत्र वारूँ ।।

जब मैं बैठा लिखता होऊँ, भावों में डूब रहा होऊँ,
कोई सब जग का वैभव दे, तो भी उस पर गोली मारूँ ।।

अंगुलियों की चेतनता सी, पाण्डू पुत्रों में द्रुपदा सी,
बस रहे लेखनी मेरे कर, चाहे अपना सब कुछ हारूँ ।।

(३)

बोलो कैसा आनन्द आए ।

नीतिज्ञों का कान पकड़कर, सबको कोने में बिठलाकर,
शासक कवि-कामिनि बन जायें, शांति अखिल जग में छा जाए,

कविता ही माध्यम बन जावे, अर्ज़ी सब उसमें दी जावे,
थोड़े दिन में न्यायालय के, कागज़ प्रेम-काव्य हो जाएँ ।।

पार्लमेन्ट महफिल हो जाएँ, सब मनमाना राग सुनाएँ,
दफ्तर की सारी दावातें, मदिरा के प्याले हो जाएँ ।।

दानवता को दूर भगाएँ, सब मानव मानव बन जाएँ,
सत्य, शिवं सुन्दरं से परिपूर्ण समस्त विश्व हो जाए ।।

(४)

आलोचक जी भी क्या जाने ?

कुछ भी तो समझ नहीं पाते, सब देख तरस इन पर खाते
ये मन में फिर भी मुस्काते, पर हा ! मुस्काना क्या जाने ?

औरों से कपड़े माँग माँग, नित नित रचते ये रम्य स्वाँग,
हर ओर चलाते नित्य टाँग, पर नर्तन करना क्या जाने ?

इनको धोना और निचोना, सपने में भी ज्ञात न होना,
ये नंगे, कपड़े पाकर भी, कीमत उनकी क्या पहचाने ।।

ये प्रतिदिन रहते चिल्लाते, जैसे तैसे कुछ पा जाते,
दो दिन के नीम हकीम अरे, उर की कसकों को क्या जाने ।।

जिनके दिल में कुछ प्यार नहीं, वीणा की सी झंकार नहीं,
जिनके तन में ही तार नही, शृंगार अरे वे क्या जाने ?

(५)

बुकसेलर ने भी दुतकारा ।

इनकी सब ओछी बातों ने, मेरे दुख को इनलार्ज किया,
अति कोमल कवि के अंतर पर, जोरों से लाठी चार्ज किया,
ये विद्या के घर में रहकर, उल्लू से भी बढ़ सकते हैं,
ये अपने मतलब के आगे, जग का हित क्या कर सकते है,
इनने भी मुझसे कितने ही, सीधे लोगों को ललकारा ।।

पुस्तक पत्रों के बीच सजे, बैठे रहते है ये बूचड़ से,
मुँह लटकाए सोया करते, मानो बसन्त में पतझड से,
ये खाल ओढ कर आते हैं, कितने केसरियों के आगे,
क्या इनको डर लगता न कभी, कवियों की लेखनि के आगे
कैसे इनने दुस्साहस कर, मेरे सपनों को संहारा ।।
ये हम से पलकर हम पर ही, मित्रों के सँग गुर्राते हैं,
ये भी थोड़ी पूँजी पाकर, पल मे कितने बल खाते है,
क्या नही कभी ये सीखेंगे, उत्साहित करना मानव को,
ये पूँछ हिलाते खुश करने, चाँदी के सुन्दर दानव को,
इनने भी चुपके से उठकर, मानवता पर पजा मारा ।।

(६)

मैंने पत्रकार से पूछा ।

क्या तुम भी मानव बनते हो, दानवता का खेल खेलकर,
भोले लोगों को भड़काते, झूँठी बाते पेल पेल कर,
जिसको भी चाहो मिन्टों में, राई का पर्वत कर देते,
कैसे सच्चे सेवक बनकर, मानवता का पुट भर देते,
क्या जेल गए थे कुछ दिन को, अँग्रेजों के गत शासन में,
जो इतना आदर पाते हो, हर नेता के सम्भाषण में,
तुम तोड़ तोड़ पिछले बन्धन, साथी नूतन पथ के बनते,
पर इतिश्री कर सज्जनता, की पुतले स्वारथ के बनते,
नवराष्ट्र शलाका निर्माता, मैंने उस लुहार से पूछा ।।
उसके उत्तर थे गोल मोल, जैसे डिप्लोमेसी वाले,
ये मानवता कब सीखेंगे, निर्मल धोती टोपी वाले,
मै फिर बोला "कुछ सच कह दो, क्या चोर बजारी करतेहो,
क्यों घबड़ाये जाते हो क्या, बतलाने मे ही मरते हो,
तुम भी बस यार बड़े निकले, जो कहने मे ही आज लजे,
गर बोलो भी तो मूसल से, मानो सस्ता सा ढोल बजे,

बेचारे कितने पथ-भ्रष्टों, को तुम सच्चा सुख दे देते,
करते भी जाते टीकाएँ, ऊपर से रिश्वत ले लेते,
हल्के चित्र सजाने वाले, ऐसे चित्रकार से पूछा ।।"

(७)

अध्यापक जी कितने काबिल ।।

इनकी लम्बी चौड़ी बातों, से अम्बर भी फट जाते है,
इन पर थोड़ा हँस देने से, कितने नम्बर कट जाते है,
ये प्रश्नों का उत्तर देने, में कितने झुक कर घबराते,
अच्छे लड़कों के तो आगे, आने में ही ये शरमाते,
पर खूब सिखाने लगते है, लड़की यदि कोई हो जाहिल ।

उल्टा सीधा कुछ बतलाकर घंटा बजते ही चल पड़ते,
यदि कोई इन तक आये भी, तो भौंहों में झट बल पड़ते,
नित स्कूलों के कमरों में, बैठे रहते ये लार्ड सजे,
मानो ढीली चाबी वाला, कोई बीता रेकार्ड बजे,
इनको बस, पूरा रटने में, कैसा उम्दा कमाल हासिल ।।

हर रोज तरक्की होती है, इनसे पढ़ने वालों से ही,
इनके अति सुन्दर साँचे में, प्रतिदिन ढलने वालों से ही,
चाहे लड़के गिरते भी हों, उल्टे रस्तों में टकराकर,
ये मेहनत करते नहीं कभी, उनको सीधा पथ दिखलाकर,
इनकी आमदनी में थोड़ा, ट्यूशन का भी रुपया शामिल ।।

लड़के इनकी मारे खाकर, कैसे इन पर श्रद्धा वारें,
ये चाहें तो अपना तन मन, सच्ची सेवा पर न्यौछारें,
ये चाहें तो बन सकती हैं, भारत की पक्की दीवारें,
ये चाहें तो उठ सकती हैं, मानवता की कुछ मीनारें,
पर मतलब के कीड़े बनकर, हँसते रहते होकर गाफिल ।।

(८)

मैं अफसर से मिलकर आया ।

था नेता जी सा बना हुआ, जनता में भाषण देने को,
नौकर होकर वह मालिक सा, था खड़ा हुआ बक देने को,
उसकी खादी की टोपी से, सुरभित श्रृंगार टपकता था,
जिस पर मनचली युवतियों का, मन-मधुकर खूब भटकता था,
लोगों के दुःखों से उसकी, दरसल मे टीस निकलती थी,
हाथी के दाँतों सी सुन्दर, पबलिक स्पीच निकलती थी,
उसके विचार भी पंजाबी सलवारों से थे अति चौड़े,
ऊपर से विस्तृत होकर भी, नीचे से तंग बने थोड़े,
मैंने जब आटोग्राफ लिया, उस हाकिम मोटे ताजे का,
बोला हँस घर पर आओ, यह वक्त नहीं कुछ करने का,
मै घर पहुँचा दो दिनों बाद, अजमाने इस सज्जनता को,
मुझको तो पूरा करना था, इस सरस अधूरी कविता को,
मैं परम सभ्य कपड़े पहने, उस बनचर से मिलकर आया ।।

बोला, "बेकारी हरने का, साधन तो मेरे पास नहीं,
तुम माफ करो इस गवर्मेन्ट, से है क्या" तुमको आस कहीं,
तुम भड़काते फिरते सबको, क्या जेल न तुम्हें याद आया,
मैं बोला उससे—"धन्यवाद, मैं तुमसे यार बाज़ आया,"
बोला—"मतलब की दुनियाँ है यह तो कुछ तो समझो भाई,"
यह कहकर रिश्वत लेने की उस्तादी थोड़ी बतलाई,
मैं ताड़ गया वह करामात, बोला अच्छा तो जाता हूँ,
मै तो खुद ऐसे शासन के, आगे दिन भर थर्राता हूँ,
में कभी नही आगे बढ़ता, अपने उल्टे पग धरने को,
में हाथ जोड़ता हूँ तुससे, आइन्दा फिर खुश करने को,
सोचा मैंने बाहर आकर चाहे बरबादी लगाऊँगा,
पर नही कभो इन मनहूसों, के आगे शीश झुकाऊँगा,
रे मै अपना मधुपान छोड़, घनचक्कर से मिलकर आया ।

(९)

धोबी ? क्या उस्ताद बनोगे ?
धोना सिखलादो मुझको भी, अपने जीवन के पापों को,
मेरा मन मैला जो करते, उन यौवन के अभिशापों को,
मेरी इस बरबादी में भी, क्या मुझको आबाद करोगे ?
तुम सिखला देते लाखों को, अपना उल्लू सीधा करना,
चेला कर लो मुझको, मुझसे, कुछ भी मत पोशीदा रखना,
अपने उन बेतादादों में, क्या, मुझको भी तुम क्या याद करोगे?
बस गधे घेरना सिखला दो, हल्का सा ही डंडा देकर,
मुझको इस डेमोक्रेसी में, अपना प्रोप्रेगेण्डा देकर,
मै रोज खुशामद करता हूँ क्या मेरी भी फरियाद सुनोगे ?

(१०)

अब मैं भी डेमोक्रेट बना ।
मैंने भी ऊपर से नीचे, तक कैसा निज को पनपाया,
कुछ समझो तो मेरा विधान, जो तीन बरस में बन पाया,
मैं बात छिपाऊँगा न कभी, अब सोलह आने रेट बना ।।
जिसमें नाना अद्भुत विचार, जन-प्रतिनिधि बनकर बैठे है,
जिसमें नभचिन्तन और तर्क, नेहरू-पटेल से ऐंठे है,
मेरा मस्तक दिल्ली वाला, सेन्ट्रल सेक्रेट्रीएट बना ।।
मेरे सिर के कमजोर बाल, मिलकर इक प्रेजीडेन्ट बने,
ये पहले सूखे रहते थे, पर अब रहते है सेन्ट सने,
कैसा सुन्दर बालों वाला, मानो अंग्रेजी हैट बना ।।
मेरे हाथों में पुलिस फौज, आँधी से टक्कर लेती है,
चुपचाप चपाती खाने को, चोरी से शक्कर लेती है ।
क्यों कम्यूनिस्ट हैं छिपे हुए, रे मै थोड़े ही सेठ बना ।।
मेरी छाती के दाग दबे, अब उनको कौन बताता है,
दिल तो आजीवन राजप्रमुख, बनकर आनन्द उठाता है,
मेरा सब चारित्रिक विकास, सुन्दर रुपये की भेंट बना ।।

बस पन्त-मिनिस्ट्री पेट बना, जिसके बल पर इज्ज़त चलती,
पबलिक पैरों में सोई है, कब उसको यह लज्जत खलती,
मैं लेट हुआ कब जगने में, कब यौवन मटियामेट बना ॥

हँस रहा हमारा प्रजातंत्र, पाकिस्तानी धक्के खाता,
बढ़ रहा अशोकी शान्ति--चक्र, परदेशों में कब शरमाता,
मेरा घर तो आने जाने, वालों की ही आखेट बना ॥

ओ मित्रो, अब तो जाग पड़ो, अपने गौरव को पहचानो,
कुछ सीख सिखाने वालों की, हम जैसों की बाते मानो,
लाओ मुझको डिग्री देओ, मैं कैसा अपटूडेट बना ॥

(११)

क्यों अंधेरा हो रहा है ?

चाहता था मनुजता को, दासता से मुक्त कर दूँ,
स्वार्थ-शासन दूर कर, निस्वार्थता से युक्त कर दूँ,
रे अखिल जग डाकुओं का, क्रूर डेरा हो रहा है।

ध्वंस के विध्वंस युग में, गीत मधुमय क्यों बनाए,
रोकने मँझधार को, क्यों अश्रुमय शोले गिराए,
प्रलय नद की बाढ़ का, चहुँ ओर घेरा हो रहा है ॥

लक्ष्मियों ने खूब पंखों, पर सुकोमल हाथ फेरा,
रात भर स्वच्छन्द फिरने, वाहनों का माथ फेरा,
वाह क्या सुन्दर कुबरों, का बसेरा हो रहा है ।

सीख दी, क्यों हाय मैंने, प्रेम की उत्कृष्टता की,
क्यों निशा में ज्योति, बतलाकर भयंकर धृष्टता की,
विश्व के उल्लूजनों को, तो सवेरा हो रहा है ॥

(१२)

मैं खिड़की में बैठा रहता ।।

नित यौवन से जगमग करतीं, अति रग बिरंगी कारों का,
असहाय किसी को तड़पाने, उन रीती सी मनुहारों का,
रिक्शों, तांगों का अवलोकन, करने जम कर बैठा रहता ।।

जैसे कोई सूने घर मे, प्यासा दीवाना बसता हो,
आने वालों की आहट के, चिन्तन में डूबा हँसता हो,
मै कोने में लिखता रहता, मैं कुटिया में बैठा रहता ।।

अध्यापक जी धीरे धीरे, चलते चलते आ जाते हैं,
लड़के आते, घोड़े आते, टमटम, रिक्शे छा जाते हैं,
मै उर के कम्पन से झंकृत, होकर भी चुप बैठा रहता ।।

विद्यालय जाने को आतुर, कुछ हँसती बालाएँ आती,
कुछ सचित सुन्दर कलियों की, वे अद्भुत मालाएँ आती,
मै प्यासा, सुन्दरता के तट, पर मनमारे बैठा रहता ।।

इन हास-विलासों को लखकर, मुझको भी सुध आ जाती है,
लहरें आतीं, लहरें जातीं, रे क्यों ये खुद आ जाती है,
मै मान-सरोवर का पक्षी, भूला भटका बैठा रहता ।।

तुम तो लहरें गिनते रहते, मैं तो लहरों सँग लहराता,
तुम तो यों ही रोते फिरते, मै तो रो रो कर मुसकाता,
मेरे आँसू, मेरे मोती, गिरते रहते, चुगता रहता ।।

उनसे खिलनेवाली अपनी, कविताओं का अभिसारी सा,
चिन्तन विकसित करने वाली, ललनाओं का आभारी सा,
मैं खिन्न पुजारी सा रीते, लघु मन्दिर में बैठा रहता ।।

मै जलती ज्वाला पर जलने, वाले अवरुद्ध पतंगे सा,
चिर शून्य भवन के आगे हा ! अविरल निश्चल भिखमंगे सा,
उन्नत बनने का तत्पर द्रोही बन्दी सा बैठा रहता ।।

(१६)

अब हम भी बी० ए० पास हुए।

बस अलाबाद से डिग्री ले, हम आसमान में जा बैठे,
दुनियाँ के विस्तृत शास्त्र सभी, इन दो अक्षर मे आ बैठे,
अब बीस बरस के हो पाए, दिन दिन दूने उल्लास हुए ।।
पर रोजगार कब मिल सकता, है इस भुखमरे जमाने में,
क्यों दो रोटी मिल पाएगी, केवल कविराज कहाने में,
जितने ऊँचे हम समझे थे, उतने नीचे उच्छ्वास हुए ।।
साढ़े उन्नीस सदी बीती, हज़रत ईसा को प्राण दिये,
देखें हम क्या कर पाते हैं, मानवता का सम्मान लिये,
हम तो चलने से पहले ही, रो रोकर पूर्ण निराश हुए ।।

(१७)

मेरी किस्मत मुझ पर हँसती, मैं किस्मत पर हँसता रहता ।।

यदि मै पूरब में जाता हूँ, तो वह उलटी फिर जाती है,
यदि मै मुड़कर पीछे आता, तो वह आगे बढ़ आती है,
मेरी किस्मत मुझको कसती, मै किस्मत को कसता रहता ।।
मै तो सब की सुन्दरताओं, की गहराई में रहता हूँ,
मुझको किस्मत से क्या मतलब, इस लहराई में बहता हूँ,
वह क्यों फिर मेरे सँग बसती, मै क्यों उसमें बसता रहता ।।
जग लहरें गिनकर ही रहता, मैं तो गोते भी खाता हूँ,
जग के नीरस आँसू बहते, पर मैं रोते ही गाता हूँ,
किसकी धड़कन मुझको लसती, मै धड़कन को लसता रहता ।

(१८)

भुट्टे वाले, भुट्टे वाले ।

भुट्टे गरमाया करता है, जैसे मैं, उर के छालों को,
रे क्यों बेचा करता प्रतिदिन, इन जगमग करते लालों को,
मै भी गाने लिखता रहता, जिनको वक्षस्थल में पाले ।।

कोमल रसयुक्त फफोलों को, दुख की ज्वाला पर धरता हूँ,
दुनियाँ वालों को खुश करने, अधरों पर प्याला धरता हूँ,
बेफिक्री से जल उठते हैं, कुछ जलने भी दे मतवाले ॥
मैं भी तो मादक क्रन्दन में, हँसने का पुट भर देता हूँ,
मनहूस जनों को फुसलाने, नमकीन बना कर देता हूँ,
बुद्धू पैसे क्यों लेता है, मेरे सँग तू भी गम खाले ॥

(१९)

मेरी पनिहारी क्या गाती ?
मेरे घर मे आने जाने, वालों की आदत गाने की,
बैठे बैठे चलते चलते, मेरे सम ही चिल्लाने की,
मेरे अधरों की छाया क्यों, उनके अधरों पर पड़ जाती ॥
उसका प्रिय भी परदेसी है, मेरी प्रिय भी परदेसी है,
किस्मत के मारे दीवानों, की अद्भुत जोड़ी कैसी है,
उसको वह तड़पाता दिनभर, मुझको वह दिनभर तड़पाती ॥
रे गगरी भरते भरते उस, विरहिन की छाती भर आती,
मेरी पीड़ा बढ़ते लखकर, उसकी पीड़ा भी बढ़ जाती,
मेरे उर को प्यासा पाकर, आँखों मे पानी भर लाती ॥

(२०)

भारेवाली भारा लाई ।
कितनी जल्दी काटा उसने, रूखे सूखे मैदानों को,
मैंने भी घास कटाई की, है लिखकर गीले गानों को,
मेरी सब गायों भैंसों के, कितना सुन्दर चारा लाई ॥
वह अलबेली उस बोझे से, मुश्किल से चलने पाती थी,
उसकी अलसाई आँखों में, पीड़ा कब पलने पाती थी,
मैं कविता पाकर मुस्काया, पर वह जाने क्यों मुस्काई ॥
रे अपनी हल्की लेखनि का, ही मै तो भार उठा न सका,
सौन्दर्यमयी इस सृष्टी का, कुछ भी आभार चुका न सका,
मैं पैसे देकर शरमाया, वह पैसे पाकर शरमाई ।

(२१)

मैंने एक नर्तकी देखी ।

रहती थी पूर्ण गृहस्थिन बन, पर घर का करती थी न काम,
वह "एकट्रेस" कहलाती थी, रूपाजीवा का नया नाम,
थे पतीदेव भी तो उसके, सीधे साधे पर विगत रंग,
कुछ बेढंगे से बजते थे, मानों मुरली सँग हो मृदंग,
कहती थी रोब जमाने को, प्रिय से खुश होकर कभी-कभी,
"मै डाइवोर्स दे सकती हूँ, चाहूँ तो तुमको अभी अभी,
पर मुझको भी आवश्यकता, है चाय बनाने वाले की,
मेरे बच्चों को ले जाकर, नित सैर कराने वाले की,
मैंने भी अपने जीवन मे, कितने लोगों सँग पार्ट किया,
पर तुमने तो घोड़ागाड़ी, को बिल्कुल बंबूकार्ट किया,"
खुद फिरती थी बाजारों में, वह कोई इच्छा होने पर,
लाती भी थी सौदा करके, वह कोई अच्छा होने पर,
प्रियतम थे अकलमन्द वह भी, उनके समर्थ की देखी ।।

मै मूक हुआ था करुणा से, वह पथ-भ्रष्टा पथ में लखकर,
उसके चेहरे पर चढ़े हुए, बलवान पाउडर को तक कर,
कितनी बेशर्मी से हँसती, वह सड़कों के चौराहे पर,
थी नकली नर्मी से तकती, अपनी सब ओर निगाहें कर,
था वक्षस्थल भी ढका हुआ, भारत की ब्रीटिश-हिस्ट्री सा,
था अधोवस्त्र भी पूर्ण स्वच्छ, यू० पी० पन्त-मिनिस्ट्री सा,
थे चरण-कमल भी ढके हुए, चुम्बन के प्यासे से मौजे से,
वे चप्पल खूब चटकते थे, यौवन के सस्ते बोझे से

हा, कितनी गिरती जाती है, मानवता से ये ललनाएँ,
क्या यही करेंगी बल पाकर, भारत की शिक्षित अबलाएँ,

ये चाहें तो हर सकती हैं, सारे समाज की पीड़ा को,
ये चाहें तो कर सकती हैं, कम अपनी सुन्दर क्रीड़ा को,
मैंने तो लाखों कामनियाँ, ऐसी ही अनर्थ की देखी ॥

(२२)

एक रमणी जा रही थी, शीघ्र भागी साइकल पर !

वर्षा की श्यामल संध्या मे, मैं विद्यालय से आता था,
उन मीठी बूदों को सहकर, चुपचाप चला ही जाता था,
उर से कुछ पुस्तक चिपकाए, मुस्काता था जल्दी चलकर ॥

लम्बी पतली कुछ गोरी सी, वह कुछ तारुण्य विभोरी सी,
मारुत से कुछ झकझोरी सी, मानों रेशम की डोरी सी,
अति त्वरित किशोरी जाती थी, मानों उन जलकरण से जलकर ॥

संन्मुख से तब इक भैंसा भी, उन्मत्त नवोढ़ा आता था,
गायन करता वर्षागम से, विरही सा दौड़ा आता था,
मानो कोई आतुर मधुकर, मँडराता हो नलिनी दल पर ॥

उस चिकनी फिल्मी नेत्री सी, विच्छिन्न सड़क पर मोड़ पड़ा,
वे ब्रेक लगे, पर लग न सके भैंसा भी तो दम तोड़ पड़ा ,
मै छोड़ किताबे दौड़ पड़ा, स्तम्भित सा रहकर पल भर ॥

वह पड़ी हुई रज से लथपथ, पीड़ा से सी सी करती थी,
थे अस्त व्यस्त, बहुमूल्य वस्त्र, बेचारी आहें भरती थी,
वह म्लान और अति लज्जित थी, पछताती सी इस हलचल पर ॥

भैंसा रेंका शरमाता सा, अपनी करनी पर रोता सा,
वह खड़ी हुई, मैं चला गया, घटना पर विस्मित होता सा,
मुझको सूखा सा थैंक्स मिला, उस गीले चमकीले थल पर ॥

सोचा घर पर, कितने ही नर, भैसे से क्या कम होते हैं,
धक्के देने, धक्के खाने, में ही सब जीवन खोते हैं,
करते मुठभेड़ जबरदस्ती, इठलाते हैं अपने बल पर ॥

मै जीवन में बढ़ जाने पर, भैसों पर रोक लगा दूँगा,
अति क्षीण जनों की सेवा को, सारा बल झोंक लगा दूँगा,
यदि मुझे थैंक्यू मिल जाए, उपकार करूँ आगे चलकर ॥

(२३)

वे लघु सरिताएँ ही अच्छी ।

उन बड़े बड़े तालाबों से, जिनमे पानी ही नहि चढ़ता,
जिनका सपने में भी वन में, क्रीड़ा को पॉव नहीं बढ़ता,
उन से छोटी सरिताओं की, उन्मत्त कथाएँ ही अच्छीं ॥

ऋतु आने पर तो कम से कम, वे खेल कूद इठलाती हैं,
अपने तट के टूटे विटपों, को साथ बहाए लाती हैं,
उन मूक जलाशय से कलकल, करतीं धाराएँ ही अच्छी ॥

मेरे भी यौबन के आँसू, प्रतिदिन बहते ही रहते हैं,
अवसादों में भी उन्मादों, को नित कहते ही रहते है,
बुढ्ढे जग के सीमित सुख से, मेरी पीड़ाएँ ही अच्छीं ॥

मेरा भी प्रणय उबल पड़ता, तब ही मै गान किया करता,
दुनियॉ बदनाम किया करती, मै अमृतपान किया करता,
सूखे इतिहासों से मेरी, कल्पित गाथाएँ ही अच्छीं ॥

जिनको नित पढ़ते पड़ते ही, नस नस फटने लग जाती है,
बेचारी जिह्वा भी तोबा, तोबा रटने लग जाती है ।
उन बड़े बड़े ग्रन्थों से तो, मेरी कविताएँ ही अच्छी ॥

दुनियाँ जब शहरों मे सोती, तब मैं लहरों में रहता हूँ,
नित हिलमिल कर रजनीपति से, रजनी की बातें कहता हूँ,
होटल की टूटी खाटों से, फूटी नौकाएँ ही अच्छी ॥

(२४)

मैंने वातायन से झाँका ।
लगभग संध्या के चार बजे, मामूली ट्राफिक चलता था,
रिक्शा, ताँगा, टूटा इक्का, इस युग के माफिक चलता था,
कुछ शांत और कुछ विचलित था, सारा वातावरण वहाँ का ॥

तब दो नर नारी जाते थे, अंग्रेजी में कुछ फरमाते,
शहरों की फूटी सड़कों पर, थे शायद कुछ कुछ गरमाते,
साहब बीड़ी भी पीते थे, था थोड़ा जर्दा भी फाँका ॥

वे डोन्ट केर टाइप मूँछे, मर मिटने का दम भरती थी,
गेहूँ की बाली सी आतप, में चमचम चमचम करती थी,
मानो डिस्ट्रिक्ट कलेक्टर था, कोई यू. पी. की सीमा का ॥

वे चप्पल खूब चटखती थी, उस रमणी के स्पन्दन से,
मानों बुलबुल सी गाती थी, कुछ कह देने को गुलशन से,
रूमाल लगाती थीं मुँह पर, लखकर ताँगा सीनेमा का ॥

पीछे परिचित सा आता था, इक मोटा ताजा हव्वे सा,
वह गिरता पढ़ता चलता था, कर से छूटे कनकव्वे सा,
था ना जाने किस अब्बा का, सुन्दर एक लखनवी बाँका ॥

भर कर सब अपने अरमानों, को उसने पीछे से खाँसा,
जैसे पूरा पौ बारह था, बस उसकी चौसर का पाँसा,
वे पीछे फिर कर मुस्काईं, कुछ साड़ी से सिर को ढाँका ॥

ताँगे का घोड़ा विहँस पड़ा, रिक्शेवाला पिघला थोड़ा,
वे खूब अदा से शरमाईं, पर साहब ने कुछ मुँह मोड़ा,
इक बुढ़िया ने घूँघट खीचा, खीचा मानो भारत माँ का ॥

है कितनी रोमेन्टिक दुनियाँ, रस्ते में प्यार किया करती,
प्रतिदिन पथ में चलते फिरते, नूतन अभिसार किया करती,
सस्ता सा एक नमूना है, यह भी तो नाजुक दुनियाँ का ॥

जब प्यार बिचारा सड़कों की, खाँसी पर ही लुट जाता है,
शहरों की गलियों में बातों, बातों में ही बिक जाता है,
तब कवियों ने आँसू भर भर, क्यों उसकी कीमत को आँका ॥

(२५)

प्रियतम, पिक्चर में क्यों जाते ?

सारी मासिक आमदनी को, पिक्चर मे ही खो देते हो,
तुमसे कुछ कहने सुनने पर, हँसकर थोड़ा रो देते हो,
तुम खुद ही पिक्चर होकर भी, क्यों नित पिक्चर में घुस जाते ॥

जब से मेरिज कर लायें हो, तुम इधर उधर उड़ते रहते,
मैं झाड़ू ही देती रहती, चक्की चूल्हे चलते रहते,
जब मुझको फुर्सत मिलती है, तब तुम खा पीकर भग जाते ?

अपनी छोटी सी मूँछों पर, क्यों हाथ फेर बल देते हो,
मै जब थोड़ा सा हँस देती, तब पीठ फेर चल देते हो,
मैं रोज़ कहाँ तक शरमाऊँ, आखिर इतना क्यों शरमाते ?

क्या नहीं सुहाता तुमको कुछ, मेरे सँग भी बातें करना,
क्या नहीं जानते गपशप से, तुम दिन को भी रातें करना,
तुम ऐसी बरसातों में भी, क्यों मेरे आग लगा जाते ॥

छाया चित्रों से जीवित सुख, की श्वास कहाँ आ पाती है,
मृगतृष्णा से प्यासे मृग की, चिर प्यास कहाँ बुझ पाती है,
तब छाया की छाया बनकर, क्यों माया में फँसते जाते !

सारे जीवन के चित्रों को, मै जीवन में दिखलाऊँगी,
निर्जीव तुम्हारी पिक्चर मै, में हीरोइन बन जाऊँगी,
मै खुद भी तो अभिनेत्री हूँ, क्यों चित्रों से टक्कर खाते ?

(२६)

प्रेयसि, हँसना सीखा कब से ?
तुम कैसी हँसती हो जिसको, सुनकर दानव भी चौंक पड़े
यदि सड़कों पर सोए भी हों, तो जगकर, कुत्ते भौंक पड़ें,
ओहो मर्दाने अट्टहास, हम पर कसना सीखा कब से ?

तुम कल सुरपुर की रानी थीं, अब इस भू पर कब पैर रखा,
तुम को तो नित धनवानों ने, टुकड़े दे देकर घेर रखा,
अब डर कर कम्यूनिस्टों के, उर में बसना सीखा कब से ?

क्या प्रेम यही जो पिघल पड़े, दब कर या दो टुकड़े पाकर,
वह मानव क्या जो फिसल पड़े, धक्के खाकर या ललचाकर,
निर्जीव हथौड़ों के बन्धन, में नित फसना सीखा कब से ?

नारी की नस नस ज्ञात मुझे, मैं करुणा से भर आता हूँ,
रे तुम कवियों की देवी हो, इससे तुमको समझाता हूँ,
मदिरा तजकर अब शोणित से, बरबस लसना सीखा कब से ?

तुम तो पहले ही नारी हो, क्यों कम्यूनिस्ट कहाती हो,
तुम तीर चलाती रहती हो, अब क्यों तलवार चलाती हो,
तुम तो वैसे ही कसी हुई, फिर कटि कसना सीखा कबसे ?

तुम आगे चलकर देखोगी, सब तुम्हें सताते जाएँगे,
पर कवि तो तुमको मानवता, की राह बताते जाएँगे,
तुम तो पैदा करने वाली, तुमने ग्रसना सीखा कब से ?

(२७)

साथी ! तुम पूरे अजगर हो !
तुम सोया करते घर पर ही, कोई के दर पर काम नहीं,
रे प्राप्त किया कैसे तुमने, इस जीवन में आराम कहीं,
तुम मोटे होकर फूल गए, मानो सरकारी अफ़सर हो।

भीषण उच्छ्वासों से हल्का, क्या शस्त्र नहीं उपलब्ध अरे,
सब लोग बिचारे डरते हैं, लखकर होते करबद्ध अरे,
खाते रहते निर्दयता से, ऐसे भी क्या घनचक्कर हो ॥

सोचा करते पा जाने को, कोई अच्छा गहरा साधन,
इन छोटे छोटे जीवों पर, करते डेमोक्रेटिक शासन,
पहले कोने में बैठे थे, पर अब तो सुख से नभचर हो ॥

(२८)

तुम भी सोओ, हम भी सोएँ।
हम समझे थे जग जाने से, जग ने हम को आबाद किया,
सोने की सुन्दर दुनियाँ को, पर इसने ही बरबाद किया,
उच्छ्वासों से सारे दुख को, तुम भी ढोओ हम भी ढोएँ ॥

अब फिर उस सुख का ध्यान करो, इस युग पहले जो मिलता था,
सब सोना खोने से पहले, निशदिन जी भर जो मिलता था,
चुपचाप खाट पर खड़े हुए, तुम भी रोओ हम भी रोएँ ॥

धन से रूखे सूखे जग में, दो दिन भी प्यार नही मिलता,
हम जाग जाग कर क्षीण हुए, पर कुछ अभिसार नहीं मिलता,
अब नित मनमाने सपनों मे, तुम भी खोओ हम भी खोएँ,

हम अपने बीते सपनों पर, आँसू ढलका मुसका लेगे,
जग की ऊषा में तारों से, सारे अवसाद छिपा लेगे,
अपना मुँह डेमोक्रेसी मे, तुम भी धोओ, हम भी धोएँ ॥

(२९)

हमको भी तो बात सुनाओ ॥
क्या फुसफुस बातें करती हो, क्या इधर उधर तुम तकती हो,
क्या नीचे झुक झुक हँसती हो, हमको भी तो भेद बताओ ॥
तुम से कौन पिरोया करते, हम खड़े खड़े रोया करते,
नित बैठे मुँह धोया करते, कुछ तरस अरे हम पर खाओ ॥
आखिर इतनी नाराजी क्यों, हम पर ही गोलन्दाजी क्यों,
अजी देख तो लिया करो तुम, चाहे हमसे नित कतराओ ॥

(३०)

क्षितिज ! तुम क्यों दूर मुझसे ?
क्रूर जग मे हाय किसका, ध्यान तुम तक जा सका है,
दूर दुख से तड़पतों को, कौन, हा, अपना सका है,
किन्तु मै तुमसे प्रभावित, तुम्हीं रहते दूर मुझसे ॥
गगन-धरणी का तुम्हारे, ही करों से भेद मिटता,
तुम्हें पाने का तुम्हीं से, काश, मेरा खेद मिटता,
तुम अकेले, मैं अकेला, फिर अरे क्यों दूर मुझसे ?

मुझे तृषित चकोर को, शशि से बुलाते ही रहोगे,
विमुख प्रिय की भाँति पर क्या, नित भुलाते ही रहोगे,
काश बतलाते अरे क्यों, मिलन से मजबूर मुझसे ?

(३१)

अच्छा, कल मेरे घर आना ।
तुमको मैं खूब हँसाऊँगा, मीठी बातें बतलाऊँगा,
कुछ देर बैठ दो दीवाने, कह डालेंगे सब अफसाना ।।
ग़लती पर ध्यान दिया न करो, हम से कुछ मान किया न करो,
फिर याद दिलाता हूँ देखो, अब मत तुम कहीं अकड़ जाना ।
खाना तुमको खाना होगा, गाना तुमको गाना होगा,
कुछ देर बैठना ही होगा, अब्बा से और पूछ आना ।।
रुक जाओगे बिगड़ेगा क्या, आखिर ऐसी जल्दी है क्या,
अरे यार मेरे तुममें, घुस रहा अभी तक मर्ज पुराना ।।

(३२)

मैं एक मसहरी लाया हूँ ।।
कल दिन में इक चौराहे पर, लम्बा चौड़ा नीलाम हुआ,
मै तो इस दुखिया को लेकर, अच्छा खासा बदनाम हुआ,
यह कैसी हल्की बल खाई, अत्यन्त छरछरी लाया हूँ ।।
लखकर कुछ सिकुड़ी सी बैठी, शरमाई डाँवाडोल इसे,
झटपट ले ली तिगुने पैसे, देकर मैंने भी मोल इसे,
कैसा खुश था मानो कोई, मैं एक रसभरी लाया हूँ ।।

रस्ते मे इक परिचित फोटोग्राफर इस पर अनुरक्त हुआ,
फोटू खिचवाओ प्रेयसि सँग, कहकर पूरा कम्बख्त हुआ,
बस पिंड छुड़ाया यह कह कर, रे भरी दुपहरी आया हूँ ।।

पर खूब जानता हूँ इसमें, कैसा यौवन है छुपा हुआ,
इसके वक्षस्थल में कोई, पीड़ित प्यासा है लुका हुआ,
मेरे जीवन की धूप छाँह, बस एक सुनहरी लाया हूँ ।।

गाली देने सब दुनियाँ को, इसके अन्दर जा सोचूँगा,
मैं भीतर जाने पर बाहर, पैसे वालों को नोचूँगा,
मेरे यौवन की तपोभूमि, बस एक कचहरी लाया हूँ ।।

(३३)

मैं कैसा अजीब हठीला हूँ ।
जग ने तो मेरी कोमलता, की मादकता ही देखी है,
मेरे आँसू की लपटों में, प्रलयंकरता कब देखी है,
मै अड़ जाता तो हो जाता, युग युग तक काला पीला हूँ ।।

धरती के लोगों से मिलने, मैं नम्र बना, कुछ झुक आया,
मै भी जी भर कोशिश करके, अपने को समतल कर पाया,
पर परख सको तो पहचानो, मै कितना ऊँचा टीला हूँ ।।

इस बहकी दुनियाँ ने मेरी, कसकों का लोहा कब माना,
मेरी विभूति का ढेर हुआ, जग ने वो ही सब कुछ जाना,
मैं भी जी बहलाता रहता, इससे ही रोज रँगीला हूँ ।।

चाहे विश्वास करो न करो, मै विश्व हिलाकर रख देता,
रे कोई "हाँ" तो कर देता, मै आग लगाकर रख देता,
पर जीवन के सूनेपन से, यों ही थोड़ा सा ढीला हूँ ।।

(३४)

आज सब कुछ जान पाया ।
आज आविष्कार सारे, विश्व को खाने लगे है,
क्रुद्ध होकर शत्रु से मिल, बाण बरसाने लगे है,
मौन रहना ही पड़ेगा, बोलकर पहचान पाया ।।

आज तो पुरषार्थ करना, पाप समझा जा रहा है,
हार कर गाण्डीव भी, डरपोक बनता जा रहा है,
सारथी की मंत्रणा को, आज मै भी मान पाया ।।

आज गज की झूल जग ने, रे गधों पर डाल दी है,
भीष्म से लड़ने शिखण्डी, को सुभग करवाल दी है,
आज मैं भी क्षुब्ध अर्जुन, सा परिस्थिति जान पाया ।।

(३५)

आज दुविधा में पड़ा हूँ ।
एक पथ पर प्रिय खड़ी, सूखे हृदय को सींच जाती,
दूसरे तक तृषित जग की, आह बरबस खींच लाती,
मै कही भी जा न पाया, मार्ग में ही बस अड़ा हूँ ।

बीच में रे पथ कहीं है क्या, बतादो तो विचारूँ,
खिन्न भूखे विश्व को भी, प्रेयसी के सँग उबारूँ,
आज तक तो स्वयं की ही, उलझनों से नित लड़ा हूँ ।।

ये कुआँ-खाई बने, दोनों मुझे क्यों माँगते हैं,
आज कवि के मृदुल कन्धों, पर हृदय को टाँगते हैं,
हाथ रखकर हाथ पर मै, वज्र सा निश्चल खड़ा हूँ ।।

(३६)

कविते ! क्यों न हटी अन्तर से ।।

मेरी बाधाओं के रहते, भी तू क्यों खिलती कानन में,
क्यों बनदेवी सी बैठी है, काँटों से आच्छादित बन में,
क्या तू ऊब नहीं जाती है, मुझ सूखे से दूभर नर से ।।

तू वरदान बनी फिरती है, कितनी हँसती मन ही मन में,
पर मैं रोता भौतिक जग मे, रे अभिशाप बनी जीवन मे,
क्यों मेरी छाती पर चढ़कर, मूँग दल रही अपने कर से ।।

तुझ सँग ही रहने युग युग तक, या तो मैं ऊपर उठ जाऊँ,
या तुझसे पिंड छुटाकर, इस भू पर थोड़ा सुख पाऊँ,
रे तूने लटकाया मुझको, हा त्रिशंकु सा क्यों सुरपुर से ।।

(३७)

मैं कविता करना सिखलाऊँ ।

मैं कभी न धोखा दे सकता, सच्चा कविराज कहाता हूँ,
मैं थोड़े पैसे पाते ही, आँसू कितने भर लाता हूँ,
मैं धन में उलझे पीड़ित को, सुख कर दुक्खों से सुलझाऊँ ।।

मैं छाया, प्रगति, पलायन के, दुर्गम वादों का ज्ञाता हूँ,
जीवन के सुखद रहस्यों को, अवसादों मे दरसाता हूँ,
मै 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' तो, बातों बातों में बतलाऊँ ।।

मुझ को कोई आलोचक भी, दुर्मूल जमानत पर रखलो,
इतने पर भी विश्वास नहीं तो, प्रेम अमानत में रखलो,
मेरी ट्यूशन जारी रक्खो, बस तीन बरस में समझाऊँ ।।

ऐश्वर्यवान कंगालों में, चिर सुख के बीज जमा दूँगा,
मैं कान खींच कर नीचों के, मानवता सीच लगा दूँगा,
सब कीच-उलीच मिटाऊँगा, जग बीच विचरना जतलाऊँ ।।

मैं एक फूँक से बड़े बड़े, भीषण नगराज हिलाता हूँ,
देखो मैं कैसा कवि महान, जो सबको स्वर्ग बताता हूँ,
लाओ थोड़े से पैसे दो, तुमको भी सुरपुर पहुँचाऊँ ।।

(३८)

मै कवियों में भी जाता हूँ ।
अपनी श्रेणी की चिड़ियों मे, जाकर मैं भी चहचाता हूँ,
पर पीठ फेर लेते लखकर, मैं भी मन मे मुस्काता हूँ,
नित मन में लड्डू खा खाकर, जाने क्या बुनते रहते हैं,
कविता की धुन मे सिर धुन कर, किस्मत को धुनते रहते हैं,
सब धुनेधुनाए दुनियाँ के, इन धुनियों मे भी जाता हूँ ।।

ये कवी महोदय क्या जाने, भूखे सन्तप्त ज़माने को,
ये कूद अखाड़े में पड़ते, नित अपनी चोंच लड़ाने को,
ये टप्पे खाते है कन्दुक, से निज विचार प्रगटाने पर,
ये मरते है कोई लड़की, के रेकिट के दस्ताने पर,
रे बढ़े बढ़ाए बालों के, इन मुनियों में भी जाता हूँ ।।

ये बातों ही बातों में तो, सारे जग की बाधा हरते,
ये अपने ही उपकारों की, सब के ऊपर लादा करते,
ये चुपके से कवि-सम्मेलन, का न्यौता पाकिट में धरते,
अब तो भारत के कुछ कवि भी, कैपिटल के पीछे मरते,
रे बने बनाए बरसों के, इन बनियों में भी जाता हूँ ।।

(३९)

साथी ! आज और रुक जाओ ।।
क्यों साँस जोर से खीच खींच, मरने की कोशिश करते हो,
तुम को नित रोने की इल्लत, क्यों मेरे सिर पर धरते हो,
मैं गला घोट दूँगा देखो, दुनियाँ में तनिक ठहर जाओ ।।

प्रतिदिन सारे उपकारों का, देना हमको हरजाना है,
अपने साथी के बिना यहाँ, अब मेरा कहाँ ठिकाना है,
अरे यार मुझको भी तो, तुम अपने सँग लेते जाओ ॥

हम रोब जमाने आए थे, पर बेवकूफ खुद ही निकले,
हम रंग जमाने आए थे, बदरंग कहाने के बदले,
अब भी हो ऐंठ अगर बाकी, आलोचक से मिल कर आओ।

लोगों ने हा प्रत्येक बार, हर महफिल मे धक्के मारे,
हम कुछ भी तो फरमा न सके, पिट जाने के डर के मारे,
मरने से पहले अपने मुँह, की धूल उड़ाते तो जाओ ॥

मेरा पैग़ाम अधूरा है, मेरा अन्जाम अधूरा है,
मेरा बदनाम अधूरा है, मेरा सब काम अधूरा है,
बस दो घन्टे ही सुस्तालो, थोड़ा सा फिर हँस ले आओ ॥

(४०)

मानव को अब तक रहकर भी, करना सम्मान नहीं आया ॥
इस धरती पर कैसे कैसे, लोगों ने अपने प्राण दिये,
गाँधी, ईसा, सुकरातों ने, जन के हित जीवन दान दिये,
पर मानव को सत्पुरुषों का, करना गुणगान नहीं आया ॥

जग से लुटकर कितने प्रेमी, प्रतिदिन होकर बरबाद मिटे,
कितने लैला-मजनूँ खोए, कितने शीरीं-फरहाद मिटे,
पर नर को प्रणय वेदना का, कुछ भी तो ध्यान नहीं आया।

कवियों की तो गिनती ही क्या, कितनो ने सुख बलिदान किया,
मधु के संग आँसू भर भर कर, मुक्ताओं का विषपान किया,
पर जग को इन मुक्ताओं की, करना पहचान नहीं आया ॥

जग में मानवता लाने को, रे जिनने झोली फैलायी,
जग ने उन पर पत्थर फेंके, सीने पर गोली चलवाई,
सम्मानों का तो ज्ञान कहाँ, करना अपमान नहीं आया ।।

(४१)

मदिरा बरसाता आया हूँ, मैं आग लगाना क्या जानूँ ?
समझा लूँगा भौतिक जग को, कुछ बातों से कुछ घातों से,
इतने पर भी माना न कही, तो समझा दूँगा लातो से,
पर कविता के मधु प्रांगण मे, तलवार उठाना क्या जानूँ ?
कविता से आग लगाई तो, मेरी कविता उठ जाएगी,
इन शोलों के मुरझाने पर, लोहू रचना मिट जाएगी,
मैं कालीदासों संग रहता, इस युग मे गाना क्या जानूँ ?
मेरे भीतर जाने कितनी, ज्वाला धू धू धधका करती,
बिजली चमका करती पल पल, आहें उर मे भभका करतीं,
दिल को सहलाता आया हूँ, रे प्यास बुझाना क्या जानूँ ?

(४२)

मधुकर अपने मन को तोलो ।।

इतनी कलियाँ लखते ही तुम, चंचल बन उड़ने लगते हो,
निश्चय करने से पहले ही, पल पल में मुड़ने लगते हो,
सुन्दरता से मोहित होकर, डाली डाली पर मत डोलो ।।
ये तो नित्य झुलाएँगी ही, डाली पर बिठला बिठला कर,
तुमको नित ललचाएँगी ही, आगे आ इठला इठला कर,
पर अपनापन भूल सदा को, सब का मत अवगुण्ठन खोलो ।।
तुम भी रोते ही रहते हो, अब तक प्यार नहीं मिल पाया,
कोई मधुमय जीवन करने, का आधार नहीं मिल पाया,
बन्द करो अपना मँडराना, केवल एक कली से बोलो ।।

(४३)

रुपये से रुपया बढ़ता है।

पैसा पाकर ही जीवन में, बढ़ने की इच्छा होती है,
कपड़ा पाकर ही तो रमणी, कुछ धोती और निचोती है,
दीपक को ज्योती मिलने पर, उसका उन्माद उमड़ता है ॥

मेरे भी मोती बढ़ जाते, कोई के मोती को लखकर,
मेरा दिल भी रोने लगता, कोई भी रोती को लखकर,
युवती के नयनों के आगे, मुझ मे भी यौवन चढ़ता है ॥

मेरे तारों को छू देने, से गाकर ही दम लेता हूँ,
मुझको तड़पाने वाले को, तड़पाकर ही दम लेता हूँ ॥
कोई हमदम से दम पाकर, मेरा दम हर दम बढ़ता है ॥

(४४)

मै अपने को मजबूर करूँ !!

वैसे तो मुझको पिघलाने, में पत्थर भी रो पड़ते हैं,
अरमान धुरन्धर लोगों के, मुझसे मिलकर सो पड़ते हैं,
पर फूलों की कोमलता से, अपनी सब सख्ती दूर करूँ ॥

ऊँचे महलों में जाने में, मेरा माथा ठनका करता,
"छछिया भर छाछ" जहाँ मिलती, बस वही हृदय झनका करता,
सच्ची मादकता हो जिसमें, उसको आँखों का नूर करूँ ॥

नकलीपन लखकर चढ़ जाती, गर्मी अन्तर के पारे की,
पर मेरा मन बहलाने को, काफी है धूल किनारे की,
नक्कालों को तो बस चलने, पर सबको चकनाचूर करूँ ॥

बस निर्झरणी की धारा में, जब घुटने घुटने पानी हो,
दो चार पराठे कर में हों, औ सँग में नई जवानी हो,
तो सारी दुनियाँ का वैभव, मैं लात मारकर दूर करूँ ॥

(४५)

दुनियाँ मुझको पहचान गई ।
मैंने सोचा था पगली है, बहका दूँगा जब चाहूँगा,
कहका मारूँगा जी भरकर, चहका दूँगा जब गाऊँगा,
लेकिन मेरे कविता रस को, पीने से पहले छान गई ।।
मै रोज हँसाने को लिखता, था उर में पीड़ा पाले ही,
पर जगती ने हँस हँस कर भी, लो दो दो आँसू डाले ही,
मेरे अन्तर्हित रत्नों के, मादक विष को भी मान गई ।।
मैंने कोमल उर के ऊपर, लोहे का बाना पहना था,
वसुधा भो पहले तो भूली, मुझको दीवाना कहना था,
पर छाती से टकराते ही, जख्मी हूँ यह भी जान गई ।।

(४६)

रे मै इतना क्यों लिखता हूँ ।
रचनाएँ नूतन रच रचकर, जनता की छाती पर लिख दी,
फिर भी अच्छी दुकानो पर, मेरी कविताएँ कब बिकतीं,
मै तो विद्वानों के आगे, कूड़े करकट सा फिकता हूँ ।
मैंने अपनी लेखनि से ही, सृष्टी का बल क्यों अजमाया,
दो रोटी को, प्रिय को, प्रभु को, अमृत को सबको क्यों पाया,
इनसे सबकी आँखें सिकतीं, मै भी आँखों मे सिकता हूँ ।।
देखो मैं सब कुछ पाकर भी, कैसा राजा हरिचन्द हुआ,
कोशिश हर चन्द करी फिर भी, ऋषियों के आगे मन्द हुआ,
नगरों में सज्जन के हाथों, मानवता के हित बिकता हूँ ।

(४७)

प्रस्तर प्रतिमा मुझसे बोली ।
कहती थी अब तो कोई भी, मेरा सम्मान नही करता,
इस रूखे वैज्ञानिक युग में, कोई गुणगान नहीं करता,
वह भूखी प्यारी बेचारी, रोती रोती मुझसे बोली ।

मैंने भी उत्तर दिया वही, जो नित्य दिया ही जाता है,
मानव की धड़कन को जग में, कमजोर किया ही जाता है,
मै बोला—बस, तू चुप रह जा, क्यों फैलाती अपनी झोली ।।

तेरा जीवन अब बीत चला, वह मादकता अवशेष कहाँ,
तुझ मे आकर्षित करने की चतुराई अब लवलेश कहाँ,
मै तुझको पूज नही पाया, क्यों बनती है इतनी भोली ।।

पर मै उसकी पूजा करता, जिस कलाकार से बन पाई,
जिस विगत मनुज के हाथों ने, तुझ मे भी वीणा झन्काई,
इस नाते से, चाहे कुछ हो, पर चल, तू भी मेरी हो ली ।।

(४८)

सुन्दर पक्षी छत पर बैठे ।।

कुछ आ बैठे, कुछ उड़ते है, कुछ मद से गिरते पड़ते है,
इनका भी ससार निराला, अपना अपना मत ले बैठे ।।

कुछ दिखते भोलें भाले है, कुछ तो कोई ने पाले है,
क्या पथ में सन्देश पटक कर, प्रिय का, लज्जानत हो बैठे ।।

या कोई बढ़ने वाले है, जो मुझसे लड़ने वाले है,
चुपके से डिप्लोमेसी से, इनसे मेरा खत ले बैठे ।।

(४९)

पेपर वाला भी आता है ।।

निर्मोही नूतन प्रेमी सा, मै रोज बुलाता हूँ न उसे,
या धनियों के फरजन्दों सा, वैभव दिखलाता हूँ न उसे,
इससे वह बाते करने मे, शरमाता है, घबराता है ।।

उसके स्वर में अलिगुंजन है, भिखमंगे की निर्धनता भी,
कवियों की सी कोमलता भी, रमणी की सी चंचलता भी,
मुझको पाकर आँखे मलते, बाबू कहकर मुस्काता है ।।

घनश्यामों के नीचे जैसे, अति श्वेत कपोती उड़ती है,
मेरी तृष्णा पेपर लेने, गिरते गिरते कुछ मुड़ती है,
इस कच्ची इच्छा को लखकर, अपने स्वर को दुहराता है ॥

रे मेरे स्वर में इतना ही, आकर्षण होता पल भर तो,
समझा लेता जाने कितने, रूठे दिल को मैं पल भर तो,
वह यौवन सा चिल्लाता है, रस्ते चलते तड़पाता है ॥

(५०)

गंगे ! बनती क्यों निर्मल हो ?

सदियों का इतिहास लिये हो, दानवता का ह्रास लिये हो,
फिर भी किस बल पर इतराती, करती क्यों झलमल झलमल हो ?

आज तुम्हारी और हमारी, होड़ लगी है, बारी बारी,
अपना सच्चा, झूठा मन ले, देखें लड़ने का क्या फल हो ?

करती यदि सम्मान स्वयं का, तुमको यदि अभिमान स्वयं का,
तो मेरे सब पाप मिटाओ, या फिर तुम मुझसे दुर्बल हो ॥

(५१)

चुटकियाँ मैंने भरी है ।

विश्व ने कितना खदेड़ा, है मुझे अनजान कहकर,
मूर्ख ने मुझको समझने, मे सदा अज्ञान रहकर,
शूल मेरे क्यों चुभाकर, गलतियाँ इतनी करी हैं ॥

प्रेम छीना, ध्यान औ, अरमान सारे छीन डाले,
बद्ध हो मैंने असंख्यों, अश्रु नित नमकीन डाले,
क्या बिगाड़ा रे किसी का, सिसकियाँ मैंने भरी हैं ॥

क्यों न कोसूँ, लुट गया मैं, लोक की निर्दय हँसी से,
छिन गया हो नीर जैसे, तृषित का पागल किसी से,
मृत्यु शय्या के मनुज सी, हिचकियाँ मैंने भरी है ॥

(५२)

कलियो ! तुम मुरझाती क्यों हो ?

अलियों ने पूछा न तुम्हे क्या, सूनी रहकर क्यों रोती हो,
अपनी दूभर तरुणाई पर, कातर इतनी क्यों होती हो,
तुम तो औरों को तड़पाओ, अपने को तड़पाती क्यों हो ?
भृंग तुम्हारी सौरभ पाकर, धीरज रक्खो आएँगे ही,
माली तुमको ऊँचे-ऊँचे, भवनों तक ले जाएँगे ही,
राह पड़ी है चलने पहले, ही थक कर दुख पाती क्यों हो ?
मुझको देखो मैं युग युग से, आता हूँ अपनापन लेकर,
मैं हूँ, मेरा टूटा दिल है, गाता हूँ सूनापन लेकर,
आओ मेरे सँग ही गाओ, झुक झुककर शरमाती क्यों हो ?

(५३)

दाँत टूटे आज मेरे ।

जिन्दगी में आज पहली, बार सिर नीचे किया है,
दाँत किसके लग रहे थे, जो मुझे पीछे किया है,
दाँत तो साबत बचे हैं, भाग फूटे आज मेरे ।।
कौन मेरी पुस्तकों को, चोर मुझसे ले गया रे,
और जीवन भर विरह की, आग मुझको दे गया रे,
मुस्कराते हैं सभी पर, कौन रूठे आज मेरे ।।
आज तन कैसे पसीने, में बहा ही जा रहा है,
आत्म हत्यारे मनुज सा, थरथराता जा रहा है,
देह तो जीवित खड़ी है, प्राण छूटे आज मेरे ।।

(५४)

हम जीवन मे क्या कर पाते ।

अपने जीवन में खेल कूद, जी भर कर मस्ती करते हैं,
बुड्ढे हो, रोब जमाने को, बच्चों पर सख्ती करते है,
बस दिन निकला औ साँझ हुई, यों ही मिट्टी में मिल जाते ।

हल्की सी ही वर्षाओं से, हम रग बदलने लगते है,
थोड़ी सी मस्त हवाओं से, हम हिलने डुलने लगते है,
हम तो तरुवर के क्षीण पत्र, पतझड़ आते ही झर जाते ।।

हम जड़ से निकले है फिर भी हमको जड का है ज्ञान कहाँ,
कैसी जड़ता है हम सब मे, कुछ भी तो हमको ध्यान कहाँ,
रे जड़ तक कैसे जा पाएँ, केवल झुककर ही रह जाते ।।

यदि बीज हमें कुछ ज्ञात न हो, तो भी शाखाएँ बन सकते,
मानव तरु के सब संकट में, उसकी आशाएँ बन सकते,
बस तूफानों के आते ही, हम तो चिल्लाकर गिर जाते ।।

(५५)

छोड़ दो मुझको सताना ।

प्रणय पीड़ा नित्य भर भर, अब विकल हो रो उठा हूँ,
मै द्विचक्री चक्र सा, अब बर्स्ट सहसा हो उठा हूँ,
खूब सीखा दिल किसी का, तोड़ कर बातें बनाना ।।

रात भर नित दूर रहकर, देखना तुम भूल डालो,
इस जवानी की सफेदी, मे कही तुम धूल डालो ।
अब अनोखी ये अदाएँ, छोड़ दो अपनी बताना ।।

पेड़ सूखे जब सभी, तब क्यों अरे बरसात आई,
रात की अन्तिम घड़ी में, तुम हमारे पास आई !।
क्यों मुदित हो जीर्ण तन से, चाहती हो उर मिलाना ।।

(५६)

अब तुम ढूँढो, मैं छुप जाऊँ ।

मैने ढूँढा है खूब तुम्हें, जैसे तैसे जी बहलाकर,
कोशिश की तुम्हें हँसाने की, मीठी बातों से फुसलाकर,
मेरे आँसू भी बरस पड़े, अब तुम आओ, मै लुक जाऊँ ।।

पर उनका भी जी भर आता, उपवन की कलियों को लखकर,
उनका मन मँडराने लगता, इन गु जित अलियों को लखकर,
कुछ उनकी भी सुन लेने को, हर रोज मुलाकातें करता ।।

उनको न कभी पूरी रुचती, यह मस्ती मादक गुलशन की,
कहते अब फूल कहाँ वैसे, क्या बात कहे बीते दिन की,
मै हँसता, रुकता, पछताता, जाने कितनी घाते करता ।।

कहते अब प्रेम कहाँ वैसा, जैसा हमने कर छोड़ा है,
मै कहता—"जाने कितनों से, तुमने तो नाता तोड़ा है,"
ऐसी कितनी ही छेड़छाड़, मैं नित आते जाते करता ।।

(५९)

मैं कुसुम-कीट सा रहता हूँ ।।

केवल सुन्दरता ही लखकर, कोई कैसे जाने मुझको,
ऊपर के आकर्षण से ही, कोई क्यों पहचाने मुझको,
इन लाल गुलाबी भवनों मे, मै अति पुनीत सा रहता हूँ ।।

सब फूलों को चकमा देकर, हर रोज बनाता रहता हूँ,
भोली कलियों के आगे तो, नित ही मुस्काता रहता हूँ,
दुनियाँ की चोटी के लोगों, मै प्रथम चीट सा रहता हूँ ।।

बस मै ही कोमल कलियों की, खुशबू ले लेकर कम कर हूँ,
जो कोई सुमनों को तोड़े, उनकी नाकों में दम कर दूँ,
मेरा स्वारथ भी कैसा है, मैं वणिक-मीत सा रहता हूँ ।।

(६०)

मै सीमा के पार चला हूं ।

मै जाने किस धुन मे बैठा, अपना जी बहलाया करता,
कविता टहलाती मुझको मै, कविता को टहलाया करता,
यौवन के सुक्खों के आगे, अपना जीवन वार चला हूँ ।।

ज्ञात मुझे है थोड़े दिन मे, इस दुनियाँ से उठ जाऊँगा,
अपनी करतूतों के पीछे, मिट्टी बनकर मिट जाऊंगा,
फिर भी उस पथपर ही जाकर, करने नित अभिसार चला हू।।

मेरा जीवन भी क्या है बस, खाना, पीना, मर जाना है,
रो रो कर शरमाना कल्पित, कर्मो पर नित पछताना है,
निज को इतना ठुकरा कर भी, होकर फिर तैयार चला हू ।।

(६१)

मै रिश्वत देकर आया हूँ ।।

सीधी उँगली से दुनियाँ मे, कोई भी काम नहीं चलता,
जब हाथ न गरमाए जाते, तो कुछ आराम नही मिलता,
मैं भी अपने आरामों की, ही निस्बत देकर आया हूँ ।।

जग के मैंने भी लात कसी, चूल्हे में जाए मानवता,
मुझको भी फुसला लिया गया, बतला बतला कर दानवता,
मैं भी उनको कायल करने, कुछ शरबत देकर आया हूँ ।।

अब तो प्रेमी जन भी जग में, उपहार बिना कब सुनते है,
हाथों में रुपयों की प्रतिदिन, बौछार बिना कब सुनते है,
बदले मे तड़क भड़क वाली, कुछ उल्फत लेकर आया हूँ ।।

(६२)

आज मेरे गान आए ।।

मैं सुखी कितना सुबह से, कल्पना के नव नगर से,
जा रहा हूँ प्रेम पढ़ने, पुस्तकी नीरस मदरसे,
आज तो मेरे अधर भी, क्यों स्वतः मुस्कान लाए ।।

आ रही है कार में, बैठी हुई वीरांगनाएँ,
उत्तरीयों में प्रणय भर, नित नए जो रंग लाएँ,
लो मुझे सौदा सिखाने, को नए अरमान आए ।।

वेदना मेरी बढ़ी थी, वेदना उनकी परख कर,
प्रश्न करने पर उन्ही के, साथियों को चुप निरख कर,
तीन दिन तक दूर रहकर, आज मेरे प्राण आए ।।

(६३)

तू भी जवान, मैं भी जवान ।।

उन्मत्त जवानी क्या आई, हम खा पीकर मौज उड़ाते,
सेव कचौड़ी पकड़ खोमचे वाले को हर रोज उड़ाते,
कुछ देर सोच तो ले साथी, जीवन अपना कितना महान ।।

बुड्ढी दुनियाँ के ही आगे, हमने सारा सुख वारा है,
यौवन के झोकों में बहकर, जाने क्या क्या लिख मारा है,
हम किसको जाकर बतलाएँ, हम शक्तिमान, हम बुद्धिमान ।।

हम जगत-मदारी के आगे, कटि को लचका कर चलते हैं,
हम रंगमंच पर गणिका से, मुस्काकर कविता पढ़ते हैं,
हम सड़कों पर फिरते रहते, जैसे पंजाबी पहलवान ।।

हमने अपनी प्रतिभाओं का, कितना सुन्दर उपयोग किया,
दुकान तेल की एक खोल, मानों सौरभ उपभोग किया,
हम पेट हमारा भरने को, करते रहते है खीचतान ।।

हम चने बेचने वालों की, सी कविता करते ही रहते,
हम अपनें गन्दे नालों से, जग सरिता भरते ही रहते,
कवियों का पेशा भी क्या है, मानो गौरव की एक खान ।।

(६४)

लो मुझको भी मजबूर करो ।

शाबास तुम्हारी खूबी पर, तुम जीते हो ज़िन्दा रहकर,
कविता को तुमने समझ लिया, बेकारों का धन्धा कहकर,
हर रोज हथौड़े चलवा कर, लो शायर से मजदूर करो ।।

मै भी मादक मदिरा तजकर, सस्ती सी ताडी पी लूँगा,
रे आग लगा रचनाओ के, कर खेती बाड़ी जी लूँगा,
लो बैल चलाना सिखलाओ, मेरी अन्टी भरपूर करो ॥

मैं चला रहा लेखनि कब से, अपनी प्रिय का उद्बोधन कर,
मे हँसा रहा तुमको कब से, अपने जीवन पर रोदन कर,
नारी तज, गायो भैंसों में, ले जाकर ही दुख दूर करो ॥

(६५)

धरती मैंने कब खोदी है।

इतना अब मेरे हाथों में, पिल पड़ने का पुरुषार्थ कहाँ,
मेरे अन्तर में तो निशदिन, बसता है कायर स्वार्थ यहाँ,
दादों पर दादों से पाई, रे उसको भी तो खो दी है॥

होंगे वे और बिचारे ही, जो खाएँ नही खिलाएँगे,
हम जैसे रोने वाले तो, नित गाएँ और गवाएँगे,
सारी इच्छाएँ ही रोंदी, पृथ्वी मैंने कब रौंदी है।

जिन हाथों से तूली पकड़ी, पूली क्या हाय उठाऊँगा,
बेलाओं सॅग जिसने गाया, बैलों सॅग कैसे गाऊँगा,
स्याही आँसू से धोता हूँ, वसुधा जल से कब धो दी है।

(६६)

मैं ज्योतियुक्त निस्नेह दीप।

रे मेरे इस सीमित प्रकाश, को फैलाने का हो प्रयास,
मेरा उर सूना अम्बर है, मै भीतर ही भीतर प्रदीप ॥

कोई मेरा बन्धन खोले, कोई मेरी धड़कन होले,
मुझ पर रेणू है चढ़ी हुई, मैं मुक्तायुत निर्मुक्त सीप ॥

जनता मुझ पर विश्वास करे, कोई मुझमें उच्छ्वास भरे,
अज्ञात लुटा सा बैठा हूँ, मैं भूमिहीन सज्जन महीप ॥

(६७)

डाकिए ! सन्देश क्या है ?

देखना मुझ को किसी की मौत का तू पत्र देवे,
आज की सारी खुशी में, वेदना सर्वत्र देवे,
मौज मैं करता यहाँ पर, क्या पता परदेस क्या है ?
आज क्या कोई अभागा, कूच कर सुख पा गया क्या,
सृष्टि की सारी व्यथा को, पीठ कुछ दिखला गया क्या,
आखिरी उस वीर का, मेरे लिए आदेश क्या है ?
मैं पढूँगा अति सुखी हो, यदि किसी नर का लिखा हो,
पर न जग की मौन कोई, तरुण विधवा का लिखा हो,
रे बता कैसे शिथिल है, आज उर में ठेस क्या है ।।

(६८)

प्रेयसि, पत्र तुम्हारा आया ।।

मैं भी अच्छा हूँ कुछ दिन से, धड़कन भी बढ़ती जाती है,
तुमसे मिलने के चिन्तन से, तरुणाई चढ़ती जाती है,
नव जीवन सा देता तन में, यह सर्वत्र बिचारा आया ।।
तुम अब भी नभ मे हँसती हो, मुझ तक आने में लजती हो,
चन्द्रवदनि, तारागण-भृत्यों, मे पटरानी सी सजती हो,
मुझको भी ऊपर ले जाने, यह नक्षत्र तुम्हारा आया ।।
तुमको नीचे आना होगा, साधारण जन के स्तर तक,
ऊँचे मखमल के बिस्तर से, नीचे निर्धन के प्रस्तर तक,
डेमोक्रेसी मे कैसे यह, रायल छत्र तुम्हारा आया ।।

(६९)

मैं सपने को तो भूल गया, केवल मीठी सी याद रही ।।

मेरे उजड़े अन्तर में भी, कोई मुस्काने आया था,
तन को बेसुध पाकर मन को, कोई बहलाने आया था,
वह खुद भी आकर भूल गया, उसने जाने क्या बात कही ।।

वह कहते कहते ही जाने, क्यों सहसा चुप हो जाता था,
उस चुप रहने के जादू से, मै भी तो चुप हो जाता था,
वह जादूगर तो लौट गया, केवल जादू की याद रही ।।

मेरे मन के दर्पण मे तो, आकाश दिखाई पड़ता है,
ज्यों मानसरोवर के जल मे, कैलास दिखाई पड़ता है,
लेकिन वह कम्पन छोड़ गया, उसके जाने की याद रही ।।

(७०)

मै दानवीर को बतलाऊँ ।।

दादों परदादों की पूँजी, में से रत्ती भर दे देते,
बदले में चोर बज़ारी की, छुट्टी दुनियाँ से ले लेते,
दस लाख रुपे में प्रेम करें, उन कर्मवीर को बतलाऊँ ।।

कुछ दिन पहले अंग्रेजों से, उनकी उल्फत ले लेते थे,
रोटी कपड़े में से लेकर, उनको रिश्वत दे देते थे,
अब घर के घर में ही हँसते, उन परम धीर को बतलाऊँ ।।

सोचा उनके जाते ही अब, टूटेगा यह मीठा सपना,
कुछ दिन पहले ही शुरू किया, गाँधी टोपी सिर पर रखना,
गाँधी जी की सौगँध खाकर, मै देश पीर को बतलाऊँ ।।

(७१)

निराश क्यों न हो चलूँ, विहान हो गया अरे ।।

पुकारता रहा उसे, पुकार भी न जा सकी,
न आ सकी, न आ सकी, न गा सकी, न छा सकी,
खड़ा रहा निशीथ मे, जहान सो गया अरे ।।

थका नही न अश्रु ही, न ओस चाटता रहा,
विचार से जमीन को, मसोस पाटता रहा,
बना हुआ, तना हुआ, वितान खो गया अरे ।।

अरे मिलों के भोंपुओं, गरूर से बजो नहीं,
ग़रीब रो रहा जहाँ, अमीर हो सजो नही,
प्रधान हो गुमान से, सुजान सो गया अरे ।।

(७२)

लानत भेजूँ कविताओं को ।।

जनता की हल्की छाती पर, अंगारों सी ये पड़ती है,
बीमारों के तन पर चाकू , की मारों सी ये पड़ती है,
पकने दूँ भीतर ही भीतर, लानत भेजूँ इन घावों को ।।

थोड़े थोड़े से अनुभव के, हित चक्कर कितने खाता हूँ,
रे कविता लिखने से पहले, आँसू कितने टपकाता हूँ,
लोगों ने इनको ठुकरा दी, लानत भेजूँ चिन्ताओं को ।।

पानी में रह घड़ियालों से, टक्कर मैंने क्यों ठानी है,
महलों मे हँसने वालों की, बातें मैंने कब मानी है,
समझाने की क्यो कोशिश की, लानत भेजूँ ललनाओं को ।।

खाना पीना जी भर पाकर, तुम जैसा ही रह सकता हूँ.
कुत्ते बिल्ली सा टुक टुक कर, मै भी जीवित रह सकता हूँ,
यह मत समझो मै याचक हूँ, लानत भेजूँ पीड़ाओं को ।।

(७३)

माली ! मुझको पकने तो दे ।।

इतनी जल्दी अपनी आँखें, मुझ पर क्यो हाय जमाता है,
ये तितली भी सब तड़पेंगी, क्यों पास चला ही आता है,
मै टूट पड़ूँगा तेरे हित, मुझको कुछ कर सकने तो दे ।।

तेरे उर में क्या दया नही, मेरी कोमल पंखड़ियों पर,
कुछ ओस भरी, कुछ आस भरी, इन प्यासी मुक्तालड़ियों पर,
इन लतिकाओं के झोके में, मुझको थोड़ा थकने तो दे ।।

हँसती हँसती बालाएँ जब, कहती आँखों से कहने को,
मैं रोक न सकता अपने को, कुछ कहे बिना चुप रहने को,
मैं तो लड़का हूँ अभी अरे, मुझको जी भर बकने तो दे ॥

(७४)

मैंने अपने में सुख पाया ॥

मैं दीपावलि के दीपों का, अवलोकन करने निकला था,
दुनियाँ के इन उद्दीपों का, क्या पोषण करने निकला था,
इनका निर्मम वैभव लखकर, मैंने अपने को तड़पाया ॥

मित्रों मे इतनी हिम्मत क्या, जो मेरे सँग मे रह पाते,
जितना सा मैंने कह डाला, उतना सा वे भी कह पाते,
वे मुझको पाकर घबराए, मैं उनको पाकर शरमाया ॥

रे ऐसी दीपकमाला तो, आई थी जीवन मे न कभी,
रे ऐसी दुख की ज्वाला तो, छाई थी जीवन मे न कभी,
दो आने के जो पैसे थे, उनको भी ले घर पर आया ॥

औरों को अपनी दीवाली, बतलाने मे होता सुख है,
मुझको तो अपना दीवाला, दिखलाने मे कितना सुख है,
हँसते हँसते लो पेट भरा, रोते रोते गाना गाया ॥

(७५)

वह दुशाला * था पुराना ॥

जिस दुशाले मे हमारे, नित्य गीले गान सूखे,
ओढ़ लेने से जिसे, सब क्रूरतम अपमान सूखे,
रे कहो कितना उचित था, वह भला हम से चुराना ॥

---

* लखनऊ विश्वविद्यालय मे एक दुशाला खो जाने पर यह रचना लिखी गई थी ।

छिन गया क्यों शीत रितु मे, एक रोगी का सहारा,
मर रहा था विरह ज्वर से, एक कोने मे बिचारा,
रे कही वह शाल मेरी, प्रेयसी को तो बताना ।।

जब हमारा दिल पड़ा है, सामने सब को हँसाने,
तो उसी की क्या जरूरत, पड़ गई थी, रे चुराने ।।
कौन बेदिल चाहता, बाजार में उसको बिकाना ।।

देखकर जग की दशा को, आज अपने आप रोते,
जब चले आबाद करने, तब हमी बरबाद होते,
छोड़ दे क्या अब सदा को, यह वृथा सुनना सुनाना ।।

(७६)

आततायी ! क्या रुकेगा ?

आज तो जलती मशाले, देख कम्पन सा हुआ है,
राक्षसी उत्कर्ष लख कुछ, मौन क्रन्दन सा हुआ है,
पापियों का प्रज्वलित यह, पाप अब कैसे लुकेगा ?

विश्व के लेखक सभी, जितनी भलाई कर चुके है,
खून भर भर पुस्तकों मे, प्राण अपने धर चुके है,
क्या उन्हे बरबाद करने, को कही जी भर झुकेगा ।।

यदि जलेगी ये चिताएँ, मनुज के बहुमूल्य धन की,
जल उठेगी जीर्ण छाती, शोक से रोते गगन की,
सैकड़ों युग बाद भी, यह बोझ सिर का क्या चुकेगा ?

(७७)

वे खण्डहर खड़े थे ।।

अरे कायरों के निशानों से घायल,
वे मसजिद खड़ी थी, वे मन्दर खड़े थे ।।

तवारीख की मुस्कराहट से पूछो,
कभी ऐसे गीदड़ न अब तक लड़े थे ।।

क्यों आहें न लेऊँ, कराहों को सुनकर,
इन्हीं को गिराने बवण्डर चढ़े थे ॥
रँगे देखकर पत्थरों को लहू से,
इन्ही आँसुओं पर ये आँसू पडे थे ॥

(७८)

अरी बुलबुलो, शायरी क्या सुनाऊँ ?
कवी के हृदय से लहू चू रहा है,
कटी उँगलियाँ बीन कैसे बजाऊँ ?
गला घुट रहा है, पिपासा बढी है,
अरे भूख में क्या, भला मुस्कराऊँ ?
गिरे आशियाने, गए वो ज़माने,
हमी तुम बचे है, तुम्हे क्या सताऊँ ?
रँगे हैं लहू से चमन सब यहाँ के,
हमी रो रहे है तुम्हें क्या रुलाऊँ ?

(७९)

मैंने अपने बन्धन खोले ।
कोई तो सीख नहीं पाते, आजीवन भीख नहीं पाते,
मैंने अपने क्रन्दन खोले, मैंने अपने गुंजन खोले ॥
मैं क्या सीखूँ सब ज्ञात मुझे, सिखलाता है जलजात मुझे,
मैंने अपने अर्चन खोले, मैंने अपने चिन्तन खोले ॥
सुन्दरता को नित देखा है, तत्परता से अवरेखा है,
नारी की ऐंठन ऐंठन से, मैंने सारे कम्पन खोले ॥

(८०)

कौन भूखा गा रहा है ।
टूटता प्रत्येक स्वर है, साँझ का रोता प्रहर है,
मानसिक दुख से अलग ही, कंठ सूखा जा रहा है ॥

कौन सुनता है यहाँ पर, पंथ में मानव कहाँ पर,
इस अलंकृत विश्व से, वह दृश्य सूखा पा रहा है ।।

रात बढती जा रही है, लौट चिड़ियाँ आ रही हैं,
वह अकेला क्षीण पक्षी, नीड़ चूका जा रहा है ।।

(८१)

वह कौन खिलौने देता था ।।

जाने कैसे बन पाए थे, धीरे धीरे बिक पाए थे,
नन्हें नन्हें उन बच्चों को, कितना खुश होने देता था ।।

था कोई किस्मत का मारा, था कोई पंजाबी प्यारा,
आने वालों को सिखलाने, गुड़ियों को ढोने देता था ।।

अवसादों की इन घड़ियों में, मेरे आँसू की लड़ियों में,
दर्दीले स्वर-मुक्ताओं को, वह कौन पिरोने देता था ।।

(८२)

रिक्शेवाला भी गाता था ।।

सीनेमावालों को बिल्कुल, फॉलो करता था मिन्टों में,
ऊँचे से ऊँचे गायक भी, गा पाएँ जिन्हें न घंटों में,
वह कभी निरक्षर अर्थहीन, केवल कुछ ट्यून सुनाता था ।।

सुन पाती तो शादी करने, दौड़ी आती मधुबाला भी,
वह मर मिटने को उत्सुक था, चाहे पिट चुका दिवाला ही,
उसका मतवाला रिक्शा भी, टूटी सी बीन बजाता था ।।

मरने जीने की आस छोड़, उसने उद्वेग बढ़ाया था,
संध्या के स्वर्णिम बादल में, जैसे नभयान उड़ाया था,
रस्ते में सुन्दरता लख कर, वह भी मुझ सा मुस्काता था ।।

(८३)

हरिजन मुझसे अच्छा गाते ।

मै बैठा सुनता रहता हूँ, भावों को चुनता रहता हूँ,
ये कूड़ मग़ज भी चिल्लाकर, घंटों निशि में तड़पा जाते ॥

बेडोल तराने छिड़ते है, मानो कवि मूरख भिड़ते है,
ये मोटी धूल गिराने में, थोड़ी केसर भी बरसाते ॥

कुछ साज़ नही, कुछ नाज़ नही, कुछ लाज नही, आवाज़ नही,
फिर भी सच्ची तन्मयता से, ये मेरे उर में छा जाते ॥

(८४)

जब मैं कमरे में बैठा था ॥

बरबस ही पुस्तक खोले था, कुछ पढ़ता था कुछ सोता था,
भावी जीवन के चिन्तन से, कुछ हँसता था कुछ रोता था,
बुड्ढों सा टाँगें फैलाए, कुछ बैठा था, कुछ लेटा था ॥

जुगनू इक आ चमका भीतर, सहसा जलती बिजली में भी,
मै कूद पड़ा कुर्सी पर से, जैसे कोई खुजली में भी,
बिजली झट बन्द करी मैने, खिड़की का भय भी मेटा था ॥

घंटे भर तक कितना दौड़ा, उसको छूने, उसको पाने,
रे एक उजाला भी जग में, मैं रोक न पाया मुस्काने,
बुझ कर कम्बख्त विलीन हुआ, निज पर कितना मै ऐठा था ॥

(८५)

हम बैठे थे स्टेशन पर ॥

दो दिन से गाड़ी को लखते, शासन की नाड़ी को लखते,
वह आती थी और जाती थी, हमको दिन भर तड़पाती थी,

ऐसा रश रहता था उसमे, लड़ना भी था निष्फल जिसमें,
लथपथ मुँह तक भर जाती थी, जिससे नानी मर जाती थी,
कुछ लटके रहते थे बाहर, हम लटके थे स्टेशन पर ॥

मै बैठा कविता करता था, खुल खुलकर आहे भरता था,
सन्मुख भिखमंगी बैठी थी, आधी सी नंगी बैठी थी,
महिलाएँ आती जाती थीं, हम दोनों पर मुस्काती थी,
हम दोनों ही बल खाते थे, इस कांग्रेसी अधिवेशन पर ॥

(८६)

वह बैठी बैठी हँसती थी, मैं बैठा बैठा रोता था ॥
जनता के लम्बे दर्जे में, ऊपर बेडिग पर ऐंठा था,
वह नीचे मित्रों के सँग थी, मैं बेडिग सा ही बैठा था,
कुछ बेढंगी सी मस्ती थी, कुछ जगता था, कुछ सोता था ॥

गाड़ी की घड़घड़ के आगे, मै सुनने भी न पाया उन्हें,
प्रत्युत्तर देने अवसर पर, मै चुनने भी पाया न उन्हें,
वह कैसी खुलखुल हँसती थी, मैं आकुल कितना होता था ॥
मुझसे भी ज्यादा सोशल थी, वह रूपवती कोमल नारी,
उस ने उपहासों के भीतर, दिखला दी विद्याएँ सारी,
वह ऐसा मुँह बिचकाती थी, जैसे मै उसका तोला था ॥

(८७)

बी० बी० सी० आई० चली गई ।

कोटा जंक्शन पर मेल मिला, छोड़ा हमने मिल कर उनसे,
नव साथी के आकर्षण से, जोड़ा नाता खिल कर उनसे,
सोचा गाड़ी से चल देंगे, लेकिन वह भी तो चली गई ॥

जल्दी मिलता है टिकिट उन्हें, पर ज्ञात नही वे कहाँ गईं,
मैं तो बैठा था मुँह बाए, वे पैसे लेकर हवा हुईं,
हम सफर नही कर पाए हा, इच्छाएँ सारी दली गईं ॥

उम्मीद नही थी यह उन से, इतनी जल्दी तड़पाएँगी,
बातों ही बातों में मुझ को, उलझा कर वे भग जाएँगी,
मै पड़ा रहा साँसें लेता, गाडी सुसरी वह भली गई ॥

(८८)

प्यार का उपहार देऊँ ॥

प्रेम कितने कर चुके हैं, विश्व, के प्राणी अभी तक,
क्लेश कितने हर चुके हैं, प्रेम के ज्ञानी अभी तक,
क्यों उन्हें फिर से सजाने, मै नया शृंगार देऊँ ॥

किन्तु ऐसी थी करोड़ों, स्त्रियाँ जग मे बिचारी,
बैठ कर घर में अकेली, नित्य रो रोकर सिधारीं,
आज सब की आतमा को, प्यार का अधिकार देऊँ ॥

हाय जग में सैकड़ों ही, डूबते रवि थे अरे जो,
गीत भी लिखने न पाए, पर महाकवि थे अरे जो,
उन तड़पते प्रेमियों को, आँसुओं का हार देऊँ ॥

(८९)

आज तो कुछ और हूँ मैं ॥

रात दिन इस प्रेम-चिन्तन, से जवानी खो चला हूँ,
देखते ही देखते मैं, वृद्ध सा कुछ हो चला हूँ,
आज इतनी कालिमा में, साधना से गौर हूँ मै ॥

कुछ नहीं चिन्ता मुझे, चाहे तड़प कर राख होऊँ,
करुण यह कचन-हृदय, पाकर पिघल कर पाक होऊँ,
जा रहा जलता युगो से, वेदना का कौर हूँ मै ।।

भर चुका हो वारुणी, फिर भी न पी पाता अरे जो,
अधर-अमृत के बरसने, पर न जी पाता अरे जो,
क्लास मे बैठा हुआ, कब से पुराना बोर हूँ मै ।।

(९०)

महमान हमारे आए है ।।

इनके आने से रस्ते की, कलियाँ तक भी मुरझाई है,
इन जैसों को पा कुंजों की, गलियाँ तक भी शरमाई हैं,
आकस्मिक जन्तू ज्यों आए, त्यों प्राण ! हमारे आए है ।।

इनके आगे मै गा गाकर, मर जाऊँ तो भी कम होगा,
ऊँचे सुनने की आदत से, इनको कितना सा ग़म होगा,
जाने कब से हँसते हँसते, भगवान् हमारे आए है ।।

पीएँगे काफी गम खाकर, ऊपर से हमको खाएँगे,
मिन्टों मे ही ये चल देगे, रे जीवन भर तडपाएँगे,
हमसे भी अच्छी सूरत ले, इन्सान हमारे आए है ।।

(९१)

साथी ! तुम प्यार नही समझे ।।

रे प्यार कही रेस्टोराँ के, प्यालों से कभी पनपता है,
श्रृंगार कहीं अफगान स्नो, से मिलकर कभी चमकता है,
तुम इस दुनियाँ में रहते हो, मेरा संसार नही समझे ।।

है ज्ञात, तुम्हारी खादी की, टोपी दिन रात महकती है,
पर मौन तुम्हारे उर में क्या, सुन्दरता कभी चहकती है,
तुम इन फूलों के हारों में, मेरा उपहार नही समझे ॥

तुम ने भी साँसे भर भर कर, सब बर्तावों को नरम किया,
सौ सौ सिगरेटे जला जला, प्रतिदिन अपने को गरम किया,
पर मेरी मादक आहों का, निर्मल व्यवहार नही समझे ॥

कितने अरपानों को भर भर, तुम मिलने तारों में आये,
माना सारे अपमानों की, अगणित बौछारों मे आये,
निर्जीव तुम्हारी धड़कन से, पर मेरा वार नही समझे ॥

मैं नहीं चाहती क्रीम तेल, से सजधज कर तुम नित आओ,
मत इन कृत्रिम शृंगारों से, चिर अमर प्रेम को तड़पाओ,
रे अब तक के अभिसारों का, तुम कुछ भी सार समझे ॥

(९२)

आज का सन्धान कह दूँ ॥
नित्य शयनागार में ही, सूझती कविता मुझे है,
आज स्नानागार पर भी, हो चला गौरव मुझे है,
स्नान के उपरान्त मेरा, परम पावन ध्यान कह दूँ ॥

विश्व सारा ही हमारा, मैल धोने को बना है,
स्नान कर सकता कही भी, कौन कवि से अनमना है,
शुद्ध हिन्दी बोलता मैं, आज का अनुमान कह दूँ ॥

प्रेमियों को प्रेम जग में, प्राप्य है सारे चमन में,
रमणियों क्या, सृष्टि के, शोभित सभी विस्तृत बदन में,
'प्रेम' कह कर आज सारी, नज्म का उन्मान कह दूँ ॥

(९३)

जो सोच लिया, वह सोच लिया ।।

घुटने मैने नित रगड़े है, शरमा शरमा कर कहने से,
आॅसू से सूखा जाता था, दिल की दिल मे ही रहने से,
सीधे सीधे कहना होगा, अब तक कितना संकोच किया ।।

बस बोल पड़ूँगा मै सहसा, पार्ल्यामिन्ट्री वक्ताओं सा,
सुनना अच्छा लगता न कभी, सब इन ऊँचे श्रोताओं सा,
मै चाट रहा था तलवों को, लेकिन अब तो मुँह पोंछ लिया ।।

सजनी की बातें के आगे, मेरी कब गलने पाती है,
भुजदण्डों के बल पर ही तो, दीवानी चलने पाती है,
अब छोड़ नही सकता जल्दी, बस नोच लिया तो नोच लिया ।।

(९४)

प्रिय ! तुम्हारी याद में, कोई नही सगीत गाए ।।

गीत गाए है जिन्होने, गीत गाते ही रहे वो,
कल्पना ही कल्पना से, कलमलाते ही रहे वो,
तुम जलाती ही रही, कोई न तुमसे जीत पाए ।।

मर गईं तुम सी करोड़ों, नाम भी जिनका नही है,
नाज करती थी जिसी पर, चाम भी उनका नही है,
फिर तुम्हें सिर कर चढ़ाकर, दूसरो को क्यो लजाए ?

प्रेम कर लूँ विश्व का सा, आज मैं भी तो ज़रा सा,
दूसरों को क्यों रुलाऊँ, क्यों जलाऊँ मैं जला सा,
तुम रहो औ मै रहूँ, कोई नही यह प्रीत पाए ।।

(६५)

साजन ! गीत सदा क्यों गाते ?

गीतों पर गीत बनाते हो, मुझको ही रोज़ सुनाते हो,
तुम तो रद्दी कविता से भी, मन को जीत सदा क्यों जाते ।।

तुमको कैसे कुछ और नही, अच्छा लगता है क्यों न कही,
बाहर वालों के सन्मुख तो, होकर भीत सदा शरमाते ।।

वे ही बातें दुहराते हो, वे ही घातें दुहराते हो,
बीते कवियों जैसे तुम भी, बुड्ढी रीत सदा फैलाते ।।

(६६)

शादी की बाते चलती है । ❀

मैंने तो अपने कर जोड़े, उसके कोमल श्रृंगारों से,
मेरा कोई सम्बन्ध नही, उन दोनों की तकरारों से,
परिचित होने के नाते भी, गहरी सी आफत टलती है ।।

इन लोभी दुनियाँ वालों को, धन की आवश्यकता पहले,
पति पत्नी चाहे लड़ते हों, पित्रों मित्रों का जी बहले,
रे उनको ही सुख पहुँचाने, लड़की, लकड़ी बन जलती है ।।

अम्बर में उड़ती चिड़िया को, पिजड़े में लाने वाले है,
लड़कों में हँसती दुखिया को, घर मे बैठाने वाले है,
कोने मे बैठा हूँ फिर भी, ये बातें कैसी खलती है ।।

❀ एक परिचित युवती के विवाह की चर्चा उस के एक अप्रिय युवक के साथ चलने पर यह गीत बना था ।

(९७)

मै जीवन भर समझाऊँगा ।

गाँधी, ईसा, सुकरातों ने, मानवता के हित प्राण दिए,
तज कर यौवन बरसातों को, जनता को जीवन दान दिए,
इन दादों परदादों जैसा, मै भी कुछ तो कर पाऊँगा ।।

सारे जग की घुड़सालों मे, चाहे मुँहजोरे घोड़े हों,
ज्यों विद्यालयों के लड़कों मे, कुछ बनने वाले थोड़े हों,
चाहे सब कंडम ही निकले, चलना सब को सिखलाऊँगा ।।

तुम सब को रस्ते पर लाने, मै ताँगेवाला बनता हूँ,
घोड़ों के घुघरू लटका कर, मै ऊपर बैठा हँसता हूँ,
झनझन झनझन झनकारों मे, भी 'टिकटिक' कर गाऊँगा ।।

(९८)

रे हँसने का अधिकार कहाँ ?

कितने मिलने जुलने वाले, आते जाते मुस्काते है,
कवियों के सूने जीवन पर, कुछ रोते है, कुछ गाते है,
पर मुझ मे हँसने रोने का, कोई असली आधार कहाँ ?

जैसे गणिका बैठी रहती, ऊँचे से निर्मम कोठों पर,
मादकता टिक पाए कैसे, रे उसके सूखे होठों पर,
मै तुम्हें हँसाने बैठा हूँ, मेरे जीवन मे प्यार कहाँ ?

मै हँसता भी हूँ रोता भी, पर प्राण कहाँ ला पाता हूँ,
कोई की प्यार भरी मीठी, मुस्कान कहाँ ला पाता हूँ,
रे मुझे हँसाने को जग मे, कोई कोमल संसार कहाँ ?

(९९)

मै प्यार बना पाया उसको, ससार बना पाया न कभी ।।
मेरे जीवन में आई थी, केवल कुछ दिन मुस्काई थी,
शृंगार किया जी भर उसका, आकार बना पाया न कभी ।।

पतवार हुई बस तरने को, तय्यार हुई कब मरने को,
इन्कार किया खुद ही उसने, इकरार करा पाया न कभी ।।

मै डूब गया, वह तैर गई, मै ऊब गया, वह गैर हुई,
आभार नहीं माना उसने, अधिकार बना पाया न कभी ।।

उस धरती पर कचनार खिले, दो चार कही गुलनार खिले,
पर मेरा गुल तो खिल न सका, गुलज़ार बना पाया न कभी ।।

(१००)

रे मैंने कौन जगाया ?
मै तो सीधा सीधा हूँ, मै किसकी भव बाधा हूँ,
कोई नर ऐसा है क्या, जो मुझसे गया ठगाया ।।

इस यौवन की हलचल से, अपनी प्रतिभा के बल से,
मैं हो सकता था बेसुध, पर मैंने कौन भगाया ?

मानों मत मानो साथी, मनसा हर कुछ लिखवाती,
मेरी कविता कल्पित है, निज को मधु नही पिलाया ।।

कवि हूँ, कविता करता हूँ, केवल मन में गाता हूँ.
अब तक मैंने अधरों से, अधरो को कहाँ लगाया ?

— —

पंचम खण्ड

प्रेयसी की याद में

आमुख

"प्रेयसी की याद मे" एक नवयुवक की कल्पना है। नये नये प्रेम चिन्तन से कवि को अद्भुत आनन्द की प्राप्ति होती है और वह प्रेरणा का कोई आधार ढूँढने लगता है। यह स्वभाविक है कि यौवन की उमग में कवि अपने सारे गीत किसी अभूतभूर्व सुन्दरी को सुनाना चाहता है। अपनी कल्पना के बल पर वह एक आदर्श अपने लिये बनाता हैं जिसे 'प्रेयसी' कह कर पुकारने मे उसे विशेष सुख होता है क्योंकि वह अकेला है। अपनी प्रेयसी के दिव्य स्वरूप से मुग्ध होकर वह जीवन-पथ पर बढता है।

पुस्तक में अधिकतर विरह गीत हैं। प्रारम्भ से ही मानों कवि अपनी प्रेयसी से विदा ले रहा है और अन्त तक उसे उसकी सुध आ रही है। 'प्रेयसी की याद में' वह गीत लिखता जा रहा है। चलते-चलते उसका प्रेम पार्थिव न रह कर वाह्य जगत से ऊपर उठ जाता है और उसे सर्वत्र अपनी प्रेयसी की ही छवि दिखाई पड़ने लगतो है। यही उसकी मुग्धावस्था है और उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों उसकी आत्मा अपनी प्रेयसी से कभी अलग नही हो सकती। वे दोनों एक दूसरे के समीप ही रहेगे और यहीं वह समझ लेता है कि उसकी दिव्य प्रेयसी से उमका नाता सदा के लिए जुड़ गया है यथा—

"मै दुखी था नित्य पतझड के तमालो सा बिलख कर,
प्रेयसी अब मिल चुकी है, यह युगो की जलन लख कर,"

और अन्त मे—

"वारुणी जो थी हृदय मे, अब सुधा रस बन चुकी है,
सैकडों युग के लिये अब तो इकट्ठी छन चुकी है,
तोड़ दो मधु के घटों को, आज सब मधुपान पूरे ॥
आज मेरे गान पूरे ॥

किन्तु, प्रस्तुत रचना केवल कल्पना की उडान ही नही है। उस मे वास्तविकताओ की भी गहरी छाप है। वास्तव मे, मेरे काव्य मे 'प्रेयसी' एक समस्या है, मेरे लिये भी और दूसरो के लिए भी। कहीं कही तो मै सारे विश्व मे उसी का रूप देखता हूँ जैसेः—

"एक तेरे हास मे ही, काव्य सब निखरा पडा है,
एक तेरे रूप मे ही, रूप सब बिखरा पड़ा है"

और कही प्रेयसी से मेरा अभिप्राय केवल एक साँसारिक रमणी से होता है जो खाती है, पीती है और एक साधारण जीव की भाँति रहती है।

कुछ भी हो, अनेक मनोवैज्ञानिक और वास्तविक स्थितियो ने मुझे इस प्रकार प्रभावित किया है कि प्रेयसी का ध्यान अपने काव्य मे मुझे आदि से अन्त तक रहा है। 'प्रेयसी की याद मे' शब्द 'ज्योति, के ६६ वें गीत मे पहली बार व्यक्त हुए हैं, किन्तु मैने जब कभी कोई कविता लिखी, मुझे यह विचार अवश्य ही आया कि इसे किसी कामिनी के आगे सुनाऊँगा, चाहे वह कविता सुनाई हो या न सुनाई हो। इसी से मै इस निष्कर्ष तक जाने को तैयार हूँ कि कवि का कामिनी से उतना ही सम्बन्ध होता है जितना कि देह का आत्मा से।

यह सब कुछ होते हुए भी मै अपनी 'प्रेयसी' की कोई परिभाषा नहीं दे सका। मेरी प्रेयसी कोई नारी विशेष नहीं—और न मै उसके रूप—गुण का बखान ही कर सकता हूँ। कबीर के 'साहब' और मीराँ के 'गिरधर गोपाल' की भाँति अनेक स्थानों पर वह एक आराध्य के रूप मे मेरे सामने आई और कही कही वह केवल प्रेयसी है। इतना मै अवश्य कहूँगा कि जीवन मे अनेक सुन्दरियो के दर्शन और उन के अध्ययन ने ही मुझ मे एक अलौकिक प्रेयसी के प्रति अनुराग उत्पन्न किया है जिन का आभार मानना कवि का कर्त्तव्य हो जाता है।

'दीपक'

प्रेयसी की याद में

(१)

प्रेयसी ! वह गीत गादे !

याद है वह गीत जिससे, हृदय तेरा हो चुका था,
प्रेम-वेदी पर तभी, बलिदान मेरा हो चुका था,
आज मेरी लाश को बस, एक क्षण केवल जिलादे ॥

आज दुनियाँ ने हमें, क्यों विवश कर सहसा हटाया,
रे तड़पते घायलों पर, वार कर क्या हाय, पाया,
विरह से आकुल हृदय से, मिलन का संगीत गादे ॥

ले समय प्रस्थान का अब, पवन-गति से पास आया,
वह निरख पश्चिम दिशा में, सूर्य ने भी मुँह छिपाया,
विकल मेरी भग्न वीणा, आज पल भर तो बजा दे ॥

साँझ की इस रम्य वेला, में तुझे मैं छोड़ता हूँ,
आज अपने हाथ से, आवास अपना तोड़ता हूँ,
इस उजड़ते शून्य घर को, एक क्षण बस फिर बसादे ॥

अरुण अम्बर में विचरते, विहँग घर को आ रहे है,
चक्रवाकी ! हम अभागे, ही पृथक् हो जा रहे हैं,
व्यथित जीवन की निशा के, पूर्व ही लघु प्रात लादे ॥

मैं हृदय की स्निग्धता से, फिर नही आग्रह करूँगा,
दूर रह अन्तिम घड़ी तक, आह भरता ही मरूँगा,
आज बस पहले मिलन की, याद से बेसुध बनादे ॥

(२)

क्यों बनी तुम आज मेरी ?

थी कभी चिर सगनी, मेरे हृदय की चाँदनी सी,
पर चला हूँ दूर तुम को, छोड़कर बैरागिनी सी,
इस बिदाई के समय, कैसे बनी सिरताज मेरी ?

क्यों तुम्हारे आँसुओं की, हाय जमना बह रही है,
प्रेम की बीती कहानी, श्वास ले ले कह रही है,
राज बन कैसे रहोगी, ओ विकल आवाज मेरी ॥

तुम न अब फिर मिल सकोगी, नित्य जीती जागती भी,
पर तुम्हे चित्रित करूँगा, मैं सदा अनुरागती ही,
तुम अमर होकर रहो, लो आज की मुमताज़ मेरी ॥

(३)

प्रेयसि ! मुझको जाने भी दे ।

कोई पूछे तो कह देना, वह एक बिचारा आया था,
लोहू झरते पैरों वाला, मंजिल का मारा आया था,
तू मुझको विरही रखकर ही, अन्तिम क्षण तक गाने भी दे ॥

मैंने आकर बस देख लिया, तुझको इतना ही काफी है,
मैं पा सकता हूँ प्रेम कहाँ, मेरा अन्तर तो पापी है,
इस पापी को अपने कर्मों, का सच्चा फल पाने भी दे ॥

मैं अब तक सोया हूँ न कभी, सुख की कोई भी श्वास लिये,
पर अब जाकर छिप जाऊँगा, परलोकों की कुछ आस लिये,
मेरे जीवन को पूरा ही, मिट्टी में मिल जाने भी दे ॥

(४)

क्या मुझे पाथेय दोगी ?

मैं चलूँगा अगम पथ पर, विरह ले धूमिल घटा सा,
ज्यों निकलते जीव की, अदृश्य ज्योतिर्मय छटा सा,
इस अलौकिक प्रेम का ही, क्या मुझे मधु पेय दोगी ?

मै तुम्हारे साथ रहकर, सुख तुम्हे सब दे चला हूँ,
और अपने साथ ही, अवशेष दुख सब ले चला हूँ,
याद कर इसकी कभी, प्रतिदान सा क्या श्रेय दोगी ?

इस प्रणय की याद से, मेरी व्यथा अक्रूर होगी,
जब कभी तुम हँस पड़ोगी, भूख मेरी दूर होगी,
क्या न मुझको बस यही, कुछ श्रेय युत पाथेय दोगी ?

(५)

बीतती बरसात मेरी।

अमर मेरे अश्रु झरते, मेघ की सी ही दशा है,
आज की इस शून्यता में भी मुझे कैसा नशा है,
जल रहा प्रति बूँद से, कैसी विषम आघात मेरी ॥

तिमिर भादों की निशा का, भाग्य में भी जा समाया,
इस लुटेरे ने मिटे घर, को लुटाकर क्या लुटाया,
आज उर की श्यामता से, श्याम होती गात मेरी ॥

रुक गया मारुत अरे अब, तो पयोधर को हरा कर,
बीतती बदली, बरसती थी, अभी तक जो धरा पर,
पर न बीतेगी अरे क्या, यह विरह की रात मेरी ॥

(६)

नित्य रोता ही रहूँगा ।

रोज़ रो रो गीत गाता, पर न थकता हूँ कभी भी,
शल ऐसा चुभ चुका है, जो न हँसता हूँ कभी भी,
नित्य सिर धुन धुन विरह से, उम्र खोता ही रहूँगा ।।

कौन ऐसी टूटती कलि को, बता कर नित पिघलता,
विश्व कहता-कौन रे बीते ज़माने से उबलता,
हाय, पर मैं उस कली से, व्यथित होता ही रहूँगा ।।

प्रेयसी से दूर रहने का, मज़ा मिलता रहेगा,
घाव ऐसा मधुर-कटु है, जो सदा खलता रहेगा,
आँसुओं से पाप अपने, नित्य धोता ही रहूँगा ।।

(७)

मैं कथा किस को सुनाऊँ ?

शान्त अब तक के उदधि में, विवश लहरी आ चुकी है,
तरुणता जब से हृदय में, वास थोड़ा पा चुकी है,
तट नहीं मिलता कहीं भी, शोर मैं कैसे मचाऊँ ?

लीन जब तक हो नही, हर रोज चलती ही रहेगी,
पूर्ण जब तक हो नही, तब तक मचलती ही रहेगी,
नित्य बनती ही रहेगी, मैं इसे कैसे मिटाऊँ ?

तप्त होकर आग सी, जलती उछलती जा रही है,
कूल से मिलने किसी दिन, आज ही बल खा रही है,
मैं इसे तल्लीन करने, हाय किसके पास जाऊँ ।।

(८)

आज जी भर पी सकूँगा।

विश्व की सब वारुणी से, भी नही तृष्णा बुझेगी,
आँच पा कैसे हृदय की, ज्वाल मेरी हा बुझेगी,
पर दहकती आग पीकर, आँसुओं को पी सकूँगा ।।

झूम यौवन के झकोरों से, मुझे मदिरा पिलाई,
प्रेम की इस शून्य उर मे, ज्योति जिसने ही जगाई,
नाम ले उसका मुदित हो, घाव उर के सी सकूँगा ।।

प्रेयसि की याद में, नित गीत गाता ही रहूँगा,
तीर खाकर भी पचासों, मुस्कराता ही रहूँगा,
मैं अरे मृतप्राय हूँ पर, क्यों न जी भर जी सकूँगा ?

(९)

वीणा गीत सुनाकर रोती।

कोई मिलता गीत नही, उसको ऐसा जो बन्द न होवे,
जो जी भर प्रतिदिन बज-बज कर, भी युग-युग तक मंद न होवे,
इन गिरती रुकती बौछारों, से कुछ जी बहलाकर सोती ।।

क्या अस्तित्व बिचारी का है, मानव की उँगली से हिलती,
जो कोई भी राग सुनाता, उससे ही मुस्काकर मिलती,
पर चिर साथी की अनुपस्थिति, में वह कितनी कातर होती ।।

जुगनू की ज्योति से उसके, गाने बज बज कर हट जाते,
ज्यों कवियों के भाव पुराने, आकर टकराकर कट जाते,
नश्वरता की सुध से उसकी, लहरें नभ में जाकर रोतीं ।।

(१०)

क्यों रोने को जी करता है ?

जैसे शीशे पर सरदी में, मुँह की वायू जम जाती है,
जैसे माधव में माधवता, आ आ कर मिटती जाती है,
वैसे ही मेरा प्रेमी मन, क्यों रह रह आहें भरता है ।।

रे मरने को ही आया था, क्या मैं इस रोती दुनियाँ में,
जाने क्या करने आया था, भूला सुख-दुख की दुविधा में,
मेरा, सब सचित यौवन भी, क्यों आँसू बन कर रोता है ।।

मेरी नीरवता, रजनी की, नीरवता बन छा जाती है,
तब कितने स्वर्गिक स्वप्नों की, जाने क्यों सुध आ आती है,
मेरा पीड़ित अवरुद्ध कंठ, क्यों सी, सी, सी, सी, करता है ?

(११)

प्राण ! तुम निष्प्राण क्यों हो ?

बन्द है कब से तुम्हारा, मुग्ध होकर गान करना,
रसिक आकुल खिन्न जन का, मुदित हो सम्मान करना,
परम विस्तृत प्रेम को तुम, जानकर अनजान क्यों हो ?

कौन सी नित विगत चितवन, तीर सी उर बेधती हैं,
कौन सी कसकें तुम्हारे, वक्ष को नित छेदती हैं,
इस मचलती वेदना का, ज्ञान पा अज्ञान क्यों हो ?

कौन सी बीती स्मृतियाँ, नित तुम्हारा तार छूतीं,
कौन सी पतली उँगलियाँ,हृदय की झंकार छूतीं,
प्रेम-तंत्री से निनादित, गान बन सुनसान क्यों हो ?

(१२)

आज बेसुध हो गया मै ।

दूर रहती थी क्षितिज सी, आज उर में आ गई थी,
एक चितवन में सकल, इतिहास जो बतला गई थी,
प्रेयसी के हास से, कैसा प्रफुल्लित हो गया मै ।।

काव्य भूला, देश भूला, याद कर अपनी व्यथा को,
रे प्रथम पहचान सी प्यारी, पुरानी इस कथा को,
हाय जग कर भी, प्रथम सा, मुग्ध होकर सो गया मै ।।

तरुण मेरी कल्पना से, गगन-धरणी जुड़ गए थे,
प्रेम कर इस लोक से, पर लोक तक हम उड़ गए थे,
आज किस आलोक की, अभ्यर्थना मे खो गया मैं ।।

(१३)

क्यों रुलाई आज आती ?

मस्त होकर भी विकल हूँ, मै मधुर किस मौन दुख से,
रे अभी तक पूर्ण वचित, हूँ अलौकिक प्रणय सुख से,
आज मेरे तरुण तन को, साधना किसकी बुलाती ?

कामिनी का वस्त्र भीगा, तीर पर ज्यों उड़ रहा हो,
रसिक रूठा विवश चल कर, भावना से मुड़ रहा हो,
कामना किसकी उमड़ कर, आज त्यों बरबस लुभाती ?

गहन वन, गम्भीर सागर, सा अपरिमित ज्ञान मेरा,
नित्य विश्वामित्र का सा, अखिल संचित ध्यान मेरा,
आज किसकी एक चितवन, एक क्षण में ही भुलाती ?

(१४)

आज, आँसू क्यों मचलते ?

देह तो उत्तप्त अतिशय, नेत्र क्यों रसमय हुए हैं,
जीर्ण तरु के पात दो, जैसे हरे कुसमय हुए है,
मोम मेरे अंग बनकर, अश्रु मय हो क्यों पिघलते ?

फूट पड़ते सजल छाले, वक्ष पर पड़कर खटकते,
तरुण से उन्मत्त बन नभ, से पयोधर से टपकते,
ताप से घबरा हृदय पर, छनछना कर क्यों उछलते ?

वक्ष विस्तृत देखकर, इनकी सदा घुड़दौड़ रहती,
वेग से नित प्रथम ढलने, की परस्पर होड़ रहती,
ये बिचारे क्या कहीं, फरियाद करने को निकलते ।।

(१५)

सूनापन ही साथी बनता ।

सूनेपन से ही ज्ञात हुआ, यह भी चेतन है, गतिमय है,
इसके भीतर भी युग युग से, कोई गाता है, तन्मय है,
यह अक्सर बातें कर मुझसे, मानो मेरा नाती बनता ।।

इसमें पायल की एक झनक, कोई मदिरा भी पीता है,
जैसे सनकी की एक सनक, जिसके बल पर वह जीता है,
प्रिय तक पहुँचाने में मेरा, वह साथी बाराती बनता ।।

मैं समझाने अपने दिल को, नव चिन्तन करता रहता हूँ,
मैं बैठा बैठा ही देखो, मनमाना फिरता रहता हूँ,
रजनी का सूना अंधकार, मेरा सुन्दर हाथी बनता ।।

(१६)

आज मेरे प्राण रूठे ।

मौन हैं होकर विकल भी, आतुरा की वेदना से,
है बने क्यों क्षुब्ध रमणी की, विदित प्रिय चेतना से,
बन्द कर आलाप सब, क्यो मानकर अपमान रूठे ?

क्या पता किस क्लेश से, संताप क्यों इनको हुआ है,
रे मुझे कोई बता दे, पाप क्या मुझसे हुआ है,
व्यर्थ ही मुझको सताते, क्यों बने अनजान रूठे ?

या किसी की प्रेरणा से, ये स्वय ही रूठ जाते,
कौन से धागे हृदय की, पुतलियों को है नचाते,
पूर्ण वश मुझ पर किया, ज्यों नाग पर भगवान् रूठे ॥

क्या किसी बेसुध प्रिया का, चित्र उर पर खिच रहा है,
दूर बैठे किस प्रणय से, प्रेम मेरा सिच रहा है,
कौन सी मुस्कान रूठी, आज जिससे गान रूठे ॥

(१७)

आज कोई रो रहा है ।

जगत की सारी दिशाओं, से खुशी के गान उठते,
"प्रेयसी की याद मे" पर, आज उसके प्राण उठते,
जीव आकुल, देह आकुल, काव्य आकुल हो रहा है ॥

विकल उर का बन्द तोता, आज रह रह चीखता है,
वाह्य जग के वाद्य-स्वर से, आह भरना सीखता है,
एक कोने मे तड़प कर, धैर्य अपना खो रहा है ॥

क्या उबलती कामनाएँ, छोड़ उसको थक सकेगी,
विश्व की सारी मशालें, क्या उन्हें भी ढक सकेंगी,
आज की दीपावली मे, तो अँधेरा हो रहा है ॥

(१८)

आज कोकिल मौन क्यों है ?

रात बीती युग सदृश, अब सुरभि युत मधु वात बहती,
प्रात ही में गात पर क्यों, दुसह विद्युत पात सहती,
विविध बिहँगों को विहँसते, देखकर भी मौन क्यो है ?

नित्य कसकों से सिसकना, कुछ शिथिल कैसे बना है,
खिन्न कोकिल ! आज तेरा, विरह क्या इतना घना है,
विकल हो रह रह कुहकना, छोड़कर तू मौन क्यों है ?

हाय तेरी सिसकियाँ ही, प्रणय का अनुरोध बनती,
तरुण कवि की लिखित आहों, सी जगत-आमोद बनती,
बन्द कर जग हित बिलखना, उर व्यथा से मौन क्यों है ?

(१६)

कोमलता शरमाती क्यों है ?

रवि को कुछ क्षण ही हँसने में, आहे अतिशय भरनी पड़ती,
मंजिल कितनी, रात अँधेरी, में नित ही तय करनी पड़ती,
दिनकर लख, लज्जित ऊषा, अँगड़ाई भर अलसाती क्यों है?

मलयानिल के मृदु झोकों से, हँस हँस कर स्पन्दित होती,
कम्पित होकर भी पल-पल में, प्रतिदिन कितनी शकित होती,
आलिगन करने में तरु का, हाय लता घबराती क्यों है ?

डाली पर इत उत नर्तन कर, रुक रुककर तड़पा तड़पाकर,
आकुल अलि को घायल करने, झुक झुक कर मुसका मुसका कर
भ्रमर निरखते ही कलिका, नित खिलने मे मुरझाती क्यों है ?

कलिकादिक के प्रेमी कोमलता, लखकर प्रेमातुर होते,
आज परम पर मेरे निर्दय, प्राण पुनः शोकातुर होते,
याद अरे कर कोमलता, फरियाद किसी की आती क्यों है !

(२०)

मुझ को मुझ पर विश्वास नहीं ।

मेरे पग डगमग करते है, जिस पथ पर आगे बढता हूँ,
मेरी लेखनि खर खर करती, ज्यों ही कागज़ पर धरता हूँ,
पहले का सा उल्लास भरा, कोई उद्वेलित हास नही ॥

ऐसे बादल मँडराते है, जो तम ही तम फैला देते,
मैं प्यासा बैठा रहता हूँ, तुम मुझ को कुछ टहला देते,
मेरे उर के अँधियारे में, कोई निर्मल आकाश नही ॥

अन्तर की लहराती लहरें, किस परदे से आच्छन्न हुईं,
चिन्ता, पीड़ा, नीरस जड़ता, कैसे मुझ में उत्पन्न हुईं,
कुछ दिन से मुझको मिलता है, कोई सच्चा अभास नही ॥

(२१)

जाओ, मुझको सोने भी दो ।

मेरे यौवन के सपने सब, आँसू बनकर झरते जाते,
मेरे उर के परवाने नित, किस ज्वाला पर मरते जाते,
मत छेड़ो मेरे मानस को, मुझ को मुझ मे खोने भी दो ॥

तारों की चंचल छाया भी, मुझ पर पड़कर रो पड़ती है,
मेरे सँग मोती छोड़ छोड़, कितनी बेसुध हो पड़ती है,
इन अनगिनती आँसू से ही, मुझको जीवन धोने भी दो ॥

ओ दुनियाँ वालो खूब हँसो, मै रोता तुम्हें हँसाने को,
मै दिन भर उड़ता फिरता हूँ, कुछ मोती तुम्हे चुगाने को,
रे मेरी चिन्ता करो नहीं, जाओ मुझको रोने भी दो ॥

(२२)

आज दिवाली मनाऊँ ।

मै मनाता दूसरी दीपावली, जग से अलग हो,
विकल सपनों में मचल कर, नित्य सुक्खों से विलग हो,
तुम मनाते एक दिन, लो मै सदा लाली मनाऊँ ।।

पर हमारे शून्य घर में, रोशनी का नाम क्या है,
विरह तम की इस दिवाली, में खुशी का काम क्या है,
तुम बनाओ क्षणिक दीपक, मै मधुर प्याली बनाऊँ ।।

कवि अँधेरे में पड़ा हो, दीप जब जग के लखेगा,
तब कही कुछ आँसुओं से, काव्य उसका जल सकेगा,
मै अमर दीपक जलाने, नित निशा काली मनाऊँ ।।

(२३)

रागिनी मैंने सुनी है ।

बज रही मेरे हृदय में, सृष्टि के प्रत्येक कण में,
सुन चुका जो भी उसे, बेसुध बनाया एक क्षण में,
इस निगुण ध्वनि को सदा, साकार कर मैंने सुनी है ।।

मैं परम उन्मत बनता, मंत्र मोहित नाग जैसे,
झूमता जाता हवा से, रम्य कुसुमित बाग जैसे,
नित्य सुन सुन कर इसे, आवाज जग की कब सुनी है ।।

भावनाएँ नित निकलतीं, रागमय उर-मुरलियों से,
पुतलियाँ ज्यों काठ की, चलती मचलती उँगलियों से,
वेदनामय सरस कविता, मच सी मैंने चुनी है ।।

(२४)

आज अम्बर में हृदय की, कल्पना का यान उठता ।।

हर्ष-दुख का विकल अंतर, में निरंतर द्वंद होता,
मन्द होकर भी हृदयगति, रे कहाँ यह बंद होता,
ज्यों रुला कर भी रिझाने, मानिनी का मान उठता ।।

यह युगों को मौन पोड़ा, तीर से उर मे चुभाती,
पर सुखों की याद भी, आकर मुझे सहसा हँसाती,
अश्रुओं से हो प्रफुल्लित, मूक मेरा गान उठता ।।

नित्य ही नभ मे विचर कर, चित्र अगणित खीचता हूँ,
अगम पथ को आँसुओं के, ओस कण से सीचता हूँ,
दूर किस प्रिय से मिलन को, आज मेरा प्राण उठता ।।

पवन से मेरे वितानों का, सकल परिधान उठता,
है नहीं आधार कोई, आज फिर भी ज्ञान उठता,
चाप सुनकर मृदु चरण की, ज्यो रसिक अनजान उठता ।।

(२५)

आज क्या आधार ढूँढ़ूँ ?

मै खड़ा हूँ मौन हिमगिरि सा, नियन्त्रित गान लेकर,
मैं न अब तक तो झुका हूँ, आत्म का अभिमान लेकर,
आज क्या थोड़ा पिघल कर, मेदिनी का तार ढूँढ़ूँ ?

मै स्वयं ही बन्द रखता, पूर्ण द्रोही विकल मन को,
छोड़ कर जाने न पाता, यह विचारा क्षुब्ध तन का,
आज रोगी के लिये क्या, रम्य कारागार ढूँढ़ूँ ?

मै खड़ा रहता मुझे दुनियाँ बुलाने में अटकती,
शर्म उनकी बन उदासी, आज क्यों मुझमें खटकती,
आज क्या बस एक क्षण, कोई कला साकार ढूँढ़ूँ ।।

कल्पना से सत्य का आभास नित मैं पा रहा हूँ,
मै जड़ों तक जा पहुँचने, नित्य ऊँचा जा रहा हूँ,
आज भौतिक देह से पर, क्या कही आभार ढूँढूँ ।।

(२६)

मै किसको यौवन दिखलाऊँ ।
दुनियाँ के सारे नर नारी, अच्छे अच्छे कपड़े पहनें,
अपने प्रेमी जन के आगे, अपने को नित अच्छा कहने,
बैठा बैठा सोचा करता, कैसे निज चिन्तन बतलाऊँ ।।
मै ही उन मनहूसों मे हूँ, जो निज को गाली देते है,
जीवन के सुखमय उपवन से, केवल कड़वे फल लेते हैं,
तुम क्या जानो मुझ कैदी को, कैसे उर बन्धन दिखलाऊँ ।।
इतनी कुत्सित इच्छाएँ है, मेरे दिल की तह के भीतर,
जिनकी ग्लानी से मन मेरा, जलता रहता भीतर भीतर,
इतनी फुर्सत कब मिलती है, जो औरों को भी तड़पाऊँ ।।

(२७)

क्यों मुझे छाया भुलाती ?
तू विचित्रे ! साथ होती, ज्यों तिमिर की ओर बढ़ता,
काश मै वह ज्योति अपनाकर, तुझे अति दूर करता,
भ्राँति के झूले बनाकर, जीव की जाया भुलाती ?
जान कर भी निबिड़ तम, अनजान शिशु सा रो पड़ा हूँ,
श्वान सा चिन्तित विकल हो, काच-मन्दिर में खड़ा हूँ,
मै विदित प्रतिबिम्ब से पर, यह तरुण काया रुलाती ।।
में समझता ब्रह्म को, फिर क्यों विषय में डूब जाता,
दौड़ता ऐश्वर्य पाने, रे नही क्यों ऊब जाता,
में जिसे दुतकारता, बरबस वही माया बुलाती ।।

(३०)

इस जीवन मे विश्राम कहाँ ?

हम काल-चक्र की मारों से, जी जी कर मरते जाते है,
रावण के सिर से कट-कट कर, शंकर पर चढ़ते जाते है,
पर अमृत पाने को अब तक, कोई सच्चा पैग़ाम कहाँ ?

हम तकली से फिरते रहते, बुनते कपड़े जजालों के,
हम हँसते तो भी तो मेंढक से, मुँह मे रहकर भी व्यालों के,
मैं तो हँस-हँसकर हार गया, क्षण भर रुकने का नाम कहाँ ?

पृथ्वी फिरती, तारे फिरते, सृष्टी का कण-कण फिरता है,
क्या इनसे उठ कर नही कहीं, जीवन में चिर स्थिरता है,
इस आवारा गर्दी मे तो, कोई पक्का आराम कहाँ ?

(३१)

मै तरुण क्यों हो गया हूँ ?

आज चारों ओर से तो, नाश के ही नाद उठते,
ज्यों नये साहित्य में नित, वाद पर प्रतिवाद उठते,
वृद्ध जग की श्यामता में, मैं अरुण क्यों हो गया हूँ ।।

रे मुझे तो जन्म लेना, था हजारों वर्ष पहले,
नीच कलियुग में भला, कैसे कवी का चित्त बहले,
आज सूखी मेदनी पर, मैं वरुण क्यों हो गया हूँ ?

हाय मैं बूढे जवानों, के लड़कपन से दुखी हो,
और अपने आपके, निर्दिष्ट जीवन से सुखी हो,
अट्टहासों बीच रह कर, भी करुण क्यों हो गया हूँ ।।

(३२)

देव-पद, मै क्यों गहूँगा ?

आज की प्यासी मही, तो मानवो को चाहती है,
ऊँच नीचों को हटा कर, सृष्टि सुन्दर चाहती है,
दानवों से युद्ध करने, शस्त्र क्यों कर मै गहूँगा ?

देव गण भी यदि उधर, सब कष्ट देने को बढ़ेगे,
तो कभी भी मनुजता से, गिर न हम उनसे लड़ेंगे,
मनुजता के हेतु छाती खोल कर आगे बढ़ूँगा ?

दस्युता, देवत्व से बढ़कर मनुजता मै समझता,
क्रूर हिसा, काम लिप्सा, हेय दोनों को समझता,
देव, दानव, दूर करने, प्रेम का संदेश दूँगा ॥

त्याग के आगे निशाचर, भी कहो कैसे, लड़ेगा,
छोड़ना मीना बजारों को, सुरों को भी पड़ेगा,
शान्तिमय वसुधा बनाने, यातना मैं सब सहूँगा ॥

लेखनी कवि की मधुर, जग के हृदय पर जब चलेगी,
आज की दुनियाँ पुरानी, स्वर्ग संशोधित बनेगी,
भावना बन प्रेम की बस, आँसुओं सँग नित बहूँगा ॥

(३३)

सारे लोग मुझे दुख देते ।

मैं सहता रहता गाली को, याद सदा कर मतवाली को,
पर न क्षणिक गाली देकर ही, हारे, चैन कभी ये लेते ॥

मैं बैठा रहता बैरागी, अपनी प्रेयसि का अनुरागी,
रोज मुझे कंकड़ पत्थर से, मारे को न पनपने देते ॥

ये नभ के दीपक सुन्दर भी, दया न दिखलाते मुझ पर भी,
मेरे इन बहते घावों को, तारे, चीर अरे सुख लेते ।

(३४)

तारा एक दिखाई पड़ता ।

क्या पीड़ा से तिलमिल करता, प्रतिपल झिलमिल २ करता,
क्या इसमें मंजिल का मारा, प्यारा एक उठा ही पड़ता ॥
क्या इसमें कोई गाता है, गाकर बेसुध हो जाता है,
बजता बजता रुकता रुकता, नारा एक सुनाई पडता ॥
कोई हँस कर रो पड़ता है, कोई जगकर सो पड़ता है,
मेरे उर के नभ में भी तो, कारा एक दिखाई पड़ता ॥

(३५)

तारे आज मुझे क्या कहते ?

ये अगणित हैं ये विस्तृत है, मैं किन किन को देखूँ जी भर,
मैं तो देख रहा चन्दा को, आँसू की बूँदे पी पी कर,
इनकी छाती जल उठती है, सारे आज अरे क्यों दहते ?
काँप रहे गुस्सा भर भर कर, इनकी हिलती डुलती काया,
पर ये सारे क्षण भंगुर हैं, इनकी चलती फिरती छाया,
अमृत पीते लख कर मुझको, थोड़े शान्त नहीं क्यों होते ?
रे दुनियाँ वालों के सँग में, ये भी तो आवाज़ मिलाते,
मेरी खिल्ली रोज उड़ाकर, ये भी अपना साज बजाते,
हाय किसी का अपनी प्रिय से, मिलना क्यों न कभी ये सहते ?

(३६)

रे मुझको कौन बुलाता ?

इस चाँद के भीतर रोता, मुझको लख विह्वल होता,
इन किरणों की सीढ़ी से, आहें भर कौन बुलाता ॥

मैं भी झंकृत हो जाता, अमृत वर्षा से गाता;
चुपके से इस में उठ कर, रे मुझको कौन रुलाता ?
मेरा ही कोई साथी, जिसको मेरी सुध आती,
नित रह-रहकर युग-युग से, उत्सुक हो मौन बुलाता ॥

(३७)

तारे भी तो छिपने आए ।
बीती रजनी रो रो करके, आँसू से मुँह धो-धो करके,
अब तो पंकज भी मुस्काकर, थोड़े-थोड़े खिलने आए ॥
लो मुझ पर पक्षी मँडराते, जलते दीपक सब मुरझाते,
मेरे इस सूखे पंजर से, क्या ये जीवन चुनने आए ॥
कैसी उलझन ने रोका है, रे किसने उसको टोका है,
क्या मेरी प्रिय के चरणों मे, काँटे सारे चुभने आए ॥

(३८)

दूर होती रात मेरी ।
चिर अमर प्रिय तिमिर को ले, शीघ्र कितनी जा रही है,
क्या मुझे भी मिलन-तत्पर, देख कर शरमा रही है,
यह कहाँ छिप कर लगाती, है सुनहली प्रात फेरी ॥
भानु सँग या मंच पर, आने इसे अरुणा हटाती,
या कही अति दूर ले जाने इसे करुणा हटाती,
क्या न यह भी लख सकी है, दुख भरी आघात मेरी ॥
मैं सजनि का चाप स्वर-आभास पा कर जी उठा था,
वारुणी के घट असंख्यों, एक क्षण मैं पी उठा था,
पर न पूरी हो सकी, रे, क्यों अधूरी बात मेरी ?

(३९)

ऊषे ! क्यों लज्जित होती हो ?

तुम अंधकार जग से हर कर, जग को उज्वल कर देती हो,
उलझा नित कर्मों में सब को, जागरण सफल कर देती हो,
अलसाई आँखों में मद भर, तुम पुलकित कितनी होती हो ।।

बच्चा बच्चा कुछ करने को, पग डगमग डगमग धरता है,
तव भाल-विन्दु की आभा से, जग जगमग-जगमग करता है,
अनुराग-राग भर-भरकर, तुम रंजित कितनी होती हो ।।

पर लाल-लाल इन तीरों से, मेरा उर नित छिद जाता है,
स्मृतियाँ तड़पाने लगती, आकुल अन्तर बिंध जाता है,
मैं घायल सा बैठा रहता, पर तुम कम्पित क्यों होती हो ।।

पशु-पक्षी भी प्रमुदित होते, जब सब जग हँसता देख तुम्हें,
इस वसुधा पर नहिं कोई भी, अपने कर मलता देख तुम्हे,
तब केवल मेरे लिये अरे इतनी चिन्तित क्यों होती हो ?

(४०)

किरणों अब भीतर मत आओ ।

अब तुम भी तो मुझसे प्रतिदिन, विध्वंसों को खबरें कहतीं,
रे तुम भी लोहित धारा में, पानी पानी होकर बहतीं,
मानवता से हटकर कोई, भी गाना आकर मत गाओ ।।

रँग ली तुमने भी क्यों डरकर, साड़ी दुनियाँ के ही रँग में,
कैसे रह सकती हो अब तुम, प्रिय बनकर कवियों के सँग में,
हम प्रेमी जन को फुसलाने, मत लज्जित मुख को दिखलाओ ।।

मेरे अन्तस्थल में घुसकर, तुम क्यों काला कर देती हो,
मेरे सपनों के दुर्गों पर, तुम क्यों ताला धर देती हो,
डूबा रहने दो जीवन भर, मरने भी दो मुझको जाओ ।।

(४१)

मधुकर, अब मुझ से कुछ बोलो ।

पंकज को तुम सहलाते हो, षट्पद अति चचल कहलाकर,
कलियों को तुम बहलाते हो, पंखड़ियाँ रस से नहला कर,
मेरी धड़कन मे भी अपना, मादक यह स्पन्दन घोलो ॥

इस युग में भी छोड़ न पाए, कोमल मधुमय गीत सुनाना,
इस बीते से जग-वसत मे, पहले का सा ही मुस्काना,
आओ मेरे सँग थोड़ा तुम, भी अपने यौवन पर रो लो ॥

सुमन खिले हैं तुम को लख कर, सज्जनता के तुम निधान हो,
उपवन मे अति गुंजन करते, जैसे नभ मे वायुयान हो,
देकर कोई प्रेम सँदेसा, मेरे उर के बन्धन खोलो ॥

(४२)

आज क्यों झंकार फूटी ?

कौन सा यह राग नूतन, स्वतः वीणा पर मचलता,
क्षीर सा उर मे उबल कर, नीर आँखों से निकलता,
और दिन की भाँति कैसे, आज भी मुझसे न रूठी ॥

विकल उर के घाव मे, नित घाव फिर मैंने किये हैं,
शून्यता के भाव औ अनुभाव कविता में दिये हैं,
आज कैसे इस मरुस्थल, मे उगी यह प्यार बूटी ?

मेघ जब कोई नही, बौछार फिर किसकी हुई है,
गेह मे कोई नही मनुहार फिर किसकी हुई है,
आज किसके तीर से, मेरी हृदय टंकार फूटी ?

(४३)

आज क्यों मकरंद उड़ती ?
बन्द रक्खा है सुमन को, वेदना के वस्त्र भीतर,
बोल उठता भूख से ज्यों, व्याध का अवरुद्ध तीतर,
आज आँसू से सरस हो, क्यों स्वतः यह गन्ध उड़ती ?
आज मन का पुष्प क्यों, खुशबू लुटाना चाहता है,
शीघ्र मिटने से प्रथम, तृष्णा मिटाना चाहता है,
कल्पना की तितलियाँ क्यों, आज दे आनन्द उड़ती ।।
क्षीण मेरा जीव क्यों, यह गीत गाना चाहता है,
मौन होने से प्रथम, क्रन्दन मचाना चाहता है,
आज कवि की लेखनी क्यों, प्रेम भर स्वच्छन्द उड़ती ।।

(४४)

मैं न नगरी में फिरा पर, पथ सब पहचानता हूँ ।
फिर चुके जितने निवासी, वे न कुछ मुस्कान लाए,
किस जगह अमृत भरा है, यह न किंचित जान पाए,
मैं यहाँ बैठा सभी घर, में विचरना जानता हूँ ।।
एक ऐसा नक्श मेरे, वक्ष के भीतर बसा है,
नगर क्या, सब सृष्टि का, उल्लास नित मुझ में हँसा है,
बात तो करता नही, मनुहार सब की मानता हूँ ।।
इस अलौकिक अगम थल पर, नित्य नूतन गान उठते,
सुन जिन्हें सब रसिक जन के, पूर्ण प्यासे प्राण उठते,
नृत्य तो देखे नही सौदा सभी कर जानता हूँ ।।

(४५)

तुम पर अधिकार जमाऊँगा ।
कुछ दिन में बैठे बैठे ही, मेरे हाथों लुट जाओगी,
इस भौतिक दुनियाँ से मिटकर, मुझ तक ऊपर उठ जाओगी,
मैं पहले ही कह देता हूँ, असली शृंगार सिखाऊँगा ।।

मेरी बातें मानो चाहे, मत मानो इठला इठला कर,
चाहे बदनाम करो मुझको, नित उँगली बतला बतलाकर,
इक दिन कायल होना होगा, अपना संसार बनाऊँगा ॥

जैसे बहता नर छोड़ नही, सकता तृण को भी अपनाकर,
वैसे ही मैंने पकड़ा है, घबराकर, टकराकर, पाकर,
या तो मुझको बाहर खींचो, या फिर मँझधार डुबाऊँगा ॥

(४६)

पत्र लिखता ही रहूँगा, जन्म भर आओ न आओ ॥
जल रहा मेरा प्रणय नित, आहुती पाकर व्यथा की,
तप रहा कंचन युगों से, याद में बीती कथा की,
आग पीता ही रहूँगा, मेघ बन छाओ न छाओ ॥

रे परीक्षा हो चुकी अब, और क्या बाकी रहा है,
छोड़ कर मधु-पात्र कब से, दूर हो साकी रहा है,
अश्रु बरसाता रहूँगा, मद्य तुम लाओ न लाओ ॥

है कसम मेरी तुम्हें तुम, रोक कर देखो स्वयं को,
है कहाँ तक वश हृदय पर, मूँद कर देखो नयन को,
तार झनकाता रहूँगा, गीत तुम गाओ न गाओ ॥

(४७)

क्या कभी निर्णय करूँगा ?

जल रहा हूँ और के हित, ही सदा मैं टिमटिमाता,
शून्य उर से भी अहर्निश, मैं खड़ा हूँ चमचमाता,
क्या न अपनेआप का, जीवन कभी मधुमय करूँगा ?

लोग कहते क्यों नहीं मैं, भी उन्हीं सा प्रेम करता,
क्यों नहीं मैं भी हृदय में, आदिभौतिक स्नेह भरता,
क्या अकेला प्रेयसी कल्पित बना अभिनय करूँगा ?

खोजने नव रागिनी, जीवन बिताना चाहता हूँ,
नित्य नूतन प्रेम की, वीणा बजाना चाहता हूँ,
पूछता क्यों विश्व प्रतिदिन, क्या कभी परिणय करूँगा ।।

(४८)

आज कविताएँ बिखरती ।

कौन सुख एकत्र हो मुझमे समा कर गा रहा है.
कौन इतना शीघ्र मेरे, हाथ को लिखवा रहा है,
मै नहीं कुछ सोच पाता, विवश सरिताएँ उमड़ती ।।

आज इस परजन्य के जल, को कहाँ तक मै समेटूँ,
यह अपरिमित स्रोत, मै तट का विटप, कब तक न लेटूँ,
ज्ञान और विज्ञान की सब, क्षीण शाखाएँ उखड़ती ।।

मैं बहा ही जा रहा हूँ, उदधि में जाकर समाने,
सकल सस्ता काव्य मँहगे, लोक में जाकर सुनाने,
आज अमृत पान को आच्छन्न इच्छाएँ निखरतीं ।।

(४९)

आज यौवन-श्वास मेरी, हास मैंने ही बनाई ।

मै पंतगों सा जला नित, स्वयं ही की चेतना में,
मैं चकोरों सा उड़ा अपने गगन की ज्योत्स्ना में,
मैं न गिर कर भी बुझा पाया हृदय की मौन ज्वाला,
मैं अँगारे चुग चुका फिर, भी न मिटता यह उजाला,
दाह यह झकझोर उर को, आह बन बन कर निकलती,
जब कभी यह अश्रु बनती, तब अमर कविता निकलती.
तुम लखो या मत लखो, उल्लास मैंने ही बनाई ।।

विश्व कहता काव्य अपना, सब समष्टी में मिला दो,
शक्तियाँ इस देह की तुम, सकल सृष्टी में मिला दो,

मैं मिला पाया न अपने, को जगत की वेदना में,
वेदना जग की मिली आकर स्वतः मम चेतना मे,
आज मुझमें और जग मे, भेद अब क्या रह गया है,
आज मेरे पास अपनेआप का क्या रह गया है,
जग-व्यथा भी आज तो, मृदु हास मैंने ही बनाई ॥

मनुज चाहे तो किसी भी, राह पर निज को चलाले,
प्रेम-पथ मिलते सभी, बस एक से निज को मिलाले,
पथ कई इस योग के लय-ताल भी सब की विलग है,
साधना से जन्य तन्मयता न पर कुछ भी अलग है,
मैं कमल हूँ, मै सरोवर, मैं जगत का अखिल क्रन्दन,
आज मुझ में बस चुका है, अमर मानस तोड़ बन्धन,
दिव्यता का, साँस यह, आवास मैंने ही बनाई ॥

(५०)

मेरी गाथा को भी सुन लो ।
मैं भी रो लूँगा दिनकर सा, जीवन-सध्या के आने पर,
पुस्तक के पृष्टों की ओटों, में यौवन के छिप जाने पर,
पर आँसू से झरने पहले, मेरी मस्ती को भी गुन लो ॥

मैं तो छोटा सा कीड़ा हूँ, शहतूतों को खाता फिरता,
नूतन डाली के पत्तों से, अपने को चिपटाता फिरता,
तितली बन कर उड़ने पहले, मेरे रेशम को भी बुन लो ॥

इस जग-उपवन के कोने में, मेरा गुल खिलता रहता है,
बुलबुल के झोकों से मेरा, मन का पुल हिलता रहता है,
मिट्टी में मिलने से पहले, मेरे फूलों को भी चुन लो ॥

(५१)

आज तरंगे क्यों टकराती ?

बढ़वानल से आहट पाकर, सोई भी उठने लगती है.
जब इनकी साँसे बढ़ जातीं, आपस में कटने लगती है,
क्या इनको कुछ ज्ञात नही है, तट आने पर सब मर जाती ।।

मेरे अन्तर में भी उठती, ऐसी छोटी-छोटी लहरे,
जैसे अति कोमल कलिकाएँ, मारुत से पुलकित हो फहरें,
क्यों भोली भाली उठ-उठकर, नित्य परस्पर ही लड़ जाती ।।

माली ने देखो प्रतिदिन ही, कितनी बेसुध कलियाँ तोड़ी,
पर मैं दानव बन क्यों तोड़ूँ, मैंने तो टूटी भी जोड़ी,
अपना दीपक बुझने, पहले, क्यों झगड़े करती इतराती ।।

(५२)

तितली में सुन्दरता कितनी ?

केवल पंखों पर रंग चढ़ा, खिलते पुष्पों तक जा पाती,
सीधे साधे सुमनों का जी, चंचल होकर बहला पाती,
छूने पर ज्ञात हुआ इसमे, अति दूषित कृत्रिमता कितनी ।।

थोड़ी सी वर्षा होते ही, पत्तों में छिप कर दब जाती,
मधु लेने यह मधुमक्खी सी, मतवाली होकर कब जाती,
वह मधु लेकर देती भी है, पर इसमें सज्जनता कितनी ।।

मैं तो आँधी तूफानों से, लड़ता भिड़ता ऊँचा चढ़ता,
प्रेयसि की कुछ आहट पाकर गिरता पड़ता आगे बढ़ता,
पर इस सुन्दर कठपुतली में, रे मादक तत्परता कितनी ।।

(५३)

प्रस्फुटित होता स्वयं ही, आज का मधु हास देखो।

आज मुझमे उर्मि उठती, ज्यों जवानी सिच गई हो,
उत्तरी ध्रुव के निकट, जैसा अरोरा खिच गई हो,
धार बहती प्रेम की, जैसे शिलाएँ कट गई हो,
बादलों की स्वच्छ नभ से, ज्यों निशानी हट गई हो,
कोपले हँसती हृदय की, फूटता मधुमास देखो ॥

आज जब उर के चरम सुख, का अभी मध्यान्ह आया,
तप चुका इतना प्रफुल्लित हो तभी लो ध्यान आया,
वह क्षितिज पर लालिमा सी, क्यों उदासी छा रही है,
आज मेरे डूबने की क्यों, उसे सुध आ रही है,
एक उठती टीस बस, बाकी सुखद उच्छ्वास देखो ॥

(५४)

अब कहाँ तक मैं अलौकिक प्रेम की महिमा बताऊँ;
पन्थ पहले एक भी, मिलता नहीं था मुझ ग्रसित को.
स्रोत लेकिन मिल गया, अब तो मरुस्थल तृषित को,
आज मेरे हर्ष का, सागर लखो लहरा रहा है,
आज की चैतन्यता में, गीत कोई गा रहा है,
झूमता जाता स्वयं, कैसे परम गरिमा बताऊँ ॥

गीत पर नव गीत घंटों, से निकलते जा रहे हैं
स्वर्ग का संदेश देकर, मर्त्य को बहला रहे हैं.
आज मेरी कल्पना की, टूटती कड़ियाँ बिखरती,
आज तो उत्सव मनाने, स्वर्ग से परियाँ उतरतीं,
अप्सरा की अन्य से, कैसे तुम्हे उपमा बताऊँ ॥

आसमाँ भी, चन्द्रमाँ भी, सब बिचारे रो रहे थे,
आँसुओं से वक्ष पृथ्वी का सितारे धो रहे थे,
नीर प्यासों को पिलाया, प्रेम से नीचे बुलाकर,
अष्ट सिद्धी बाँध ली, मैंने नवों निधियाँ मिलाकर,
पी सको उतना पियो, कैसे तुम्हे सीमा दिखाऊँ ।।

(५५)

खिड़की मारुत से खुल जाती ।

मारुत गिरता पड़ता चलता, डगमग डगमग करता आता,
कोई मतवाला सा मानों, मदिरा पीकर घर पर आता,
वातायन भी बेसुध होकर, उसके रँग में ही घुल जाती ।।

हो मुक्त पवन के सँग फिरने, वह दीवारों से टकराती,
भूखी प्यासी विद्रोहिन ज्यों, क्रोधित हो सब से लड़ जाती,
चोटों की कुछ परवाह न कर, वह मर मिटने को तुल जाती ।।

इक मैं ही ऐसा पत्थर हूँ, जो कभी नही तुल पाया हूँ,
मैं प्रेम समझ कर भी जग में, रे प्रेम नहीं कर पाया हूँ,
कोई मलियानिल के झोकों, से मुझको प्रतिदिन बुलवाती ।।

(५६)

आज मन में शूल उठते ।।

साँस ज्यों ज्यों जा रही है, त्यों हृदय क्यों डोल उठता,
जा अली ज्यों केतकी में, कसमसा कर बोल उठता,
हिचकियों के साथ मेरे, प्राण दुख में झूल उठते ।।

किन्तु मेरी आह से, उलटी क्रिया भी हो रही है,
मौन मेरी धड़कनें किसमें समा खुश हो रही हैं,
अश्रु-सरिता इत उमड़ती, प्रेम के क्यों कूल उठते ।।

आज मेरे क्रन्दनों से, हास किसका आ रहा है,
आज मेरी वेदना पर, क्यों दया दिखला रहा है,
नीर गिरता जा रहा त्यों त्यों किसी के फूल उठते ॥

(५७)

वेदने ! कोमल बनी क्यों ?

मैं जलज सा चरम सुख के, गहन सर में वास करता,
भूल कर भी मत्त सकट-गज नहीं पग पास धरता,
पर, जलाने नित मुझे, हिम-पात सी निर्मल बनी क्यों ?

मेघ सा मेरा हृदय, मृदु भावनाओं से उमड़ता,
तीक्ष्ण, पर तेरे प्रहारों, से तरल बनकर बरसता,
अश्रु ढलकाने कलुषिते, तड़ित सी चंचल बनी क्यों ?

कामिनी की कुटिल कटि सी, तू इशारों से लचकती,
ज्यों दबाता त्यों उभरती, छोड़ता ज्यों, त्यों मचलती,
पार तेरे तीर होते, चाप सी दुर्बल बनी क्यों ?

(५८)

प्रीत से पलने न पाया ॥

बालकों की सी हृदय में, भावनाएँ क्यों अभी हैं,
तरुण के तारुण्य की, व्युतपत्तियाँ भीतर दबी हैं,
प्रेयसी का प्रेम-पथ पर, मीत हूँ चलने न पाया ॥

मानसिक बल का व्यथा पर, राज इतना छा चुका है,
मानवों में ज्ञान सारा, रे हृदय को खा चुका है,
क्यों किसी को मौन क्रन्दन, जीत में खलने न पाया ॥

आँधियाँ चलती रही है, मेह कैसा पड़ रहा है,
पर मुझे तो अब बचाने, हाथ कोई बढ रहा है,
नेह पूरित हो चला हूँ, दीप हूँ जलने न पाया ॥

(५६)

आज मेरे पास क्या है ?

यदि बिठाता जग मुझे, एकान्त मे आवास देकर
पेट भर पाता अगर मै, शान्ति का आभास लेकर,
कर बहुत कुछ तब दिखाता, आज तो उच्छ्वास क्या है ?

काश मेरी शक्ति का, कोई हृदय विश्वास करता,
काश यौवन के समय तो, मै किसी से आस करता,
नित भटकता आज मै, निर्माण को अवकाश क्या है ?

श्वास मिलती यदि मुझे कोमल चरण के मृदुल लय से,
मै बनाता विश्व नूतन, कल्पना का, नित प्रणय से,
हाथ में तो लेखनी पर, साथ में उल्लास क्या है ?

(६०)

गलती करना भी व्यसन बना।

नित चलते चलते जीवन में, अब जी भर आने लगता है,
जैसी अरबी घोड़ा थक कर, कुछ ठोकर खाने लगता है
इस आदत से मजबूर हुआ, इस पर मेरा कुछ बस न बना ॥

फिर भी मै गिरता हूँ न कही, टीलों पर चढ़ता जाता हूँ,
अपने अन्तर की वाणी सुन, नित आगे बढ़ता जाता हूँ,
मैने भी नौ रस सीखे थे, पर मुझ से कोई रस न बना ॥

मै आवेगो मे पीड़ा को, क्रीड़ा सा ही अपनाता हूँ,
चंचल बालक सा फिर फिर कर, ज्वाला के हाथ लगाता हूँ,
मै तो जलने को बैठा हूँ, उत्तेजन मेरा वसन बना ॥

(६१)

मुझको भी जीना आता है ।।
मैं रोता हूँ अरमानों से, उर में ही सोए गानो से,
पर इन मुरझाए प्राणों से, क्यों सौरभ भीना आता है ।।

सृष्टी गिरती बनती रहती, कविता तो नित तनती रहती,
इन छोटे छोटे धागों से, तम्बू क्यों सीना आता है ।।

मैंने भी मर कर देखा है, उर मे भी घर कर देखा है,
मधु-नयनो के मादक मधु को, माधव को पीना आता है ।।

(६२)

अलि, आज अरे तुम क्यो उदास ?
क्या कोमल कोमल कलियाँ सब, माली के हाथो मे पहुँची,
केवल श्रृंगार बनी निर्मम, किन काले माथों मे पहुँची,
आधार तुम्हारे जीवन का, छिन जाने से क्यों गत प्रकाश ।।

यह दर्द तुम्हारे क्रन्दन का, मुझको क्यों घायल करता है,
मेरे सपनों की सीमा को, जाने क्यों ओछी करता है,
पर जीना है काफी दिन तक, देखो दुनियाँ का ही विलास ।।

मुझ को देखो जाने कितनी, ललियाँ नित आती जाती हैं,
वे मेरे रो पड़ने से क्यों, रँगरलियाँ रोज मनाती है,
थोड़े से क्षण को विरही बन, होते हो तुम इतने निराश ।।

(६३)

मैं झकोरे सह चुका हूँ ।।
एक परवाना शमा पर, जान देकर बीत जाता,
एक क्षण में काल उसके, सब सुखों को जीत जाता,
आग रखकर सामने मैं, तो युगों तक दह चुका हूँ ।।

वेदना से हूक उठती; जब विभोरी- कामिनी में,
केश उड़ते वेग से, जब नींद लगती यामिनी में,
तव अलौकिक प्रेयसी की, कल्पना मे बह चुका हूँ ।।
ट्रेन में बैठा मुसाफिर, ज्यों शयन को चाहता है,
बाट त्योंही जोह कर, अब तो प्रणय, फल चाहता है,
चॉद से मै भी बहुत कुछ, रे चकोरे ! कह चुका हूँ ।।

(६४)

रे बहाना क्या बनाऊँ ?
कौन सी बुलबुल हृदय में, रात दिन रहती मिलन में,
राग कैसा मूक मन मे, रोज गुल खिलता चमन में,
दूसरों के पास जाकर, आशियाना क्या बनाऊँ ?
ये महाकवि हाय कितने, गीत नव नव नित्य गाते,
अश्रु बह बह कर दृगों से, नित कपोलों को सुनाते,
पर यहाँ फुर्सत किसे है, रे फसाना क्या सुनाऊँ ?
मौन रहने के अलावा, सूझता ही है न कुछ भी,
आह के अतिरिक्त उर में, गूँजता ही है न कुछ भी,
खुद निशाना बन चुका हूँ, रे निशाना क्या बनाऊँ ।।

(६५)

वह हँसी तेरी निराली ।
सुन चुका हूँ मै बहुत सी, रमणियों के हास मीठे,
पास भी आए अनेकों, प्रेम के उच्छ्वास मीठे,
पर न आई थी हृदय में, यह खुशी, ऐसी दिवाली ।।

यह नही थी सैकड़ों के, अँचलों को ओट मे भी,
मधुरतम मदिरावती के, होठ में, दृग-चोट में भी,
कौन सा अमृत भरा है, कुछ बता दे, आज आली ।।

एक तेरे हास में ही, काव्य सब बिखरा पढ़ा है,
एक तेरे रूप में ही, रूप सब निखरा पड़ा है,
बन रहे है गीत खुद हो, लेखनी कब थी सँभाली ।।

(६६)

मै कहूँगा जिन्दगी भर, तुम अगर कहती रहोगी ?

दूर रहना तो हमारा, पास रहने का बहाना,
जान कर ही चूक जाना, तो सदा नूतन निशाना,
मै लखूँगा जिन्दगी भर, तुम अगर लखती रहोगी ।।

उत्तरी ध्रुव, दक्षिणी ध्रुव, हम मिले ही रह सकेंगे,
घूम कर भी रात दिन, हम बिन हिले ही रह सकेंगे,
मै बसूँगा ज़िन्दगी भर, तुम अगर बसती रहोगी ।।

आज लो सन्देश देने, भावनाएँ फिर मुड़ी है,
शक्ति पाकर सूर्य से, जैसे अबाबीलें उड़ी हैं,
मैं उड़ूँगा जिन्दगी भर, तुम अगर उड़ती रहोगी ।।

(६७)

ये बसन्ती फूल खिलते ।

डालियों की गोद में बैठे कहाँ खिलते अरे ये,
रमणियों के केश पर औ भेष पर हिलते अरे ये,
और मेरे कोट पर भी, तो कभी अत्यन्त हिलते ।।

प्रेमियों की प्रेम-शय्या, पर विहँसते है कभी ये,
मौन कवियों के हृदय मे, खूब चुभते ह कभी ये,
और मेरी आह से भी, सेज पर हर रोज पिलते ।।

इन बहारों ने विहारो, को बहुत कुछ है बढ़ाया,
इन अनारों ने अरे, मेरे अँगारों को पढ़ाया,
एक मै ही हूँ अकेला, रे कलिन्दी-कूल मिलते ।।

(६८)

सजनि, अब मधुमास आया ।

मुक्त हो बहुमूल्य कुसुमों, के परागों से मिलन को,
मलय झोकों से प्रकम्पित, मंजरी के प्रस्फुटन को,
विहग-वृन्दों से विदित, ऋतुराज सजधज पास आया ।।

हर चमन में फूल खिल खिल कर खुशी से फूल उठते,
रम्य गुलशन की लचीली, डालियों पर झूल उठते,
बुलबुलों ने अब गुलों मे, प्रेम का आभास पाया ।।

मन्द मन्द सुगन्ध पा, अलि पुंज गुंजन कर रहा है,
लघु विचुम्बित मृदुल कजों, संग नर्तन कर रहा है,
मत्त मधुपों ने सरोवर, में प्रणय-आवास पाया ।।

पर तुम्हारी याद मे, मैं सूखकर जर्जर हुआ हूँ,
थक चले अब अश्रु मेरे, शुष्क सा निर्झर हुआ हूँ,
मै बना पतझड़ सरस, कैसा तुम्हारा हास आया ।।

दूर से आता थका सा, हा प्रभंजन बह रहा है,
व्यथित कितनों के सँदेसे, मौन स्वर से कह रहा है,
फिर रुलाने को हृदय में, आज क्यों उल्लास आया ।।

आह से नित फूँक कर, मैंने विरह ज्वाला जलाई,
नित्य जलते देखकर भी, तुम न मेरे पास आई,
मृत्यु ने भी क्यों अभी तक, रे नही अवकाश पाया ।।

(६९)

आज क्यों अरमान उठते ?

नित्य बहकाए गए जो, क्रूर वे अब तक बनें थे,
प्रेम की मकरंद से भी, दूर वे अब तक ,बने थे,
जो सदा निष्प्राण रहते, आज वे पाषाण उठते ।।

लाख हो, पर ये भला, अहसान को कैसे भुला दे,
वारुणी जिसने भरी है, रे उसे कैसे भुला दें,
छा रहे जो रग रगों मे, आज वे मधुपान उठते ।।

आज उसके हित हृदय मे, रीझते सम्मान उठते,
कंठ में भर भर स्वयं ही, रूप के गुण-गान उठते,
ये हमारी प्रेयसी के, रूप के वरदान उठते ।।

(७०)

गीत लहराता गगन में ।।

स्वर्ण किरणों से लिपट कर, अंगना-पट सा उचट कर,
प्रात में जैसे गरुड़-ध्वज, पीत फहराता पवन में ।।

स्वप्न ज्यों छाता शयन में, मग्न ज्यों आता अयन में,
सनसनाहट ज्यों सयन मे, मीत मुसकाता बयन में ।।

पीर से परिपूर्ण तन में, नीर युत निर्झर नयन में,
हर्ष बढ़ता मौन मन में, प्रीत फैलाता बदन में ।।

गीत गाते चाँद तारे, मेदिनी नक्षत्र सारे,
घूमते ज्यों ज्यों गगन में, गीत लहराता पवन में ।।

(७१)

क्या कही साकार है तू ?

झनझनाती जा रही, तूफान की झंकार के सँग,
ठनठनाती जा रही, अरमान की टंकार के सँग,
प्रेयसी, इस विश्व मे क्या प्रेम का संचार है तू ?

ये सितारे, ये बगीचे, हँस रहे मुस्कान के सँग,
तार उठते, हार उठते, एक तेरी शान के संग,
मिल न पाया जो अभी तक, नित नया उपहार है तू ।।

देखता हूँ रोज फिर भी, हा न तुझको देख पाया,
एक ही सब ओर है लेकिन न तुझको एक पाया,
सच बता मेरे अलावा, क्या किसी का प्यार है तू ?

(७२)

साधना, अपनी जगालूँ ।।

ध्वस-सृष्टी से जला हूँ, रोकने निज को चला हूँ,
शून्य धरती पर प्रणय से, प्रेयसी अपनी बना लूँ ।।
प्रेयसी का प्यार मेरा, ही सदा संसार मेरा,
भावना अति शुद्ध लेकर, वासना अपनी बुझा लूँ ।।
शोक में, आलोक मे भी, लोक मे, परलोक में भी,
मैं अमर होने सदा को, दीप अन्तर के जला लूँ ।।

(७३)

मैं गीत बनाता जाऊँगा ।

मेरे आँसू से ओसों सी, आभा दुनियाँ में दमकेगी,
मेरे बोसों से कोसों तक, अधरों पर नरमी चमकेगी,
मदिरा मथकर मैं अमृतमय, नवनीत बनाता जाऊँगा ।।

क्या इतने रोने धोने से, भी मीत नही बन सकते हैं,
क्या मानवता की चोटों से, भयभीत नहीं बन सकते हैं,
उत्तीर्ण बनूँ जग में न कभी, पर रीत बनाता जाऊँगा ।

ताली पीटो या मत पीटो, शक्ती मुझको मिलती रहती,
अपने से, प्रिय से, कोई से, पीड़ा मेरी पलती रहती,
प्रोत्साहन पाने को प्रतिदिन, मैं प्रीत लगाता जाऊँगा ।।

(७४)

कैसे प्रिय तक मैं जा पाऊँ ?

अम्बुधि छाए हैं अम्बर मे, इत उत मँडराते रहते है,
उस चन्द्र-वदनि के चुम्बन को, चक्कर ये खाते रहते है,
मै वायूयानों में उड़कर, कैसे जाकर मुस्का पाऊँ ।।

सारी दुनियाँ सोती रहती, वह वीणा लेकर रोती है,
बारह बजते ही ऊपर से, आँसू की वर्षा होती है,
कलहंसी के स्वर को सुख दे, यह बेकल दिल बहला पाऊँ ।।

इस नीले नीले सागर में, हम दोनों ही नय्या खेवें,
इन चमचम करते तारों की, कोमलतम शय्या कर लेवें,
मैं भी अपने मादक-स्वर से, उस उत्कंठित सँग गा पाऊँ ।।

(७५)

मौन है भाषा हमारी ।।

तीर पर बैठे हुए चकवे अरे फिर बोलते हैं,
नीर पर छाए कमल, मधुकर निरख दृग खोलते हैं,
किन्तु दूँ क्या नाम प्रिय को, मौन परिभाषा हमारी ।।

मैं जिसे पहचान कर अब तक नहीं पहचान पाया,
रूप का गुणगान कर जिसका न अब तक गान पाया,
आश में ही जो छिपी वह, कौन अभिलाषा हमारी ।।

देह से मैं नित्य उठकर, अचल पर आसन जमाता,
आत्म-बल से सुरपती का, रोज सिंहासन हिलाता,
किन्तु कैसी मेनका से, रो रही आशा हमारी ॥

(७६)

चन्द्र किरणें गिर रही हैं ॥
ये सदा अमृतमयी नित श्वास देती ही रही है,
कवि-हृदय का उच्चतम, आकाश लेती ही रही हैं,
आज उर के सिंधु की सब, उर्मियों पर तिर रही है ॥
ज्यों अनोखा नृत्य करतीं, गीत के स्वर की तरंगें,
संकुचित होती प्रणय में, प्रथम प्रिय की ज्यों उमंगें,
नयन में कुछ भूलती सी, मस्त होकर फिर रही हैं ॥
आज मेरी प्रेयसी के, रूप की क्रीड़ा निखरती,
क्यों स्वतः ही मधुरता ले, दिव्य सी आभा बिखरती,
पवन से हिल, पीन पट की, बदलियाँ भी घिर रही है ॥

(७७)

पंछी ! अब तो पैर टिकाओ ॥
सूने नभ में उड़ते रहते, जैसे मैं वसुधा पर फिरता,
बादल से भी ऊपर उठते, जैसे मैं, जब दुख से घिरता,
लेकिन अपने मित्रों के सँग, रहने में भी मत शरमाओ ॥
रजनी आते ही बेचारे, तारे टूट टूट गिरते हैं,
पृथ्वी पर कितने मतवाले, प्यारे छूट छूट मरते हैं;
इस पीड़ा का पार कहाँ है, पर मत मरने से घबराओ ॥

ज्ञात नहीं है कोई ऐसा, साधन जिससे हम जी जाएँ,
रोटी पानी छोड़ सदा को, केवल मारुत को पी जाएँ,
अब तो अपना सारा चिन्तन, लाओ घरपर ही ले आओ ॥

(७८)

तारे आग लगाते आए ।

जब भी संध्या हो जाती है, तब ही ये घिरने लगते हैं,
विरही जन का जी तड़पाकर, नित पीछे फिरने लगते हैं,
चमकीले काँटों का कैसा, सुन्दर बाग लगाते आए ॥

इनका घेरा चन्दा को भी, नित नभ मे चक्कर दे जाता,
मानों कोई मेरी प्रिय को, मेरे ही उर से ले जाता,
जो कुछ भी थे टूटे फूटे, सारे भाग सुलाते आए ॥

ये तो अन्तर के छाले हैं, छाती पर छाए पककर जो,
ये सब मैंने ही पाले है, सिर पर चढ़ आए उठकर जो,
जीवन की निर्बलताओं पर, पक्का दाग लगाते आए ॥

(७९)

आज होली क्या मनाऊँ ?

मिल के बिछुड़े हैं हजारों, लोग होली पर बिचारे,
मैं मिलूँगा उस प्रिया से, जो मुझे नित ही सँवारे,
इस जगत में मान पाने, आज बोली क्या लगाऊँ ॥

झुक न पाया जो अभी तक, छू न पाया आँगने को,
रे भिखारी है अजब यह, जो न जाता माँगने को,
एक दिन के वास्ते फिर, आज झोली क्या बिछाऊँ ?

वार उर के क्रन्दनों के, झेलता हूँ बाहुओं से,
मैं अकेला बैठकर नित, खेलता हूँ आँसुओं से,
साथ कैसे दे सकोगे, आज टोली क्या बनाऊँ ?

(८०)

रे छिपाना ही न आया ॥

मैं न बुगला हो सका हूँ, श्यामता इतनी बढ़ी है,
इस निराशा की हृदय में, कालिमा इतनी कढ़ी है,
बोलता मैं आह भर कर, पर बुलाना ही न आया ॥

विश्व के ओछे तरीके, मै न कुछ भी मानता हूँ,
मैं कवी हूँ, मै मनुज हूँ, मोल अपना जानता हूँ,
बढ़ चुका इतना कलेजा, जी चुराना ही न आया ॥

विश्व को मैंने सुनाया, रोज हो अपना फसाना,
पर सिखाया ही नही, कोई कभी करना बहाना,
जल रहा इतना अधिक, मुझको जलाना ही न आया ॥

(८१)

आज क्यों मधुमास रूठा ।

याद करती थी सदा से, आज भूली जा रही है,
मान से, मधुमास सी वह, क्रूर फूली जा रही है,
गन्ध पाकर भी भ्रमर का, प्रेम मय आवास टूटा ॥

डाल पर बैठी अभी तो, खेल करती थी अरे वो,
रे इसी मधुमास से तो, मेल करती थी अरे वो,
चिन्ह मिलकर ही रहे क्यों, चरण का आभास छूटा ॥

कौन रूठा है मुझे कुछ, ज्ञात हो होने न पाया,
मास, मधुकर, मंजरी का, भेद कुछ लगने न पाया,
हाय अपना यह परस्पर, आज क्यों विश्वास टूटा ?

(८२)

आज मेरा बोल रूठा ।।

सोचते ही सोचते अफसोस इतना बढ़ गया है,
नोचते ही नोचते दिल को, नशा सा चढ़ गया है,
वेदना औ हर्ष का अब तक समन्वित तोल छूटा ।।

धूल ज्यों उठ कर सड़क की, बैठती है शाम को नित,
मूक मेरी आतमा भी, ले रही थी नाम को नित,
हाय अपनेआप मेरा, क्यों हृदय अनमोल टूटा ।।

वेग से बहती रही थीं, मस्त दिन भर तो हवाएँ,
रात होते ही अँधेरे, मे छिपी चारों दिशाएँ,
लोल लहरों का जलाशय, मे अरे कल्लोल रूठा ।।

(८३)

आज अपने प्राण देऊँ ।।

चरम सीमा सहन करने की, दुखो को, आ चुकी है,
अब निराशा की घटा मुझ पर उमड़ कर छा चुकी है,
तुम गिरो अब चंचला बन, मैं तड़प कर जान देऊँ ।।

याद भी मेरी कभी तुम को न सपने मे सताए,
राट चिता पर फेंक देना, चिन्ह कोई बच न पाए,
और जो बाकी रहा वह, सब तुम्हें सामान देऊँ ।।

भावना लिख लिख प्रणय की, नित तुम्हें प्रतिपल जिलाया,
इस तुम्हारे रूप पर, हो मुग्ध, अपने को रुलाया,
आज अपने खून से, पीयूष सा मधु-पान देऊँ ॥

तुम किसी भी ओर देखो, मै नही अफसोस करता,
आज मिटने का प्रलोभन, बस मुझे बेहोश करता,
तुम लखो मत भूल कर, पर मैं तुम्हे सम्मान देऊँ ॥

नित्य रूठीं खूब मुझ से, अब सुखी बन कर रहोगी,
करुण मेरी मृत्य से तुम, नित अमर होकर रहोगी,
शाप तुम देती रहो लो, मै तुम्हें वरदान देऊँ ॥

(८४)

पापी ! त्रिशूल को अब सँभाल ॥

मै हार गया लड़ते लड़ते, आजीवन तुझ से हँस हँस कर,
अब शिथिल हुआ हूँ तुझको नित अपने हाथों से कस कसकर,
मेरी हा एक न चल पाई, कर चुका सभी अपने कमाल ॥

ले अपना वक्षस्थल तेरे, आगे चौड़ा कर देता हूँ,
तेरे पौरुष को उकसाने, ले फिर थोड़ा हँस देता हूँ,
बजने दे अपनी क्रूर ताल, करले अब आँखें लाल लाल ॥

मेरे सिर को लटका लेना, लम्बी कर अपनी मुण्डमाल,
तेरे ताण्डव से गूँज उठे, मेरा भी छोटा सा कपाल,
तुझ से जीता है कौन अरे, एरे हत्यारे महाकाल ॥

(८५)

आज क्यों पाषाण रोते ।

रे असंख्यों वर्ष में जाकर कही ये कुछ बने हैं,
पर प्रलय संभावना से, फिर बिचारे अनमने हैं,
आज अपने आँसुओं से, शान्ति के अरमान धोते ॥

सृष्टि के सब दानवों ने, जन्म क्या अब ही लिया है,
नाश करने सभ्यता का, मद्य क्या अब ही पिया है,
देख कर निर्माण इनके, रसिक के अरमान सोते ॥

हाय सदियों के सिखाए, प्रेम को नर तोड़ देंगे,
ध्वंस कर सारी धरा को, क्या मनुजता छोड़ देंगे,
नित्य हाहाकार सुनकर, आज कवि के गान रोते ॥

(८६)

मुझ को जीने की चाह नही ।
खंजर मेरे वक्षस्थल में, कितने वर्षों से लगे हुए,
कितने गहरे अवसाद अरे, मेरे हर्षों में दबे हुए,
फिर भी मेरे इस जीवन में कोई निकलेगी आह नही ॥

कोई चाहे तो अभी अभी, मुझको कष्टों से मुक्त करे,
मेरे उस बिछुड़ी प्रेयसि से, मुझको फिर से संयुक्त करे,
मैं उत्सुक फाँसी पर चढ़ने, दम घुटने की परवाह नहीं ॥

मेरे दुख का झरना आँसू, बन बन झरता रहता है क्या,
जल चुकने पर भी परवाना, रो रो जीवित रहता है क्या,
मेरी भौतिक पीड़ाओं का, कैसे आता कुछ थाह नहीं ॥

(८७)

मैं देखूँगा जब तू रोवे ॥

हँसती ही रहती है मुझ पर, मेरे रोने को उकसाकर,
पलती ही रहती है मुझमें, अपनी चितवन से तड़पाकर,
अब मैं भी हँस पाऊँगा जब, मेरे जैसी कातर होवे ॥

तेरे अन्तर में पीड़ा का, मृदुहास कहाँ छा पाया है,
मै आने की तब सोचूँगा, निश्वास कहाँ आ पाया है,
मलयानिल बहती रातों मे, रोती जागे, रोती सोवे ।।

रोते रोते नित बरसो से, रे क्रूर बनाया है मुझको,
तेरे उर मे शोले रखने, मजबूर बनाया है मुझको,
प्रायश्चित होगा आँसू से, अपराधों को जब तू धोवे ।।

(८८)

यह प्रलोभन आज कैसा ?

आज तो नारी हृदय पाषाण बनता जा रहा है,
दास बन कर द्रव्य का, निष्प्राण बनता जा रहा है,
दूर हटने को सदा को, क्रुद्ध यौवन आज कैसा ।।

जानता नस नस, वही, नजरें चुराना चाहती है,
आज मुझसे ज्योत्स्ना, विधु को छुपाना चाहती है,
देखता सब सृष्टि, कवि से, हाय गोपन आज कैसा ।।

कामना के हेतु रे, कवि–हृदय क्या क्या लिख गया रे,
तुच्छ कर्मों के लिए मजदूर बनकर बिक गया रे,
तोड़ दूँ क्या लेखनी भी, यह प्रकोपन आज कैसा ?

(८९)

लो तुम्हें परदेस भेजूँ ।।

तब मुझे विह्वल बनाने, का मजा पाकर रहोगी,
भूल कर मुझको सताने, की सज़ा पाकर रहोगी,
यातना देने पथिक सी, दे प्रणय की ठेस भेजूँ ।।

बैठकर घर मे तुम्हें मेरी व्यथा का ध्यान क्या है,
तुम यहाँ सुख से पली हो, वेदना का ज्ञान क्या है,
मैं भटकता हूँ जहाँ तुम को न क्यो उस देश भेजूँ ॥

पैर मे फटती बिवाँई, तो मुझे पहचान पाती,
रात जब कटती वनों में, और सब सुनसान पातीं,
तब बुलातीं नित्य रो रो, पर न मै सन्देश भेजूँ ॥

(९०)

ओ युग युग से रूठी सजनी, अब तो पीडा पर ध्यान धरो ॥
दुनियाँ मनमाना जो कहती, वे ही क्या खंजर थोड़े हैं,
मेरे सपने टूटे पड़ते, अब तो मैने कर जोड़े है,
मेरा वक्षस्थल सूना है, अब तो तुम प्रेम-विहान करो ॥

मै मानव हूँ फिर पशुता ने, मुझको अब तक क्यों बहलाया,
तुम देवी हो जो यह धड़कन, का नूतन चिन्तन बतलाया,
मुझ मधु पीने वाले सँग लो, अब तो कुछ अमृत पान करो ॥

मैं भूला था जो वैभव से, पागल होकर तुम तक आया,
मै बेसुध था जो रोने के, बदले आकर निल मुस्काया,
धनियों को ठुकराने वाली, भिखमंगे का सम्मान करो ?

(९१)

शून्यता मैंने न मानी ॥

विश्व सारा प्रेयसी के, रूप से भरपूर रहता,
देख पाऊँ या न देखूँ, नाश से नित दूर रहता,
एक कण कण भी अमर है सृष्टि ही मैंने बखानी ॥

काल के तो लात मारूँगा, किसी दिन जीतते ही,
किन्तु रावण क्यों बनूँगा, मै समाधी बीतते ही,
मनुज हूँ, देवत्व पाने, की हृदय ने आज ठानी ॥

मन्त्र हो या यन्त्र हो, जिससे अमर होऊँ सदा को,
देह परिवर्तन जगत मे, कर सकूँ मैं ही सदा को,
कौन सी वह साधना है, हाय अब तक भी न जानी ॥

(६२)

आज फिर से गीत गालूँ ।

नियति से घातक प्रघारों, से बना मृतप्राय सा जो,
दुसह दुख की क्रूर मारों, से हुआ आसहाय सा जो,
आज फिर उर से निकलता, मूक वह सगीत गालूँ ॥

दूर मुझ से जा चुका था, वह परम सुख पास आया,
जो मुझे ठुकरा चुका, उसने मुझे उर से लगाया,
मुझ विकल को फिर हँसने, आज रूठा मीत पालूँ ॥

चिर तृषित मम अश्रुकरण को, तृप्त कर जिसने मिटाया,
प्रबल आश्रित विरह ज्वर को, शान्त कर जिसने हटाया,
मैं उसी विपरीत अरि से, स्वर्ग सारा जीत डालूँ ॥

(६३)

आज सब कुछ जीत पाया ॥

जो रुलाती थी मुझे नित, प्राण हो निष्प्राण बनकर,
जो सताती थी हृदय के, कोरकों में बाण बनकर,
आज उसमें ही नया अनुपम सरस संगीत पाया ॥

विश्व की सारी प्रकृति को, मे सुखद सपना समझता,
सृष्टि के आरम्भ से ही, मै सभी अपना समझता,
आज उसने भी कवी मे, एक सच्चा मीत पाया ।।
कवि बिचारा आज तक तो, भाट बनकर माँगता था,
रे तपस्वी तीन टुकड़े, हाट में नित माँगता था,
आज वह युग, वह अँधेरा, सर्वदा को बीत पाया ।।

(६४)

आज कितना थक गया मै ।

अश्रु जितने बह चले हैं, लेखनी कैसे बटोरे,
स्वर्ग–सुषमा अस्थि-निर्मित, कर कहाँ तक रोज चोरे,
लोग कहते पागलों सा, आज कितना बक गया मैं ।।
पठ्य औ प्रक्षिप्त विषयों, को सदा वे ही बताते,
गुलगुले जो खाँयँ, गुड़ से दूर रहने की सुनाते,
देह चाहे टूट जाए, दिव्यता से ढक गया मैं ।।
सृष्टि चाहे रूठ जाए, अब अमर हूँ पक गया मैं,
विश्व भूला, प्रेम-मधु से, आज कितना छक गया मैं,
ब्रह्म में अदृश्य थी जो, आज सजनी तक गया मै ।।

(६५)

आज तो प्रिय आ रही है ।

मन्द है कुछ पौन भी क्यों, बन्द अलि कुछ मौन भी क्यों,
क्या इन्हें पदचाप की, चुपचाप आहट आ रही है ।।
आज ये सब दास दासी, आज ये आकाशवासी,
देखने को क्या छिपे हैं, चाँदनी शरमा रही है ।।
रे हटो मृगशावको तुम, वह नयनिका, बालको तुम,
पल्लवित मेरे हृदय में, भी वही मुस्का रही है ।।

(९६)

✓ आज मेरा मधु मिलन है ।

थी प्रतीक्षा नित युगों से, मैं न सोया था अभी तक,
रूप के आलोक में निज को, न खोया था अभी तक,
आज पहली नींद के ही, साथ यह अन्तिम शयन है ।।

अब न जागूँगा विरह का, भार लेकर मैं धरा पर,
अब न तड़पूँगा किसी का, प्यार लेकर दिल चुरा कर,
आज का अवसान ही मेरा, सदा के हित गमन है ।।

मैं दुखी था नित्य पतझड़, के तमालों सा बिलख कर,
प्रेयसी अब मिल चुकी है, यह युगों की जलन लखकर,
अब वसन्ती फूल का ही, अहर्निश सुन्दर चयन है ।।

(९७)

आज तो सम्मान कर ले ।।

रोज दुतकारा मुझे, तूने प्रणय अज्ञान कहकर,
छोड़ कर जाना पड़ा, मुझको तुझे, अपमान सहकर,
आज तो मैं ज्ञातयौवन, मुझ दुखी पर ध्यान धरले ।।

मैं विवश लखने लगा, इस विश्व की निर्जल घटा को,
पर विरह से लौट आया, याद कर तेरी छटा को,
आज बस उन्मादिनी सी, तू अरे मुस्कान भर ले ।।

प्रस्फटित होकर स्वत, क्यों मूक मेरे गान उठते,
ले तुझे बरबस रिझाने, व्यस्त ये परिधान उठते,
तुझ थके प्यासे पथिक सँग, आज तो मधु-पान कर ले ।।

(६८)

मुझ से जो कुछ भूल हुई, वह यौवन का शृंगार बन गई ॥

सुख की गलियों मे जाने को, मै उत्कंठित सा रहता था,
भावों की सावन झड़ियो से, मैं स्पन्दित सा रहता था,
सज्जनता ही हा शूल हुई, मेरे आगे दीवार बन गई ॥

मैंने यौवन से उत्तेजित, हो सज्जनता को ठुकराया,
रग रग से फूटी सी पड़ती, उच्छृंखलता को अपनाया,
मेरी सीमित उच्छृखलता, आगे चलकर अभिसार बनगई ॥

अब तक के जीवन में मैंने, पहले न कभी अभिसार छुए थे,
लज्जित, नूतन, चमकीले, मादक, न की किसीके तार छुए थे,
पर प्रिय इतनी मशगूल हुई, मन वीणा की झंकार बन गई ॥

आशा जो बिल्कुल धूल हुई, अब सपनों का ससार बन गई,
जो मंजु लता प्रतिकूल हुई, वह फिर तरु का शृंगार बन गई,
पीड़ा जितनी निर्मूल हुई, कवि के जग का विस्तार बन गई ॥

(६९)

सजनी आज न फिर सो जाना ॥

तुझे जगा पाया हूँ अब मै, तारों की मृदु झंकारों मे,
तुझे सजा पाया हूँ यौवन से, उभरे सब शृंगारों में,
युग युग की जगती निद्रा के, वश में कहीं न अब हो जाना ॥

यह मादक ऋतु उत्साहित, करती ही रहती है जलसों को,
इस वसन्त की सौरभ ने छू डाला मन्दिर के कलशों को,
तू अपनी सुरभित साँसों, मेरे उर में भी हो आना ॥

मेरी आशा खिल उठती है, नीर मिला हो ज्यों खेतों को,
जैसे बिजली जल उठती है, पाकर स्विच के सकेतों को,
तेरा चिन्तन मेरा जीवन, नित ही तू मुझ मे खो जाना ॥

(१००)

आज मेरे गान पूरे ॥

गीत गाने की जरूरत, भी नही अब तो रही है,
गीत रग रग में समाया, बाँसुरी बज तो रही है,
गीत रुक सकता नहीं यह, आज सब अरमान पूरे ॥

क्या प्रशंसा को सुनूँगा, क्या प्रसिद्धी को सुनूँगा,
क्या अधिक जग में बनूँगा, क्या प्रिय को अब चुनूँगा,
स्वर्ग से फुर्सत किसे है, काव्य के वरदान पूरे ॥

वारुणी जो थी हृदय में, अब सुधारस बन चुकी है,
सैकड़ों युग के लिये अब, तो इकट्ठी छन चुकी है,
तोड़ दो मधु के घटों को, आज सब मधुपान पूरे ॥

षष्ठ खण्ड

निर्झर

आमुख

'निर्झर, मेरी कविताओ का एक नया मोड है। मधुरतम कल्पनाओ में डूबने के बाद, विचारों मे कुछ परिवर्तन आया है जैसे देर तक एक ओर सोया हुआ व्यक्ति सजग हो कर दूसरी करवट लेता है। सपनों के मेलो से ऊब कर उसे ससार की याद आती है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हलचलो से प्रभावित होकर कवि समानता और शांति के लिए अग्रसर होता है यथा—

'तूफ़ानो ! रुकना ही होगा।

मै नही चाहता प्रलयकर नित नये गीत निर्माण करूँ,

मेरी दृढता सज्जनता से, तुम को भी झुकना ही होगा", और—

"मैं आग बुझाकर मानूँगा।"

मानव के दुखी हृदय को आश्वासन देकर वह कहता है:—

"मै गगन से पास तेरे, स्वर्ग लेकर आ रहा हूँ।"

यह सब कुछ होते हुए भी कवि अपने कल्पना-मन्दिर से विदा नही लेता। इधर उधर उड़ कर वह फिर अपने घोसले में चला आता है। प्रकृति से रूठना उसे पसन्द नही और नारी तो उसकी प्रत्येक भावना मे लिपटी हुई है:—

"जिसमे अन्तर्हित रहती हैं, जाने कितनी उत्कंठाएँ,

लडकीका रेशम काछाता।'

नारी के साथ अन्य वस्तुएं भी उसके अध्ययन से नही बचती, चाहे वे जड़ हो या चेतन। वास्तविकता का ज्ञान रहने पर भी कवि का आशावाद अन्त तक जीवित रहता है—

"नित अलस उषा मे झाकूँगा, तारो तारो मे ताकूँगा,

मेरे मरनेपर मत रोना॥"

दीपक

तुमने सब कच्ची झोपड़ियों, पर जुल्म बलाके ढाए हैं,
जाने कितने वन-उपवन से, सारे सुख साज उठाए हैं,
भलमनसी से अब निज गति को,परिवर्तित करना ही होगा ।।

मेरे बल को ललकारो मत, मेरा आक्रोश उभारो मत,
मेरा धीरज संहारो मत, मेरे तुम कक्ड़ मारो मत,
मुझ को बैठा ही रहने दो, वर्ना फिर मरना ही होगा ।।

मैं तोड़ फोड़ चट्टानों को दुनियाँ में आग लगा दूँगा,
सिर कुचल कुचल विद्रोही का, धरती पर प्रलय मचा दूँगा
बस एक बार उठ जाने पर, आगे पग धरना ही होगा ।।

यदि मेरे आँसू ढलक पड़े, मेघों से शोणित बरसेगा,
यदि मेरी ज्वाला बह निकली, जग सुख पाने को तरसेगा,
तब मेरी बाहों के आगे, तुमको भी मिटना ही होगा ।।

म नहीं चाहता प्रलयंकर, नित नये गीत निर्माण करूँ,
मैं नहीं चाहता युग युग से, भूखे मानव का प्राण हरूँ,
मेरी दृढ़ता, सज्जनता से, तुमको भी झुकना ही होगा ।।

(३)

साथी ! नित पथ पर बढ़ता चल !

पैरों को ठोकर खाने दे, थक चूर चूर हो जाने दे,
पर कायर सा बनकर रुक मत,उन्नत शिखरों पर चढ़ता चल।।

सूखे पत्ते उड़ते लखकर, लतिकाओं को झुकते लखकर,
विटपों को देख उखड़ते मत, डर कर निश्वासें भरता चल ।।

क्रोधित सरिता की लहरों सा, गरमी के जलते प्रहरों सा,
उत्तप्त हृदय के शोणित सा,तू प्रतिपल नित्य उमड़ता चल ।।

अपनी दृढ़ता निर्भयता से, जग ऊब चले निर्दयता से,
काँटे भी फूल बनेंगे तब, तू तूफानों से लड़ता चल ।।

(४)

मैं आग बुझा कर मानूँगा !

कुछ ऐसा भासित होता है, इस ज्वाला की गति चंचल से,
मानो जग को ढक बैठेगी, यह अपने लोहित अंचल से,
मैं ज्वाला पर ज्वालाओं से, अमृत बरसा कर मानूँगा ॥

ज्वाला को नित बढ़ते लखकर, उर ज्वालामुखी पिघल पड़ता,
दानवता की क्रीड़ाओं से, घायल हो उछल उछल पड़ता,
मैं भीतर तिल तिल जलकर भी, आवाज उठाकर मानूँगा ॥

पर यह वह ज्वालामुखी नही, जो प्रलय मचाकर सोएगा,
यह तो हिम गिरि सा पूर्ण शांत,जो आँसू बनाकर रोएगा,
सारी वसुधा जगमगा उठे, वह ज्योति जगाकर मानूँगा ॥

(५)

अब घायलों के बीच में, मुझ से हँसा जाता नहीं।

हर रोज बेसुध हो चुका, नित खूब पीकर खो चुका,
हर रात हँस कर सो चुका, हर स्वप्न मे नित रो चुका,
अब तो सवेरा हो चुका, मुझ से रहा जाता नही ॥

अब पायलों के बीच में, मन और भरमाता नहीं,
अब पागलों के बीच मे, मुझ को नशा आता नही,
युग की पुकारों से उठा, अब तो रुका जाता नही ॥

मेरी जवानी नित्य ही, तुम ने हँसा बरबाद की,
पर रो रही भूखी मही, मैंने कहाँ आबाद की,
हा विश्व के इन क्रन्दनों, को अब सुना जाता नही ॥

उठ हाथ में तलवार दो, साकी अरे मधु को तजो,
सब छोड़ दो शृंगार ये, बस युद्ध देवी सी सजो,
अब पीड़ितों पर मार को, मुझ से लखा जाता नहीं ।।

इन पायलों को तोड़ दो, ये शूल बन चुभते अरे,
मधु के घटों को फोड़ दो, ये घाव बन पकते अरे,
अब आहतों की आह को, मुझ से सहा जाता नहीं ।।

(६)

आज जीवन पा चुका हूँ !

नित्य के अनुसार मैं प्रातः भ्रमण को आज निकला,
चौंक कर पथ में रुका, जब पास में शव एक निकला,
आज मैं हत-भाग्य से, सौभाग्य को अपना चुका हूँ ।।

"सत्य" स्वर अब तक निनादित हो रहे मेरे हृदय में,
अस्त कोई क्यों हुआ हा, सूर्य के सुखकर उदय में,
आज जिस से मैं सुलझती, गुत्थियाँ उलझा चुका हूँ ।।

झिलमिलाते तारकों में, हाय किसकी श्वास निकली,
प्राणदायी यह मुझे अज्ञात किसकी लाश निकली,
देख जिसको सरल जीवन, में विषमता ला चुका हूँ ।।

प्रात की निष्प्राण वायू, खिन्न हो कर बह रही है,
नित्य मेरी अल्प आयू, भी प्रकम्पन सह रही है,
आज जीने की घड़ी में, मृत्यु का सुख पा चुका हूँ ।।

है मुझे भी शीघ्र मरना, तब समय नित क्यों गँवाऊँ,
क्यों नहीं संघर्षमय, जीवन अरे अपना बनाऊँ,
मृत्यु से गुरुमंत्र जीने का प्रथम बस पा चुका हूँ ।।

(७)

नीड से पछी उड़ा क्यों ?

नीड़ का निर्माण जब इतने, उपक्रम से किया था,
नित्य चुन चुन कर तृणों को, जब अथक श्रम से किया था,
छोड़ कर क्षण में उसे तब, अगम अम्बर में उड़ा क्यों ?

विकल तरु के शुष्क पत्ते, अश्रु से क्यों आज झरते,
बन्द कर 'मरमर' रुदन को, क्यों नहीं वे धैर्य धरते,
गेह से क्यों नेह तोड़ा, हाय खग आगे बढा क्यों ?

छोड़ते पक्षी विवश हो, नित जगत में नीड़ कितने,
किन्तु नूतन विहग पल भर, भी न बनते भीरु इतने,
मनुज होकर तब अरे मै, व्यर्थ चिन्ता में पड़ा क्यों ?

नीड़ा रीता देखकर कैसे शिथिल मेरी भुजाएँ,
नित्य नश्वरता निरखकर, सो गई क्यों कल्पनाएँ,
जीर्णता का शोक मुझ पर, तरुणता मे ही चढ़ा क्यों ?

(८)

परिवर्तन घातक भी कितना !

नित नये सुमन खिलते रहते, नित परिवर्तन होते रहते,
पर कितनी जल्दी मुरझाते, सत्वर मिट्टी में मिल जाते,
हा उनकी स्मृति आते ही, परिवर्तन पातक भी कितना ॥

नित ही तम पूर्ण निशा आती, खिल खिलकर कलियाँ मुरझातीं
जीवन में भी संध्या आती, हर ओर उदासी छा जाती,
यह ज्ञान अरे लघु मानव को, पीड़ा उत्पादक भी कितना ॥

दुख, सुख असीम मे अन्तर्हित, है इस जीवन में मरण निहित,
मेरा परिवर्तन भी निश्चित, तब व्यर्थ बनू मैं क्यों चिन्तित,
मैं प्रेरित इसी भावना से, यह मुझको मादक भी कितना ॥

परिवर्तन खूब समझता हूँ मै पुण्डरीक सा हँसता हूँ,
यद्यपि कीचड़ मे रहता हूँ, पर प्रतिदिन ऊपर उठता हूँ,
दुखदायी परिवर्तन मुझको, देखो सुख साधक भी कितना ।।

(९)

आज कम्पन हो रहा है।
क्रोध से यह साँस मेरी, आग सी सम्पूर्ण जलती,
देखकर जग की विमुखता, आज निगिन सी निकलती,
कौन दानव सा जगा है, जो प्रकम्पन हो रहा है ।।
आज अपना कार्य सारा, रे सदा को दूर कर दूँ,
लिख दिया अब तक विकल हो, क्यों न उसको चूर कर दूँ,
जगत के सब नियम का, उर में उलंघन हो रहा है ।।
गूँथती अनमोल गजरे, क्यों स्वतः ही भावनाएँ,
क्यों मचलती जब न मिलती, प्रिय कहीं, तब कामनाएँ,
हार अपने ही गले का, आज बन्धन हो रहा है ।।

(१०)

आज मैं फिर रो पड़ा हूँ ।।
हाय पगले लड़ रहे हैं, नाश करने मनुजता का,
स्वार्थ के घनघोर तम में, नृत्य करते दनुजता का,
यह भयंकर मोह लख कर, पुनः आकुल हो पड़ा हूँ ।।
हाय कितने आँसुओं से कापियाँ मैंने भरी हैं,
मूरखों को कुछ सिखाने, कोशिशें कितनी करी हैं,
खोपड़ा इन से पचाकर, आज धीरज खो पड़ा हूँ ।।

चाहता हूँ प्यार से इनको अँधेरे से निकालूँ,
सोचता हूँ क्यों वृथा तलवार से इनको सँभालूँ,
आज भूखों की कथाएँ, सुन तड़प कर रो पड़ा हूँ ॥

(११)

मै मानवता पर मरता हूँ।

सुख का साधन अवशेष यही, इसके पीछे मै पड़ा हुआ,
जब तक दम में दम है बाकी, मै अड़ा रहूँगा खड़ा हुआ,
मै चौडे धाड़े कहता हूं, मै नही किसी से डरता हूँ ॥

लोगों ने मुझ को फेंक दिया, आँखों से हा ओझल करने,
पत्थर बाँधा मेरे सिर पर, मुझको बरबस बोझल करने,
सब कहते यह तो डूब चला, पर मै दिन पर दिन तरता हूँ ॥

मै अब भी चिल्लाकर कहता, पत्थर फेंको मेरे ऊपर,
लेकिन जग और बिगाड़ो मत, ऊँची ऊँचो पशुताएँ कर,
मै जितना दबता जाता हूँ, उतना ही और उभरता हूँ।

(१२)

मैंने घटना कब जाना है ?

कविता जब तक मेरे सँग है, जीवित है तब तक तार तार,
मैं कभी न हारूँगा जग से, चाहे चिल्लाओ बार बार,
मैं बढ़-बढ़ कर गर्जन करता, पीछे हटना कब जाना है ॥

मैं प्रेम पपीहा बन बन कर, नित खुल-खुल कर हँसता रहता,
मैं कभी न बुगला भगतों सा, छिप-छिप झूठा सौदा करता,
मैंने पी पीकर प्रेम घूँट, पी पी ही रटना जाना है !!

रे कोई मेरी छाती से, थोडा टकरा कर तो देखे,
मेरे इन हाथों मे कोई, आकर बल खाकर तो देखे,
मै कहना सुनना क्या जानूँ, मैंने मर मिटना जाना है।

(१३)

आज क्यों पट खोलते हो ?
क्रूरता से मुझे ठुकरा, हुए पूर्ण विरुद्ध तुम ही,
दूर कर मुझको, अकेले रह, बने अवरुद्ध तुम ही,
ओ हृदय के देबता ! क्यों अब स्वयं ही बोलते हो ?
जिस समय मै क्षीण था, तब गर्त में तुमने गिराया,
शक्ति से सम्पन्न लख कैसे अनुग्रह अब दिखाया,
दीन बन कर क्यों दृगों में, अश्रु अपने घोलते हो !
याद रक्खो, मैं जितेन्द्रिय हूँ, नहीं तुम जीत सकते,
पर मनुज हूँ मैं अरे, तुम भी सुजनता सीख सकते,
क्षमा मेरा अस्त्र है, क्यों सलज भय से डोलते हो ?
मैं तुम्हें उर से लगा, लो फिर तुम्हारा मान करता,
क्षुब्ध कर जग मे किसी को, मैं नही अपमान करता,
उठो, रोओ नहीं दुख से, व्यर्थ अटपट बोलते हो ॥

(१४)

आदमीपन को भि मुझसे, ही सहारा मिल गया ॥
पाप का सागर उमड़ता, आज जग में हर जगह,
पार जाते देख मुझ को, एक हारा मिल गया ॥
रो रहा था एक तिनका, सिंधु में गलता हुआ,
साथ ले लेने से उस को, भी किनारा मिल गया ॥

देवताओं को बुलाने, मैं चला हूँ स्वर्ग में,
अर्दली सा पास में, मुझको पुकारा मिल गया ॥
कर सकेंगे पूर्ण मन्थन, देव-दानव मिल सभी,
लो मुझे अमृत पिलाने, को बिचारा मिल गया ॥

(१५)

लोग मुझ को मेदिनी के गीत गाना चाहते है,
मैं उमड़ते बादलों के साथ उड़ता जा रहा हूँ ॥
मैं युवक हूँ क्रान्ति युग का, क्राति फिर भी गौण मुझ मे,
आँधियां भीतर छिपी है, श्वास फिर भी मौन मुझ में,
विश्व जिस पथ पर खड़ा है, बस वहाँ आकाश होगा,
क्रान्तियाँ जगने लगी तो, हाय सत्यानाश होगा,
आज कलियुग के कवी ने, खजड़ी शिव की बजाई,
किन्तु वीणा वादिनी की, भैरवी मुझ को सुहाई,
क्रांतियों का ढोल लेकर, जो गरजते है बिचारे,
वे बरसना आज सीखे, शान्ति की खेती सँवारें,
लोग मेरे मेघ से बिजली गिरना चाहते हैं,
मैं हृदय में आग लेकर, भी बरसता जा रहा हूँ ॥
उठ अरे पथभ्रांत मानव, खेत अपना आज जो ले,
रे बरसता है अभी तो, प्रेम का तू बीज बोले,
क्रान्ति की चिनगारियों से, खेत तेरा जल उठेगा,
विश्व सारा जल उठेगा, व्योम सारा जल उठेगा,
देख तूने स्वर्ण की सी, दिव्य मानव देह पाई,
रोटियों का दास बन कर, उम्र सारी ही गँवाई,
प्राण पाकर देह में पाषाण तू बनने चला है,
उठ अरे भगवान् बन, शैतान क्यों बनने चला है,

तू धरा पर नर्क का, सामान मुझ से माँगता है,
मैं गगन से पास तेरे, स्वर्ग लेकर आरहा हूँ ॥

(१६)

मेरे मरने पर जानोगे !

किस किस से मैंने प्रेम किया, जग की बातों को ठुकराकर,
जग मुझको रोक नही पाया, सड़कों पर चिल्ला चिल्लाकर,
मेरे अगणित उन्मादो को, उन्मादी बन अनुमानोगे ॥

मिट्टीं के सँग सो जाने पर, हो तो मेरी उफ नकलेगी,
मरने पर उलझी दबी हुई, जीवन की गुपचुप निकलेगी,
मेरी कविता की गहराई, गहरे बनकर ही मानोगे ॥

मेरी भी यौवन की आँधी, ताँगों के पीछे चलती थी,
मेरी हर रोज थकी माँदी, लिप्सा भी खूब मचलती थी,
तुम भी तरुणाई पाकर ही, मेरा उद्वेग बखानोगे ॥

पर ये सारे सुख पाने को, मैंने कितने दुख पाए हैं,
अन्तर के जितने क्रंदन थे, हँस कर सम्पूर्ण छिपाए हैं,
मेरे हँसने की कसकों को, रोकर हँसकर पहचानोगे ॥

(१७)

ओ वर्षा की सँध्या लाली ॥

मेरे अन्तर की आभा सी, कितने दिन मे दिख पाई तू,
तेरा स्वागत जी भर करता, पर देर लगा क्यों आई तू,
सहसा घनघोर घटाओं में, क्यों आज मनाती दीवाली ॥

इन काले मेघों के भीतर, आखिर तू कब तक ठहरेगी,
तेरी यह विजय-पताका भी, पानी मे कब तक फहरेगी,
गिरने दे बिजली पृथ्वी पर, छिपजा, बनती क्यों मतवाली !

मानव को भी दानवता का, थोड़ा नर्तन कर लेने दे,
शंकर को भी प्रलयंकर बन, कुछ परिवर्तन कर लेने दे,
क्यों क्रोधित होकर करती है, लोहित अपनी आँखे काली ।।

(१८)

आज आँधी चल पड़ी है !

खेद है. उसको स्वयं भी, नाश कर देगी हमारा,
ध्वस करने से प्रथम यह, पाप उसने भी विचारा;
मूक अन्तर से निकलती, वेदना से जल पड़ी है ।।

दुष्ट लोगों के समाजों मे भले नर भी विचर कर,
मन्द करते मोल अपना, नीच सँग नीचे उतर कर,
आज रुक सकती नही, वह शाम से चचल खड़ी है ।।

वह विचारी क्या करे, जो दूसरों की दास रहती,
आततायी क्रूर मारुत, के हमेशा पास रहती,
वृहत् वृक्षों को गिराने, आज वह भी छल पड़ी है ।।

(१९)

मै जाकर आना क्या जानूँ ?

जिस घर से चला गया खाली, आजीवन उससे दूर रहूँ,
चाहे दाना दाना पाने, दर दर फिर कर मजबूर रहूँ,
जो रूठ चुका मुझ से उसके, आगे मुस्काना क्या जानूँ ?

बच्चों का खेल नही मुझ से, रस्ते चलते अनबन करना,
पदलोलुप पुरुषों सम बातों, बातों में ही अनशन करना,
मैं खुद भी मरता औरों पर, भी दया दिखाना क्याजानूँ ।।

चाहे तुम प्रेम करो न करो, मैं तो जैसा हूँ, वैसा हूँ,
मन में रो लो, चाहे हँस लो, मैं जीव विलक्षण कैसा हूँ,
बस एक बार उलझी गुत्थी, फिर से सुलझाना क्या जानूँ ?

(२०)

मुझ को मीनारों ने पकड़ा !
जब मैं कुछ ऊँचे भेद भरे, प्राचीन खण्डहर लख पाया,
मुझ में अतीत के चित्रों का, तब एक बवण्डर उठ आया,
युग युग से झेल रही वर्षा, इन सब दीवारों ने पकड़ा ।।
जी करता है इनमें रहकर, सिर फोड़ूँ इनसे टकराकर,
सारा जीवन बीत चले, इन वीरो को रो रोकर गाकर,
मौन स्वरों में गाथा कहते, इनके सत्कारों ने पकड़ा ।।
राजस्थानी पानी से भी, मुझ में ज्वार चढ़ा करता है,
रमणी औ तलवार देखकर, पौरुष, प्यार बढ़ा करता है,
भीतर भवनों के बसी हुई, सब की ललकारों ने पकड़ा ।।

(२१)

मेरी सखी को छोड़ दो, वर्ना लड़ाई है अटल ।।
ये प्रेम के सौदे सभी, सस्ते न होते हैं कभी,
यदि बीच में काँटे बने, तो प्राण फँसते हैं अभी,
अब भी इरादे मोड़ दो, तोड़ो हवाई ये महल ।।
मैं चूर कर दूँगा तुम्हें; पल में मिलोगे कीच में,
आए अगर हाथों तले, दाधीच वज्रों बीच में,
सब नीचता रह जायगी, तुम हो नहीं सकते सफल ।।

क्यों आग से तुम खेलते, क्या भस्म होना चाहते,
यह फाग खूनो खेल कर, क्या मुक्त होना चाहते,
अपना सँभालो रास्ता, क्यों हो रहे इतने विकल ।।

(२२)

मेरे किसने पत्थर मारे ?

समझा कोई ने मुझ को भी, सड़कों पर फिरता दीवाना,
समझा कोई ने मुझको भी, केवल जलता ही परवाना,
मैं आग लगा दूँगा सब के, क्या बैठे हैं तत्पर सारे ।।

पूछो मत मेरी तलवारों, का पानी कितना भारी है,
पहले तो मेरी लेखनी से, हो लड़ने की तैय्यारी है,
मैंने बातों हो बातों में, जाने कितने भू पर मारे ।।

मुझ को बन्धन में रहने दो, तोड़ो मत मेरी माला को,
अम्बर तक भी जल जाएगा, छीनो मत मेरी हाला को,
पीता हो रहने दो मुझको, मेरे किसने कंकर मारे ?

(२३)

साजन ! आज न होली खेलो !!

जीवन तो बीता जाता है, ज्यों ज्यों फिर फागुन आता है,
पीसे को क्या पीसें फिर फिर अब तुम वैभव में मत खेलो ।।

आज नया मजमून बढ़ा है, आज मनुज का खून चढ़ा है,
जाकर उन खूनी हाथों से, उनकी तलवारों को ले लो ।।

चाहे जितना मैं रो लूँगी, आँसू से यौवन धो लूँगी,
जिस झोली सँग, गौतम डोले, तुम भी वो ही झोली झेलो ।।

(२४)

अब भी यदि पथ पर आ जाऊँ !!

मेरा अब तक बिगडा क्या है जीवित हूँ साँसे लेता हूँ,
मैं क्यों यौवन-कर्मो मे ही, फँसकर निश्वासें लेता हूँ,
मै चाहूँ तो ऊपर उठकर, दुनियाँ की छत पर छा जाऊँ ॥

सब ढेर जला सकती तृण का, कितनी ही लघु चिनगारी हो,
अब भी मुझ में दम बाकी है अब तो बढने की बारी हो,
मै छा जाऊँ सब के ऊपर, यदि इति से अथ पर आ जाऊँ ॥

पर कोई ऐसा साथी हो, जो मेरे सँग चल सकता हो,
मेरे चकरा जाने पर जो, मुझको भी ले चल सकता हो,
अश्वों के संचालक राजा नल के से रथ पर आ जाऊँ ॥

(२५)

सारथि ! अश्वों को मत रोको !

दुनियाँ चाहे जो कुछ कहती मैंने बातें कब मानी है,
रे चाँद चकोरे मिलते हैं, नभ की दूरी कब जानी है,
तारों में होकर जाने दो, मत तुम अरमानों को ठोको ॥

पृथ्वी पर देखो यह कैसा, कुहराम मचाया है सब ने,
देवासुर के इन झगड़ों से, आराम हटाया है सब ने,
मुझ को मानव बनने भी दो, बस समझाने से मत टोको ॥

गीला रहते रहते बरसों, मेरा उर भी गरमाया है,
निर्धन की आहों से मेरे जलने का मौसम आया है,
मै मानवता पर जलता हूँ, अब मर मिटने से मत रोको ।

(२६)

बलिदान कही रुकते है क्या ?

मर जाना है मुझको जग मे, मानवता को जिन्दा करने,
चिल्लाने वालों को जी भर, आहों से शरमिन्दा करने,
तब जाना है प्रिय तक नभ में, महमान कही रुकते है क्या ?

गा ही लूँगा मरते दम तक, देखूँ अब कौन मना करता,
पा ही लूँगा मदिरा मै तो, जिससे सुर लोक बना करता,
मर कर मैं लुक ही जाऊँगा, अरमान कही लुकते है क्या ?

लो मेरी आज चुनौती यह, सबको अपना कर मानूँगा,
चाहे तुम सारे मुँह फेरो, मैं गीत सुनाकर मानूँगा,
पृथ्वी हो, प्रिय हो, कोई हो, कवि-गान कहीं झुकते है क्या ?

(२७)

पीड़ा ही मेरा प्यार बनी ।

पहले सजनी तँग करती थी, मेरी निद्रा भँग करती थी,
यह कड़वी भेषज तो मुझ मे, नव जीवन का संचार बनी ॥

अच्छा है कुछ तो हैं सँग में, स्पन्दन होता है ढँग में,
मै तो लुटता ही जाता था, यह आजीवन शृंगार बनी ॥

आगे बढ़ता ही जाऊँगा, ऊपर चढ़ता ही जाऊँगा,
अम्बर तक ले जाने वाली, यह तो अदभुत मीनार बनी ॥

(२८)

मे चलूँगा कण्टकों में, साथ में कोई न आए ॥

चल रहा जिस ओर हूँ मैं, क्या भला तुम चल सकोगे,
तल रहा जितना स्वयं को, तुम भला क्या तल सकोगे,
साधना मेरी प्रबल है, माथ कोई क्यों नमाए ?

नाम ले निज प्रेयसी का, मर्द जिस पर चल चुके हैं,
ग्राह् से जिसको हँसा कर, दर्द दिल में भर चुके हैं,
खेलता जाऊँ व्यथा से, रात में कोई न ग्राए ।।

जान सकते हो कहाँ तक, गूढतम मेरी कथा है,
रे मुझे कुछ रोकने की, कोशिशें करना वृथा है,
तोड़ दूँगा बन्धनों को, हाथ में कोई न ग्राए ।

(२६)

पात्र कैसे गिर गया रे ?

सोच कर इतने दिनों तक, ब्रह्म ने जिसको बनाया,
पोस कर इतने युगों तक, विष्णु ने जिसको सजाया,
ग्राज वह मानव, ग्रसुर बन, पाप से क्यों घिर गया रे ।।

क्यों ग्रभी से ताण्डवों की, चेष्टाएँ हो रही हैं,
क्यों ग्रभी से पशुपती की, ये क्रियाएँ हो रही हैं,
वह किधर उल्लास का, ग्रपना प्रणय-मन्दिर गया रे ।।

मेदिनी मेरी झुकी तो, रे किसे मैं छोड़ दूँगा,
इस घमण्डी ग्रासमाँ को, तोड़ दूँगा, फोड़ दूँगा,
ग्राज किस उद्वेग से, ब्रह्माण्ड सारा फिर गया रे ।।

(३०)

क्या विवशता ग्रा रही है ?

बन्धनों में जा रहा हूँ, जकड़ता दिन रात कैसे,
ग्रजगरों के श्वास से खिंच, पाश में हो ग्रास जैसे,
विश्व के ऊपर विजय की, ग्रास फिर भी छा रही है ।।

मैं अकेला, विश्व सारा, तोलने मुझको चला है,
मोल कर मेरी व्यथा का, बोलने मुझसे चला है,
आज फिर मेरी मनुजता, क्या पराजय पा रही है ?

दीप्ति मुझ में दिव्यता ले, दमदमाती जा रही है,
कौन देवी की प्रभा से, चमचमाती जा रही है,
मान लूँ कैसे अरे मैं, ज्योति मेरी जा रही है ।।

(३१)

याद हैं अहसान सारे !

दर्द जिन जिन ने दिया है, कल्पना को प्राण देने,
बाण जिन जिन ने कसे हैं, लोक में सम्मान देने,
आज जिन से कवि बना हूँ, याद हैं कल्याण सारे ।।

नित रुलाया उन सभी के, साथ मुस्काता रहूँगा,
नित उन्हें सुख साधनों के, पास ले जाता रहूँगा,
आज जो मधुपान बनते, याद हैं विष-पान सारे ।।

लो उन्हें सुर पुर बुला लूँ, एक प्याला हाथ में दे,
आज वे नूपुर बजा लूँ, एक वीणा साथ में ले,
हँस रहे हैं वे उन्हें, क्या याद है गुणगान सारे ।।

(३२)

जल रहा था रोशनी घर !

और लहरें कह रहीं थी, छोड़ दे पागल,
टूट कर पछतायगा, मर जायगा,
डूबने भी दे जहाजों को, पिघल, मचल, उछल ।।

वह खड़ा था गर्व से उन्नत, रात्रि के उस प्रलय तम मे,
ठोक अपने बाजुओं को, कह रहा था रोशनी घर ॥

प्राण जब तक देह में है, जल रहा हूँ और के हित,
और जलता ही रहूँगा, पार पहुँचाने उधर,
क्रूर लहरें हँस रही थीं, जल रहा था रोशनी घर ॥

(३३)

आज मरना ही पडेगा !

रो रहा है विश्व सारा, आज जीने औ जिलाने,
रो रहा कवि भी व्यथा से, आज पीने औ पिलाने,
रे इसे सुखमय बनाने, त्याग करना ही पड़ेगा ॥

कोशिशें कितनी करी, मैंने सुझाने औ बुझाने,
वासनाओं को हटाकर, गीत अमृतमय सुनाने,
आज अंतिम लौ हमारी, क्लेश हरना ही पड़ेगा ॥

उन सभी को नाज होता, जिन मरीजों को बुलाता,
आज मै तो बाज आया, इन अजीजों को हँसाता,
लेखनी तज हाथ में अब, प्राण धरना ही पड़ेगा ॥

(३४)

अधिकार हटा सकता न कभी ।

वीणा से जो जगता प्रतिदिन, अंतर में जो लगता प्रतिदिन,
चाहे एटम बम भी बरसें, संसार हटा सकता न कभी ॥

कविता ही मेरा भूषण है, कविता ही मेरा दूषण है,
दाने दाने को भी तरसूँ, शृंगार हटा सकता न कभी ॥

मेरा हँसना ही काफी है, मुझमें बसना ही काफी है,
चाहे ठुकरा डाले प्रिय भी, मैं प्यार हटा सकता न कभी ।।

(३५)

आज तो शृंगार होगा ।।
कामिनी के रूप मे ही, देखता आया उसे मै,
आज वह चण्डी बनी है, रोकता आया उसे मै,
खून से लथपथ धरा पर, आज तो अभिसार होगा ।।
पाट दूँगा मै पयोधी, चाहती है यदि यही वह,
काट दूँगा क्लेश सारा, चाहती है यदि यही वह,
आज शंकर सा कवी का, भी सभी व्यवहार होगा ।।
तोड़ दूँगा आसमाँ को, चाँद सूरज कुछ न बोलो,
फोड़ दूँगा मेदिनो को, क्षीण लोगो मुँह न खोलो,
उठ चुका तिरशूल अब तो, युद्ध से ही प्यार होगा ।।

३६)

वार मुझ पर भी चला है !
मस्त हाथी को विचरते, देखकर जो भौक पाए,
क्या बिगाड़ा मुझ सुखी का, प्राण यों ही झोंक पाए,
प्रेयसी ! इस विश्व का, व्यवहार मुझ पर भी चला है ।
ये सुनाते गालियाँ, उसको प्रशसा मैं समझता,
ये जिसे हिंसा समझते, वह अहिसा मै समझता,
चाप का टँकार तो गुंजार सा मुझ में पला है ।।

ये बिचारे शूद्र मानव, गान ये लाएँ कहाँ से,
कवि-हृदय की रीझती, मुस्कान ये लाएँ कहाँ से,
स्वार्थी जग को निरन्तर, प्यार मेरा भी खला है ॥

(३७)

मेरा घर चन्दा के भीतर ।
सृष्टी पर मेरा बस चलता, धरती पर मेरा जस चलता,
मेरी काया हिलने डुलने, आ जाती है भू के ऊपर ॥
मै तारों से बाते करता, अंगारों से बाते करता,
मेरा यौवन जलता रहता, रे खाक बना, फिर भी सुन्दर ॥
वह रात गई, बरसात गई, मिलने जुलने की बात गई,
अब तो काया बदला करता, हँसता चन्दा घटकर बढकर ॥

(३८)

काव्य जाग्रत एक सपना ॥
भाव मे डूबे कवी का, हाल कोई बूझ जाता,
रात मे चलते पथिक को, पंथ जैसे सूझ जाता,
आ रहा हो पास जैसे, साधना का केन्द्र अपना ॥
और तो सोए हुए, बेहोश हो कुछ देखते हैं,
किन्तु कवि तो जागती, इस नीद में अवरेखते है,
ये बड़े योगी वियोगी, एक जपना, एक तपना ॥
सोचने में देह अपनी, ध्यान अपना खो चला हूँ,
किन्तु ऐसी देन पाई, देव जिससे हो चला हूँ,
कल्पना ही कल्पना में, यह अनोखा ही कलपना ॥

(३९)

जो हृदय तू क्षीण होता ।
इस वृहत-वपु के सरोवर, में अकेला ही कमल है,
देह तो दूषित सभी है, तू अकेला ही विमल है,
जो नहीं तू उर्ध्व होता, तो कही लघु मीन होता ।

जो सतह से उठ न पाये, वे सदा रोते जगत मे,
इन प्रपंचों से न तुझ को, मोक्ष मिल पाती जगत मे,
उर्मियों के पीन पट मे, जो कहीं तल्लीन होता ॥

दूर इतना है जिसे, गजराज भी क्या तोड़ पाये,
क्लेश का नित क्रूरतम, आघात भी क्या मोड़ पाये,
जोश ही आता न मुझको, जो कहीं बलहीन होता ॥

(४०)

बालाएँ भी मुँहज़ोर बनी !
मदिरा ढलती ही रहती थी, जिनकी हर बातों-बातों में,
अब तो वे ही रूखी लगती, इन प्यार भरी बरसातों में,
लड़कों के सँग में क्या बैठी, लड़कों जैसो ही बोर बनी ॥

जिसमें देखो उस दर्जे मे, ये ही सबसे अव्वल आएँ,
इनसे दुगने तिगुने लड़के, इनके आगे क्यों शरमाएँ,
अध्यापक की दिल चोर बनी, तब ही तो ये सिरमौर बनी ॥

चाहे ये अपने चेहरे पर, मन भर अफगान स्नो रगड़ें,
सौन्दर्य उपासक है जितने, वे तो फिर भी इनसे झगड़े,
देखो कितनी कमजोर बनी, कुछ ढोर बनी, कुछ और बनीं ॥

(४१)

मै अकेला ही बहुत हूँ !

द्रव्य औ यश के लिये, अपना समय मै क्यों गँवाऊँ,
देह परमान्द युत है, क्यों किसी के पास जाऊँ,
विश्व से इतना उठा सब वासनाओं से रहित हूँ ।

साधना ऐसी प्रबल है, भस्म कर सकती धरा को,
मन्द सी मुस्कान से जो, रोक भी सकती जरा को,
शक्तियाँ पहचानता हूँ, ब्रह्म युत हूँ, तेज युत हूँ ।।

आज का संसार तो पाताल को नित जा रहा है,
स्वर्ग को तज कर सदा को, नर्क को अपना रहा है,
मै अकेला स्वर्गवाला, दानवों को तो बहुत हूँ ।।

(४२)

आज क्या आलोक देखा ?

भाव में कुछ गुनगुनाता, मैं सड़क पर जा रहा था,
सामने से युवतियों का, एक जत्था आ रहा था,
वे मचलती जा रही थीं, हास भी बेरोक देखा ।।

नित भ्रमण का केन्द्र, उपवन, भी निकटतम आ गया था,
मे निरूपी भाव की कुछ, व्यंजना को पा गया था,
स्वर्ग के बाजार का निज कल्पना से चौक देखा ।।

जान पाया, मर्त्य तो बढ़कर वहाँ से भी हमारा,
इन्द्र मेरे सामने है क्या, थका सा वह विचारा,
वह न कविता कर सका, उसने न निज को रोक देखा ।।

(४३)

प्रेयसि ! अजब तुम्हारी लीला !!

मैं नित ढूँढ ढूढ कर थकता, क्यों कर कोस रही हो कवि को,
तुम अदृश्य बनी हो मुझसे, फिर भी देख रहा हूँ छवि को,
तुम तो पुलकित होती जाती, मैं तो पड़ता जाता पीला ।।

तुम नित घूम रही पृथ्वी संग, पर मै बैठा बैठा रोता,
तुम तो चूम रही तारों को, पर मैं रोता रोता सोता,
अब तक के अगणित चुम्बन से, अम्बर भी तो सारा नीला ।।

या तो पास अभी आ जाओ, वर्ना भस्मीभूत करूँगा,
अपनी ज्वालाओं के बल पर, केवल अल्प विभूत करूँगा,
खुद भी प्राण तजूँगा अपने, तज कर प्रेम सदा चमकीला ।।

(४४)

मैं वारिधि होकर भी निर्झर सा अपनी गाथा कहता हूँ ।।
यौवन मेरा गम्भीर बना, तूफानों को नित चीर बना,
मुझ मे आँसू का सागर है, पर धीरे-धीरे बहता हूँ ।।

रे हमदर्दी बतलाओ मत, मेरे दुख को उकसाओ मत,
मैं विधवा के आँचल का सा, निशदिन ही भीगा रहता हूँ ।।

मैं तो दीपक हूँ क्या बोलूँ, अपनी कीमत, मैं क्या तोलूँ,
कोई मुझसे कुछ भी कहले, बैठा बैठा सब सहता हूँ ।।

(४५)

ये सावन की झड़ियाँ देखो !!

ये भी मेरा जी बहलातीं, वे भी मेरा जी बहलाती,
इनकी छोटी छोटी लड़की, ये आँसू की लड़ियाँ देखो ।।

ये भी गाने गाती रहतीं, वे भी गाने गाती रहती,
इनकी छोटी छोटी पोती, ये कविता की कड़ियाँ देखो ।।

ये भी बीते जल्दी न कभी, वे भी बीते जल्दी न कभी,
इनकी मोटी मोटी सुसरी, ये सोने की घड़ियाँ देखो ।।

झड़ियों मे, लड़ियों मे कोई, कड़ियों मे, घड़ियों में कोई,
अन्तर ही अब तो रह न सका, ये जादू की पुड़ियाँ देखो ।।

(४६)

मुझ नाबालिग को मत पूछो !
इन ऊँचे ऊँचे लोगों को, देखो जो मुझसे दूर रहें,
"वेरी सारी" कहला देते, मिलने से भी मजबूर रहें,
इन से भी आगे बढ़ना है, मेरे सपनों को मत पूछो ।।

इन के अम्बर मे पैर रहें, ये शासन पर क्या बैठ गए,
बातें करना ही भूल गए, बैठे बैठे ये ऐंठ गए,
इनको धोबी से फुर्सत है, इन के हँसने की मत पूछो ।।

मै इनको दूर भगा सकता, मुझ में इतनी शक्ती रहती,
इनकी अच्छी से अच्छी भी, आदत मुझको खोटी लगती,
मै भी छोटा सा ब्रह्मा हूँ, मेरी तारीफें मत पूछो ।।

(४७)

मै आने वालों से लड़ता !
जाने वाले बेचारे तो, तय्यारी में ही बैठे हैं,
पर आने वालों को देखो, अय्यारी मे ही बैठे हैं,
इनको थोड़ा समझा देने, दिन भर इनके सिर पर चढ़ता ।।

नादान बने फिरते सारे, अभिमान जगत का आ बैठा,
इन रुन्डों में अपमानों का, कुछ ध्यान कहाँ से आ बैठा,
मै तो इनसे हर कुछ कहता, टकराने वालों से भिड़ता ।।

मिलती रहती है घन्टों तक, इनसे ही मुझको कविताएँ,
सारी दुनियाँ का रूप अरे, अच्छा हो ये ही ला पाएँ,
इन में ही रहता हूँ फिर भी, मे इन सब से आगे बढ़ता ।।

(४८)

मुझ को बीमारी छू न सकी !

दुनियाँ वालो सच कहता हूँ, जब से कविता का काम किया,
इतना खुश रहता हूँ मैं तो, घन्टों थक कर आराम किया,
कैसे कोई आ सकती है, ये इतनी सारी छू न सकी ।।

मै पहले ही पहचान गया, कुछ होने वाला है मुझको,
फौरन गाना गाया तब ही, जो बहला देता है मुझको,
मैं ताड़ गया पहले से ही, भारी से भारी छू न सकी ।।

मैं लौट गया कितनी रातें, पाकर भी क्रीड़ा का मौका,
मैंने अपने को रोका है, आया नित पीड़ा का झोका,
कविता की बीमारी से ही, कोई भी नारी छू न सकी ।।

(४९)

सेठ जी ! टोपी उतारो !

तुम नही इस योग्य हो, जो कैप गाँधी की लगाओ,
तुम न नारद-मोह मे पड़, सेठ गाँधी को लजाओ,
लोग भूखों मर रहे है, बात को कुछ तो विचारो ।।

देश को काला बनाने, क्यों सदा सट्टा लगाते,
हाय ! भामाशाह के भी, नाम पर बट्टा लगाते,
आज मैं भी देश छोड़ूँ, या मुझे लो तुम पुकारो ।।

आज तक इस भूमि पर, हमने तुम्हें सब से बचाया,
नित्य माँ की लाज को, रे प्राण दे देकर बचाया,
अब हमारा भार तुम पर, देश की हालत सुधारो ।।

(५०)

बात पक्की हो गई है !

हम चलेंगे दूसरों को, सीख देने कुछ कला की,
और जो हमसे बड़े हैं, भीख लेने कुछ कला की,
देश की सोसाइटी तो, खूब बक्की हो गई है ।

और देशों की तरुणियाँ, भी न जब तक आ सकेंगी,
हिन्द की अदृश्य प्रतिभाएँ न पल्लव पा सकेंगी,
ये 'नमस्ते' कर रहीं जो, खूब झक्की हो गई हैं ।।

राग मीठा सा सुनाने, कुछ सिखाना ही पड़ेगा,
विश्व के ओछे हृदय को, मुस्कराना ही पड़ेगा,
आज की दुनियाँ अरे क्यों, कुछ उचक्की हो गई है ।।

(५१)

रे सावन बीता जाता है ।

यौवन ही जाएगा इक दिन, जीवन मिट जाएगा इक दिन,
लेकिन कोई की आस लिए, अपनापन जीता जाता है ।।

जो कोई मुझको गाएगा, मेरे सँग सिर धुन पाएगा,
कोई परवाह नहीं यदि यह, मनभावन बीता जाता है ।।

आएँगी ही कलियाँ मुझ में, आँसू मुक्तावलियाँ मुझ मे,
स्वाँतो की बूदें, मेरा मन, प्यासा नित पीता जाता है ।।

(५२)

वह तो अपराध नही करती, फिर भी अपराध सदा होता ।
भोली भोली सी दिखती है, बोली बोली सी लगती है,
वह तो बरबाद नही करती, फिर भी बरबाद सदा होता ।।

मुझ से क्यो दूर सदा रहती, वह क्यो मगरूर सदा रहती,
वह तो कुछ साध नही करती, फिर भी अवसाद सदा होता ।।

मेरे बेसुध उर मे अनुपम, बजता रहता कैसा सरगम,
वह तो यह नाद नही भरती, फिर भी यह नाद सदा होता ।।

(५३)

मैं कैसे अपना काम करूँ !

विद्यालय में फिरते फिरते, इस सागर मे तिरते तिरते,
ऐसा डाकू बन बैठा हूँ, मानवता हित संग्राम करूँ !!

बालाओं को ऐसा डर है, रहतीं मुझ से सब हटकर है,
कोई भी पास नही आती, क्या अपने को घनश्याम करूँ ?

इन सब को मेरी आहों से, परिचय क्या है प्रतिभाओं से,
या तो मेरी तारीफ करो, या मै तुम को बदनाम करूँ ।।

(५४)

दीपक काँप रहा कोने मे !

कितनी मुश्किल से जल पाया, कितनी पीड़ा से पल पाया,
फिर भी आशका बुझने की निज को ढाँक रहा कोने मे ।।

कोई तो उसको प्रगटाए, कोई तो उससे मिल पाए,
बैठा जग सा विस्तृत बनकर, जग को माप रहा कोने मे ।।

कोई माधव की बसी को, मानो भूखी कल हंसी को,
रख कर मौन युगो से अब तक, दीपक झाँक रहा कोने में ।।

(५५)

दीपक ! मिट्टी से बनते हो !!

आती कूड़े करकट से जो, नर के गीले मरघट से जो,
मिट्टी मे फिर जा मिलते हो, तब क्यों तुम इतने तनते हो ?

पैसे भर तो स्नेह भरा है, इसमें कैसा ध्येय भरा है,
पैसे में भी मँहगे पड़ते, तुम तो कौड़ी में बिकते हो ।।

फिर भी काम तुम्हारा कैसा, रे अंजाम तुम्हारा कैसा,
मानव को सत्पथ बतलाने, कोने में रहना चुनते हो ।।

(५६)

दीपक ! रात चली जाएगी !

अब तो सूख गया अन्तर भी, मानव का चिर प्यासा उर भी,
कविता के द्वारा आई जो, वह बरसात चली जाएगी ।।

तम को कम करने के बदले, पुरस्कार यह पाकर निकले,
होते ही परभात हमारी, सारी गात दली जाएगी ।।

तुम को भी कोसा जाएगा, तुमको भी सोसा* जाएगा,
अपनी जात चली जाएगी, अपनी बात चली जाएगी ।।

(५७)

दीपक ! आज मरण की बारी !
ऐसी ज्योति जगाओ अपनी, बाधा जल जाएँ सब अपनी,
अपने को जिसने तड़पाया, दुख को आज हरण की बारी ।।

उर मे आग उठी है अब तो, बिल्कुल जाग उठी है अब तो,
जो कोई जीवन माँगे तो, केवल आज शरण की बारी ।।

जैसे सँग तैसा करने दो, मुझ को दानवता हरने दो,
हाथों ने कितने को पीटा, लेकिन आज चरण की बारी ।।

(५८)

क्यों तुम रोज खुशामद करते ।।

अपने मालिक के घर जाकर, प्रतिदिन ही तो भेंटा करते,
जैसे कुछ अफरीकन बन्दर, तरु से पूँछ लपेटा करते,
लटके रहते है सुख पाकर, कैसी सस्ती आमद करते ।

उर मे तो काले ही काले, पर दिखनें में कितनें सच्चे,
धोखा छिपा हुआ अन्तर में, जैसे कंगारू के बच्चे,
अपने जैसे ही अफसर से, खोटा माल बरामद करते ।।

---

*'सोसा' शब्द राजस्थानी का है। यह शब्द शोषण से बना है।

पहले तो गिड़गिड़ करते थे, अब तो क्या कोई से डरते,
इनकी मानवता को देखो, कागज के टुकड़ों पर मरते,
जो कोई भी घर पर आए, उसकी रोज हजामत करते ॥

(५९)

पत्थर में प्राण चला आता !
मानव ऐसा प्राणी है जो, पत्थर को भी रो सकता है,
उसमे भी ईश्वर को पाकर, कितना विह्वल हो सकता है,
कहते है पत्थर भी रोता, उसमें भगवान चला आता ॥

पूजा करने से क्या मुश्किल, जो हो जाए सो थोड़ा है,
कितने ही गायन को सुनने, प्रतिमाओं ने मुँह मोड़ा है,
कोई प्रहलाद बने यदि तो, नरसिंह का ध्यान चल आता ॥

मैले चिथड़ों मे रहता हो, कोई कैसा ही निर्धन हो,
कैसा ही जग का बन्धन हो, कैसा ही लघुतम जीवन हो,
फिर भी यदि बनना आता हो, नभ से नभयान चला आता ॥

(६०)

दुहराने में आनँद आता !
माला फिरती जैसे कर में, वैसे छवि फिरती है उर में,
एक लहर की शह पाते ही, लहराने में आनँद आता ॥

मेरी कविता मे है ही क्या, मेरी रचना में है ही क्या,
मैं हूँ औ मेरी प्रेयसि है, बतलाने में आनँद आता ॥

मैं पावन हूँ जो गाता हूँ, मनभावन हूँ, मुसकाता हूँ,
बावन अक्षर में सब कुछ है, बावन अवतारों को लाता ॥

(६१)

दीपक ! प्राण नहीं उठ पाए !

कैसी घुटने की पीड़ा है, कैसी मिटने की क्रीड़ा है,
गर्दन देने पर भी नीचे, रे बलिदान नही उठ पाए ।।

किसने अन्तर को तोड़ा है, किस ने मुझ से मुँह मोड़ा है,
मेरे अन्तर्हित भावों के, रे उन्मान नही उठ पाए।।

क्या हमको भी कोई डर है, मन में कैसा यह चक्कर है,
सब ही निर्बल आज बने है, कवि के गान नहीं उठ पाए ।।

(६२)

मैंने बादल आता देखा ।।

कितने गर्वीले गर्जन से, अपने क्रोधित से तर्जन से,
पृथ्वी रौंद सके जो पल में, ज्यों दावानल आता देखा ।।

अम्बर का वक्षस्थल हिलता, ज्यों सागर अन्तस्थल हिलता,
विस्तृत आकाशी अम्बुधि में, यह बढ़वानल आता देखा ।।

रमणी के छोटे से दिल में, कोई मौन खड़े कामिल में,
आँसू की धारा बरसाने, रे विरहानल आता देखा ।।

(६३)

"हिन्दू बिस्कुट, हिन्दू बिस्कुट !"

बेचा करता है अदना सा, बनता है अपना अपना सा,
ये ही नारा लगता उसका, हिन्दू बिस्कुट, हिन्दू बिस्कुट ।।

जग में वे ही है जुट के जुट, बिस्कुट में भी है गुट के गुट,
चौड़ा कर लेते कर सम्पुट, हम भी झट उठ, तुम भी झट उठ ।।

रे अब तक जाती पाँती को, अपनी दुनियाँ को खाती को,
कायम रख कर ऊँचे होते, तुम तो छै फुट, हम तो दस फुट ।।

(६४)

अब तो पूरा होने आया !

मेरी सोने की देह चली, तज कर अपना यह गेह चली,
मेरी ताकत हटती जाती, अब तो चूरा होने आया ।।

इतना लिखता, बेकार सभी, यह पीड़ा का संसार सभी,
मैंने अपने को खा डाला, अब तो कूड़ा होने आया ।।

जैसे बढ़ई रद्दा करता, गलती करके भद्दा करता,
लकड़ी ही बीत गई सारी, अब तो बूरा होने आया ।।

(६५)

मैं एक्स-किरण से देख रहा ।।

मानव के प्यासे आशय को, युग से भूखे आमाशय को,
उर के दीपक की ज्योती से, उसकी नस नस को देख रहा ।।

उसकी आँते चिल्लाती हैं, मीठी बातें मुरझाती हैं,
वह खून उगलने वाला है, उसकी हरकत को देख रहा ।।

नारी भी कवि से दूर कहाँ, सब ही रहतीं मजबूर यहाँ,
ये खून पिएँगी दानव का, इनका लोहू तो नेक रहा ।।

(६६)

संध्या फूली फूली फिरती ॥

राकापति का आरोहण है, कैसा उस में सम्मोहन है,
जैसे प्रिय को पाकर रमणी, सुख से भूली भूली फिरती ॥

रवि के जाने पर मुस्काई, रजनीपति पाकर ललचाई,
कितनी ऊली ऊली मन में, मानो झूली झूली फिरती ॥

कुछ गिरती है, कुछ उठती है, कुछ बनती है, कुछ लुटती है,
ज्यों लाल बँदरिया मस्त बनी, पगली फूली फूली फिरती ॥

(६७)

दीपक, रोनी सूरत करली !

कुछ तो तुम वैसे ही अच्छे, कितने कच्चे, कितने बच्चे,
फिर कविता पाकर क्या कहने, बातें सब अपने हित कर ली ॥

उस जग में क्या जा सकते हो, स्वर्गों को क्या पा सकते हो,
इस दुनियाँ के वैभव से भी, अपनी काया वंचित करली ॥

अब तो तुम कर ही क्या सकते, कैदी हो घर क्या जा सकते,
बुलबुल के से गाने गाओ, ऐसी पीड़ा संचित कर ली ॥

(६८)

अब मुझे संतोष मिलता ;

आस करने पर नहीं था, हास करने पर नहीं था,
किन्तु यह इतना समाया, अब नही अफसोस मिलता ॥

मैं पढ़ा हूँ, मैं लिखा हूँ, ताड़नाएँ सह सका हूँ,
ढूँढता आया जिसे मैं, आज वो ही जोश मिलता ॥

मैं सुलाना चाहता था, मैं हँसाना चाहता था,
चार आँसू माँगता था, आज मुझको कोष मिलता ॥

(६९)

इन सुबह की कोंपलों में, आज किसका हास फूटा।
खिल रही थी कुछ दिनों से, प्रेम की कलियाँ हमारी,
बस रही थी कल्पना से, मौन ये गलियाँ हमारी,
किन्तु सचमुच सामने लो आज तो मधु मास फूटा ॥
मन्द थी जो क्लेश पाकर, ज्योति फैली सब दिशा में,
विश्व आलोकित हुआ है, घोर तम की इस निशा मे,
मूक मेरे मधुर मन मे, आज क्या आभास फूटा ॥
अनगिनत, नभ ओर देखो, ये सितारे उग रहे हैं,
शाम होते ही जगत में, कौन प्यारे जग रहे हैं,
आज वक्षस्थल हरा है, आज तो आकाश फूटा ॥

(७०)

कोई तो सुनने को आए।
मेरे सर मे पंकज दल है, जो मुझ को करता चंचल है,
कितने फूल यहाँ से निकले, कोई तो गिनने को आए ॥
ये परिजात हमारे आए, ये जलजात हमारे आए,
कितने ऊँचे कितने नीचे, कोई तो चुनने को आए ॥
कितनी तूल पकड़ती तूली, कितनी भूल समझकर भूली,
मैं तो तूल गिराता जाऊँ, कोई सिर धुनने तो आए ॥

(७१)

दीपक ! राग सुनाओ अब तो ।

देखो मस्त हवाएँ आती , किसकी मौन सदाएँ आतीं,
कलियाँ जिसमें फौरन आएँ, ऐसा बाग लगाओ अब तो ।।

भूखा भूखा नहीं कहाए, जग यह भार नहीं सह पाए,
धरती सब स्वर्णिम हो जाए, ऐसे भाग जगाओ अब तो ।।

जिस से जग जाए मानवता, जिससे दब जाए दानवता,
कोई रोक न पाए जिस को, ऐसी आग लगाओ अब तो ।।

(७२)

दीपक ! आज दिवाली आई ।

जितना जलना हो तुम जल लो, जितना चलना हो तुम चल लो,
अपनी अपनी ही माया है, यह देखो मतवाली आई ।।

हम ने बुझाना भी जाना है, हमने मिटना भी ठाना है,
अपने उपक्रम से ही अब तो , सारे जग में लाली आई ।।

ढाली थी जिस को हमने ही, पाली थी घट में हम ने ही,
आली आज वही तुम लेकर, मदिरा की यह प्याली आई ।।

(७३)

फूल तो कैसे बनूँ मैं ।

आज मुझ में और ताकत, है नहीं इतनी नज़ाकत,
पूर्ण दारुण हो चुका हूँ, शूल तो फिर भी बनूँ मैं ।।

मैं सदा चहुँ ओर भटका , किन्तु फिर भी हाय अटका,
टूल हो सकता भला क्यों, भूल तो फिर भी बनूँ मैं ।।

नित्य गीला ही रहूँगा, नित्य टीला ही रहूँगा,
मैं नदी कैसे बनूँगा, कूल तो फिर भी बनूँ मैं ।।

(७४)

बरसाती नदिया का पानी ।।

क्यों शोर मचाता जाता है, क्यो जोर लगाता जाता है,
अपने जीवन की अस्थिरता, इसने न अभी तक पहचानी ।।

कैसी चिल्लाती जाती है, कैसी बल खाती जाती है,
फिर भी गहरापन है न कही, नदिया की कितनी नादानी ।।

उमड़ी ही पड़ती है छाती, कितनी तेजी से बह जाती,
कितनी जल्दी आँसू लाती, यौवन की दुनियाँ अभिमानी ।।

(७५)

प्रोफेसर भी तो मरते है !

पर ये रहते ऐसे तनकर, आये ज्यों परमेश्वर बनकर,
इनको कितनी गाली देते, इनकी जो बटरिग करते हैं ।।

खाते पीते, आने जाते, भारी भारी तनखा पाते,
पर मानव हित क्या लिख पाते, आजीवन ये क्या करते हैं ।।

अब तो बैठ हकूमत करते, रे अपनी कम कीमत करते,
ऊँचे अफसर की भाँती ये, भी तो पिटने से डरते हैं ।।

(७६)

दूध वाला आ गया है ।

अल्प से ग्राहक बने हैं, जो धनी घातक बड़े है,
उन सभी का पेट भरने, दूध लेकर आ गया है ।।

है अधिक निर्धन बिचारे, पेट मे क्या जो बिचारें,
उन सभी विद्यार्थियो को, एक दम तड़पा गया है ॥

आज का भारत हमारा, लोभ मे गारत हमारा,
सेठ जी का एक डेरा, खून पीकर छा गया है ॥

(७७)

कलिका तक ही जाते मधुकर, इस पत्थर को भी तड़पाओ।
उपवन में रहते हैं नभचर, तरुकी लकड़ी, घर के प्रस्तर,
माली का घर भी तो इस में, इस छप्पर को भी तड़पाओ ॥

जो आ जाते केवल उड़ने, थोड़ा सा इत उत ही मुड़ने,
उन निर्मल लोगों के सूखे, अन्तर को भी तो तड़पाओ ॥

अपना मीठा मीठा गुंजन, कैसा रूठा रूठा रंजन,
दुनियाँ में जो ज्यादातर हैं, घनचक्कर को भी तड़पाओ ॥

(७८)

हाथी ! तुम कितने मोटे हो !
जो कोई भी तुमको पाले, तुम को बेबस क्यों कर डाले,
अपनी प्रिय की फरियादों से, चलते चलते ही रोते हो ॥

थोड़ी सी अंकुश से डरते, जल्दी भरसक भागा करते,
मुझ को देखो पत्थरदिल हूँ, तुम दुख सहने मे छोटे हो ॥

फिर भी इन्टेलीजेन्ट बड़े, सरकस में करते खेल बड़े,
पर खा जाते मन भर आटा, केवल इतने ही खोटे हो ॥

(७९)

कव्वे भी कोयल से बोलें ॥
जिनको देखो वे ही गाएँ, सीनेमा मै पैसे पाएँ,
ये टूटे फूटे नूपुर भी, छोटी सी पायल से बोले ॥

ये भी तो ध्यानी बनते हैं, पर क्यों अभिमानी बनते हैं,
कवियों सम दुखती छाती से, गहरे बन घायल से बोले ॥

मादकता का तो नाम नहीं, कहने सुनने का काम नही,
वसुधा के ऊँचे से ऊँचे, बन कर ये पागल से बोलें ॥

(८०)

रेडियो भी बज रहा है ॥
एक कोने में लगा है, एक रमणी से जगा है,
सात लोकों के सँदेसे, खूब देकर सज रहा है ॥

हाथ जैसे घूमता है, देश को वह चूमता है,
तनिक सा आदेश पाकर, देश को वह तज रहा है ॥

हाय मानव निज हृदय में, क्यों न सुनता स्वर सदय में,
एक ऐसा यंत्र हम में, भी सदा ही बज रहा है ॥

(८१)

दीपक ! अपना घर ही सुन्दर ।
दुनियाँ में यों तो कितने ही, ऊँचे होकर भी फितने ही,
फूटे महलों में रह कर भी, रहते हैं हम किस से घट कर ॥

जिसको देखो आना पड़ता, कविता में मुस्काना पड़ता,
राजा महाराजा सारे ही, बेचारे अपने हैं अनुचर ॥

चाहे पानी मे ले जाओ, चाहे ज्वाला में ले जाओ,
कैसे आए उस के आगे, कोई शूल नही टिक सकता ।।

चेटक[1], बूसाफेलस[2], हंजा[3], जिनने मालिक का दुख भंजा,
ये तो पुरुषों से बढ़कर थे, इन पर क्यों फूल नही सकता ।।

(८५)

प्रश्न भी तो खो गया है !

मै जिसे हल चाहता था, शीघ्र ही फल चाहता था,
आज मेरी कल्पना का, केन्द्र भी तो खो गया है ।।

बात को इतनी बढ़ाई, लुट गई सारी पढ़ाई,
साथियों से जो मिला था, प्रेम भी तो खो गया है ।।

आज इतनी गोपियाँ हैं, श्वेत जितनी टोपियाँ हैं,
चाहने वाला मगर मोहन अरे क्यों खो गया है ।।

(८६)

आज बीता हूँ तनिक मैं ।।

देह को अपनी गलाकर, नित्य ही निज को रुलाकर,
प्रेम में मन को लगाकर, आज जीता हूँ तनिक मैं ।।

---

१. चेटक, राणा प्रताप का प्रसिद्ध वाहन था ।

२. बूसाफेलस, सिकन्दर का अश्व था जो राजा पुरु से युद्ध करते समय मर गया ।

३. हंजा, श्री उम्मेद सिंह, बूँदी (राजस्थान) नरेश की घोड़ी थी। उड़ेण के प्रसिद्ध युद्ध में बुरी तरह घायल हो जाने पर तथा पेट की सब आँते नीचे लटकती रहने पर भी वह अपने स्वामी को लेकर नौ मील दौड़ गई और उनके उतरने पर धाराशायी हुई ।

भर चुका था वेदना से, मर चुका था चेतना से,
किन्तु अब ठंडा हुआ हूँ, आज रीता हूँ तनिक में ।।

दूर जो अब तक रही है, पास आती जा रही है,
प्रेम प्याली को उठाकर, आज पीता हूँ तनिक में ।।

(८७)

पीड़ा मुझ में उपकार बनो ।

अब तो वे दिन बीते जब मैं, पीड़ा से था नित चिल्लाता,
दुनियाँ वाले गाली देते, अब सुख से पूरित हो जाता,
काँटे भी फूल बने पथ में, कसकें मेरी झंकार बनी ।।

चाहे कोई काटे जी भर, विष मुझ में अमृत हो जाता,
मेरी बाहों में आने पर, मृत भी तो जीवित हो जाता,
पथ में ठोकर खाते खाते, पद-रज मेरा श्रृंगार बनी ।।

मैं लोहा हूँ ऐसा जिस पर, पारस कब रंग चढ़ा पाता,
मेरे लोहे के आगे तो, हर पत्थर पारस हो जाता,
पारस मुझको पा रसमय है, पारस से ही मीनार बनी ।।

(८८)

गप्पें मारो, मेरे यारो !!

पढ़ने से घबरा जाते हो, रोटी सूखी खा जाते हो,
मैंने भी गप्पें ही मारी, तुम भी तो कुछ मक्खी मारो ।।

तुम राष्ट्र बनाने वाले हो, आकाश बनाने वाले हो,
बस एक गप्प में तारों को, उग जाने दो मेरे प्यारो ।।

हम सुस्त नहीं बन सकते हैं, हम चुस्त सदा हो सकते हैं,
नेशन में जूँए पड़ती हों, तो एक बार तो फटकारो ।।

(८६)

ताँगे वाले, ताँगे वाले ! !

तेरी टिक टिक मे गान भरा, तेरी झिक झिक मे प्राण भरा,
तू भी तो कुछ गाने गाले, तू भी मेरे सँग मुस्काले ।।

तू भी तो सिखलाता मुझ को, तू भी तो समझाता मुझ को,
तू भी सीनेमा में जाता, चल मेरे सँग चल, मतवाले ।।

तू बालाओं को लाता है, लाता है औ ले जाता है,
मुझ से पैसे ज्यादा लेता, मुझ को भी तो ले चल साले ।।

(९०)

लड़की का रेशम का छाता ।

जिसमे अन्तर्हित रहती है, जाने कितनी उत्कंठाएँ,
जाने कितनी व्याकुलताएँ, जाने कितनी दुर्बलताएँ,
जाने कितनी ललनाओं की, छातो ढक लेता है छाता ।।

छाता होकर भी छाते का करता, जो कोई काम नहीं,
वायू, वर्षा औ आतप से, बचने का जिसमें नाम नही,
फिर भी रसिको के अन्तर में, छोटा सा छाता छा जाता ।।

जब भी उसकी स्वर्णिम आभा, गोरे गालों पर पड़ती है,
ऐसा लगता मानो जगती, जन्नत से जा कर जुड़ती है,
यह छाता, गाता, मुस्काता, पर हमको कितना तड़पाता ।।

(९१)

शहरों में कितनी बस चलती ।।
इन में भी तो सुन्दरता है, इनमें भी तो तत्परता है,
इस भारी गाड़ी के सँग में, इनकी भारी नस नस चलती ।।

बुद्धी से बिल्कुल खाली है फिर भी जो बनने वाली हैं,
इस भीषण गर्मी के जलते, प्रहरों में भी तो हँस चलतीं ॥

कहने में भी सकोच मुझे, सहने मे भी अफसोस मुझे,
ये रस्ते चलते ही अब तो, जाने कितनों से फँस चलती ॥

(९२)

दो तितली सँग सँग उड़ती थी !!

इन में भी स्पन्दन होता, कोमल कोमल कम्पन होता,
वे विचरण करने निकली थी,खुश होकर इत उत मुड़ती थी ॥

ये तो कुछ बात नही करती, रातों को प्रात नही करती,
फिर भी इनमें अद्भुत गति है, वे चुम्बन करने जुड़ती थीं ॥

काफी ऊँची थी धरती से, इस करती धरती, मरती से,
मानव के कटु व्यवहारों से, क्या वे भी इतनी कुढ़ती थी ॥

(९३)

यह पतँग तो जा रही है !!

एकदम नभ में गई थी, रोशनी नभ में नई थी,
देख कर शोभा गगन की, आज तो चकरा रही है ॥

चाहती चहुँ ओर उड़ना, हाथ मे इसके न मुड़ना,
एक झोके से हवा के, जोर से गरमा रही है ॥

पेट भर यह लड़ चुकी है, भेट कर यह बढ़ चुकी है,
देख कर ढप्पू अनेकों, डोर टूटी जा रही है ॥

(६४)

शीत में नभयान देखा !!

घोर जाड़ा पड़ रहा था, धुन्ध थोड़ा चढ़ रहा था,
गूँजता आया तभी इक, अल्प सा सुखधान देखा ।।

रूप कुछ कुछ दीखता था, आर्द्रता से भीगता था,
आज मानो घूमता मेरा तनिक अरमान देखा ।।

सुन रहा था नाद को ही, आ गया उन्माद कोई,
श्वेत घन वाले गगन मे, आज मानो प्राण देखा ।।

(६५)

मै पुरानों से मिला हूँ !!

आज जो साथी बने है, आज छाती से लगे हैं,
उन जगत के मानियों से, तुच्छ बन बनकर मिला हूँ ।।

देख लेना चाहता था, भेद लेना चाहता था,
किन्तु वे कम बोलते थे, बात करने को मिला हूँ ।।

एक आटोग्राफ लेने, एक फोटोग्राफ लेने,
गिड़गिड़ाता दस मिनट तक, इन बहानों से मिला हूँ ।।

(६६)

मै भी भट्टी मे पकता हूँ !!

जब कुम्भकार निर्माण करे, मुझ को शुभ जीवन दान करे,
तो नित उसकी आज्ञा पाने, मै चपरासी सा तकता हूँ ।।

रे जनता चाहे जो समझे, मुझ को कुछ उल्लू भी समझे,
कमरे में मैं वक्ताओं सा, छुट्टी मिलने पर बकता हूँ ।।

मुझ में मानवता का बल है, तुम मे दानवता का छल है,
तुम तो सब कुछ कर सकते हो, पर मैं कर ही क्या सकता हूँ।।

(६७)

अँधेरी रात में दीपक तुम्ही बेकार जलते हो ।।
यहाँ कोई नही जो काम ले इस रोशनी से अब,
अरे अब छोड़ दो यह रास्ता, बेकार चलते हो ।।

तुम्हारी रोशनी तो रोकती है चोर लोगो को,
अरे तुम बुझ न जाओ, क्यों इन्हे बेकार खलते हो ।।

यहाँ विरहन नही जो प्रेम से ढक ले तुम्हे लेकर,
यहाँ सुनता नही कोई, वृथा क्यों हाथ मलते हो ।।

(६८)

विश्व भी क्या सुन सकेगा ?

निर्झरों से नित निकलकर, बज रही है रागिनी जो,
राग भर भर प्रेयसी वह, गा रही अनुरागिनी जो,
कुसुम-कलियों को बिखरते, देख कर क्या चुन सकेगा ?

वह लखो अलिवृन्द भी तो, प्रेम गुंजन कर रहा है,
झूम कर मधु के नशे मे, नित्य नर्तन कर रहा है,
इस मधुरतम वेदना से, क्या न वह सिर धुन सकेगा ?

मेदिनी के वक्ष पर, ये टूटती कड़ियाँ पड़ी है,
कूकते कवि-कोकिलों के, अश्रु की लडियाँ पड़ी है,
भाव जो बहते हृदय से, क्या न वह भी गुन सकेगा ?

(९९)

मैं गगन का एक तारा !

जगमगाते दीप सारे, है करोड़ों ही वहाँ तो,
सूर-ससि की कौन गिनती, हैं अनेकों ही वहाँ तो,
उड़गनो के बीच पड़कर, पल रहा मै भी बिचारा ।।

रोशनी भी तो न जिसकी, इस धरा पर दीख पाई,
रे जरा सी मेदिनी कुछ भी न मुझसे सीख पाई,
सौ ध्रुवों की ज्योति मुझ में, सात सौ ऋषि ने सँवारा ।।

इस गगन की मौन छाती, जल रही कब से अकेली,
इस अमर पुर में अरे, मिलती नही कोई सहेली,
एक जलता सा अँगारा, एक प्यासा, एक प्यारा ।।

(१००)

मेरे मरने पर मत रोना !!

जो अश्रु प्रलय भी कर सकते,जग को मधुमय भी कर सकते,
उन मूल्यवान् मुक्तओं को, देखो मेरे मत हित खोना ।।
मैं जग में रोया नही कभी, निज पौरुष खोया नहीं कभी,
तुम भी मुझ से शिक्षा लेकर,मत जीवन मे विचलित होना ।।
हँसने वाला ही सँग जाए जिस पथ से मेरा शव जाए,
कोई मेरे अन्तिम पथ मे रे, दुःख के काँटे मत बोना ।।
नित अलस उषा मे झाँकूँगा, तारों तारों मे ताकूँगा,
मुझ अजर अमर को खिन्न बना,कातर मत स्मृति से होना ।।

सप्तम खण्ड

माँझी

आमुख

"माँझी" एक छोटा सा विरह काव्य है जिसे खण्ड-काव्य भी कहा जा सकता है। यद्यपि इस मे कई स्थानों पर लड़कपन की कई अठखेलियाँ हैं तथापि कवि की वियोगावस्था कुछ परिपक्व सी हो गई है और वह भौतिक विश्व से परे, 'उस पार' जाने की कल्पना करता है जहाँ उसे सुख मिलने की आशा है। कवि अपनी 'प्रेयसी' को भी छोड़ देता है, उसे भूल जाने की चेष्टा करता है और सारी दुनियाँ से सन्यास लेकर मानों वह एक अज्ञात देश के लिये चल पड़ता है। केवल एक माँझी उसके साथ है जो उसकी नाव खे रहा है—

"माँझी ! कुछ गाते भी जाओ ।।
रोते हो फिर भी मुस्काकर, धीमे-धीमे स्वर मे गाकर,
रह-रह कर मुझको आज किसी याद दिलाते भी जाओ ।।"

एक ओर तो निष्क्रमण की भावना जोर पकडती है, दूसरी ओर समाज की अवहेलना करना उसे अखरता है और तीसरी ओर—उमड़ता हुआ विरह उसे झकझोरता रहता है—

"माँझी आँसू बहने भी दो ।"
और—"माँझी ! तुमने प्यार किया है।
रे किसने मजबूर तुम्हे भी, जाने को उस पार किया है।
राकापति के सकेतों से, नित नीरव रजनी मे उठकर,
सच कहो तुम्हारी आँखों ने, क्या छिप-छिपकर अभिसार किया है ?"
वारिधि मे आगे बढ़ने पर, "माँझी ! रजनी हो आई है।"

कभी-कभी कवि अपना धैर्य खो बैठता है—

"माँझी ! पार कहाँ पाओगे', "माँझी लहरों ने घेर लिया।"
"माँझी ! अन्तिम क्षण तो बोलो।"

चलते-चलते मानो जीवन का अन्त ही आ जाता है।

नौका डूबने लगती है। उस पार पहुँचने की निष्फल चेष्टा मे डूबता उतराता हुआ वह कहता है:—

"वह किनारा दूर ही है।
हाय माँझी ! शूद्र मानव तो यहाँ मजबूर ही है।"

रचना यही समाप्त हो जाती है। कवि के हृदय पर यही सब से गहरा घाव है कि वह अपनी यात्रा मे सफल नही हो सका। मानव की सब से बड़ी पराजय यही है कि वह मृत्यु पर अभी अपना अधिकार नही जमा सका है। अतः न तो मैंने इस काव्य को आगे बढाने का यत्न किया है और न इसका कोई काल्पनिक सुखद अन्त करने की कोशिश की है। वास्तव में मेरा जीवन भी इस संसार रूपी सागर मे एक तिनके की भाँति लहरों की इच्छा पर नाच रहा है। मेरा जीवन-दीप अंधकार की घोर रात्रि मे केवल अपनी साधना के बल पर जल रहा है और—

"कौन सा झोका बुझा देगा किसे मालूम है।
जिन्दगी एक शमा रोशन है हवा के सामने ॥"

'दीपक'

माँझी

(१)

माँझी ! आज किनारा छोड़े !

इस धरती पर बीत चली अब, अपनी सब अवशेष कहानी,
धूल उठालो कुछ इस तट की, साथ रहेगी यही निशानी,
चिर सुख मय उस तट पर जाकर, टूटा जीव बिचारा जोड़ें ॥

मानवता के हित जी जी कर, हमने भी बलिदान किए हैं,
भूखे प्यासों को बहलाकर, हमने भी मधुपान दिए हैं,
अम्बर के मीठे तारों में, हम भी एक सितारा तोड़ें ॥

आना होगा तो आएगी, धरती शरमाती शरमाती,
अपने उद्देश्यों के पीछे, चलती ललचाती ललचाती,
लो अपने पतवार उठालो, सारे जग की धारा मोड़ें ॥

(२)

माँझी ! अब मरने को उतरो !

चारों दिशि से उठ उठ कर ये, लहरें स्वागत करतीं अपना,
ज्यों ज्वाला के सत्कारों से, हतजीवन को पड़ता तपना,
इन ठडी प्रेम-चिताओं का, आलिंगन करने को उतरो ॥

अपने मरने से दुनियाँ के, पापी यदि कम हो जाते हैं,
तो हम उसके उपकारी बन, उसका कुछ बोझ हटाते हैं,
इस स्वर्णिम अवसर मे उसकी, पीडा तो हरने को उतरो ।।

मुठभेड़ों में ही कट जाए, मेरा जीवन परवाह नहीं,
पर इन भेडो मे रहने की, अब मुझको कोई चाह नहीं,
लहरों सँग संघर्षो में ही, अब तो कुछ करने को उतरो ।।

(३)

माँझी! सूरज उगने आया !
नौका रूठी सीधी कर लो, भीगी उलझी रस्सी खोलो,
अंतिम आहें भर कर जल्दी, अपने निर्जन तट को जो लो,
देखो तारों का सकल वृन्द, रोते रोते थकने आया ।।

मत देर लगाओ रुक रुक कर, मेरे पग भारी पड़ते हैं,
उतरे मदपी से जीर्ण शीर्ण, करते लाचारी, लड़ते हैं,
मेरे पत्थर के सीने में, कैसा काँटा लगने आया ।।

यह मोह न छूटेगा हम से, यदि खड़े रहे यों ही निश्चल,
इस आग भरी, अनुराग भरी, धरती पर बरसों तक अविरल,
निद्रा त्यागो, ऊपर देखो, अपना जीवन जगने आया ।।

(४)

माँझी! तरनी छोटी सी है।
मुरझाई टेढ़ी मेढ़ी सी, काई कितनी जम आई है,
तुम को भी अपने जीवन में, केवल यह ही मिल पाई है,
आँसू से गीली सूखी सी, भिखमंगे की रोटी सी है ।।

अच्छा है अपनी आँखों के, मोती इस में लग पाते हैं,
ये ऐसे वैसे द्वीपों की, सीपों में कब जग पाते हैं,
आभारी हो शृंगारों से, जल के ऊपर लोटी सी है ॥

अब तो इस हल्की नौका को, ही सारा बोझ उठाना है,
अवशेष रही हैं घड़ियाँ जो, इसमे ही रोज बिताना है
हम जैसे क्या तर पाएँगे, माँझी ! करनी खोटी सी है ॥

(५)

माँझी ! अब पतवार सँभालो ।
वर्षा हो चारों ओर रही, आँधी मुझको झकझोर रही,
गर्जन करते सागर के अब, ले जाकर उस पार बचालो ॥

लहरें करती उपहास अरे, गर्जन कर मेरे पास अरे,
अपनी टूटी डगमग करती, नौका का तुम भार सँभालो ॥

मेरे जीवन के कर्णधार, मेरी प्रतिमा के शिल्पकार,
मेरी वीणा के बीनकार, अब तो टूटे तार सँभालो ॥

(६)

माँझी ! तुमने प्यार किया है !
तुम नौका लेकर उतर पड़े, कुछ गहरी सी साँसे लेकर,
तुमने भी तट को छोड़ दिया, लम्बी सी विश्वासें लेकर,
रे किसने मजबूर तुम्हें भी, जाने को उस पार किया है ॥

पलकों ही पलकों के भीतर, तुम हँसने में कुछ रोते हो,
बरबस ये होठ हिलाने में, तुम कातर कितने होते हो,
कोई अबला ने निश्चय ही, दिल के भीतर वार किया है ॥

जो प्रेम-सुधा से भीगा हो, कैसे सूखा दिख सकता है,
वह कितना ही गम्भीर बने, कैसे रूखा दिख सकता है,
तुम निर्धन हो, फिर भी तुमने, राजा बन कर शृंगार किया है ॥

राकापति के संकेतो से, नित नीरव रजनी मे उठ कर,
इन सोती लहरों मे जाकर, किस जगती का आलिंगन कर,
सच कहो तुम्हारी आँखों ने, क्या छिप छिपकर अभिसार किया है ?

(७)

माँझी ! कुछ गाते भी जाओ ॥

क्रोधित तूफानी सागर में, टूटे दिल के टूटे स्वर में,
टूटी वीणा भी बज जाए, वह राग सुनाते भी जाओ ॥

घनघोर घटाएँ घुमड़ रही, फिर भी आशाएँ उमड़ रहीं,
सागर से मन की बढ़वानल को, तुम सुलगाते भी जाओ ॥

हम दोनों ही पथ के राही, है दोनों को संग चलना ही,
घायल के आगे घायल की, तुम व्यथा सुनाते भी जाओ ॥

सब व्यथा सुना डालो मुझको, सब कथा सुना डालो मुझको,
तुम अपनी करुण कहानी पर, आँसू ढलकाते भी जाओ ॥

रोते हो फिर भी मुस्काकर, धीमे धीमे स्वर में गाकर,
रह रह कर मुझको आज, किसी की याद दिलाते भी जाओ ॥

(८)

माँझी ! जीवन भर चलना है !

मेरा मन तो आनन्दित है, लोहा पारस ने परसा हो,
मेरी श्वासें मकरन्दित हैं, ज्यों भू पर पहली वर्षा हो,
इन को नित रसमय रखकर ही, जलनिधि की छाती दलना है ॥

पर मुँह लटकाए बैठे हो, तुम तो उतरी सी ढोलक से,
इतने रसहीन बने मानो, अंकों के पहले गोलक से,
हमको तो आगे बढ़ बढ़ कर, नित परवानों सा जलना है।।

उस तट पर बैठी ही होगी, पैरों को लटका कर जल में,
दीपशिखा सी जलती होंगी, जिसकी पिडली विरहानल में,
सागर जल उठता है जिससे, वो ही मेरी प्रिय ललना है।।

(९)

माँझी ! आओ उस पार चलें !!
अपने जग में रक्खा क्या है, उस ओर देख डालें क्या है,
आगए अधिक आगे अब तो, वापस कैसे हम लौट चलें।।

चाहे छाती हिल उठती हो, नौका भी डगमग करती हो,
बस जीवन के अंतिम क्षण तक, पापी लहरों का सिर कुचलें।।

लहरों से लड़ने से पहले, अब अंतिम निर्णय से पहले,
हम नाव डूबने से पहले, कुछ सुनले, कहले, कुछ हँस लें।।

(१०)

माँझी ! आग लगी है आओ !
मेरा अन्तस्थल जलता है, यौवन की सारी पीड़ा से,
नभ का वक्षस्थल जलता है, दिनकर की बलयुत क्रीड़ा से,
आग बुझाने को युग युग से, कैसी प्यास लगी है आओ।।

बड़वानल भी उठ उठ कर क्यों, प्रलय मचाता है रह रह कर,
पार निकलना है जल्दी ही, देर लगाता है कह कह कर,
इन जलती बुझती लहरों की, दुहरी मार लगी है आओ।।

हम तो विरही हैं हम को तो, ये धू धू करती लगती हैं,
चन्दा की शीतल किरणे भी, हमको कब अच्छी लगती हैं,
सुरलोकों की रँगरलियों मे, प्रतिदिन अमृत पीने आओ ।।

(११)

माँझी कुछ कुछ बोलो भी तो !
ऐसी घिग्घी क्यो बँधी हुई है ऊँचे नीचे होने से,
इन गर्जन करती लहरों में, सब धीरज अपना खोने से,
मीठे मीठे स्वर से कानों में कुछ मिसरी घोलो भी तो ।।

परवाह नहीं तूफानों की, मेरे सँग साथी होने पर,
मैं प्रलयंकर हो जाता हूँ, मेरी सी छाती होने पर,
क्यों बिल्कुल ही बलहीन बने, मेरा साहस तोलो भी तो ।।

तुम सोचो तो कितनी विपदा, आई अब तक मेरे आगे,
अब तुम ही अगर नहीं बोले, तो यह जीवन कैसे जागे,
तुम को यदि हँसना याद नही, मेरे आगे रो लो भी तो ।।

(१२)

माँझी ! बीड़ी पीना छोड़ो !
तुम जैसे इस को मनहूसी से जन्नत की सीढ़ी समझे,
दादे परदादे भी पी पी कर पीढ़ो दर पीढ़ी समझे,
पर साथ लगे जिन्दादिल के, अब तो रो रो जीना छोड़ो ।।

उस पार नहीं पीने दूँगा, तुम देखोगे आगे चलकर,
रे ललनाएँ मुस्काएँगी, यह अद्भुत दानवता लखकर,
तुम को ये ही प्रिय लगती है, अपने मन की वीणा छोड़ो ।।

माना तुम झुक आए काफी, फिर भी मन को चगा रखो,
सुख के दिन गुजर गए लेकिन, मत जीवन बेढंगा रक्खो,
सीने मे युग से जुडा हुआ, यह जूना तकमीना छोड़ो ।।

(१३)

माँझी ! नाव चलाना सीखो !
तुम अनपढ हो ज्ञात नही है, लहरों से उठती भाषाएँ,
बीत चले हो याद नही है, यौवन की जगती आशाएँ,
जीवन भर तुम रहे किनारे, मुझ से पार लगाना सीखो ।।

नौका से मैं नावाकिफ हूँ, पर मुझको चलना आता है,
भीषण भीषण तूफानों की, भी छाती दलना आता है,
सागर के सब संघर्षों में, हँसना और हँसाना सीखो ।।

मेरे व्यवहारो मे ज्यादा, ताकत है इन पतवारो से,
मेरी ललकारे तगड़ी है, वारिधि के इन दुतकारो से,
पतवारों के सँग सँग तुम भी, मन का जोर लगाना सीखो ।

(१४)

माँझी ! प्यार कहाँ पाओगे !
जैसे दुनियाँ में भी हमने, नित कल्पित ही प्यार किया है,
अपने यौवन के सपनों में, मनमारा अभिसार किया है,
वैसे वारिधि में रहकर भी, सुख-बौछार यहाँ पाओगे ।।

तुम हो, मैं हूँ, ये लहरें है, अगणित उद्वेलित हो जुटती,
आज खुशी से आलिगन कर, ये देखो सब की सब उठतीं,
इतना विस्तृत इतना जीवित, यह परिवार कहाँ पाओगे ।।

पानी में अपने आते ही, इनको कैसा हर्ष हुआ है,
ज्योंही तट के नीचे उतरे, त्योंही यह उत्कर्ष हुआ है,
जब चाहो तब नाव चलाओ, यह अधिकार कहाँ पाओगे ?

(१५)

माँझी ! उस तट को मत देखो !
जिसको हमने छोड़ दिया है, जिससे नाता तोड़ लिया है,
उसमें नन्दन वन बनने पर, अब उसको किंचित मत देखो ।।

तरु सरिता में गिर जाता है, तो कब उल्टा बह पाता है,
वैसे अपने सागर के भी, पार लगो पीछे मत देखो ।।

हम जिस दर की ओट खड़े थे, पर जिस घर से लौट पड़े थे,
जीवन में मरते दम तक भी, माँझी ! उस घर को मत देखो ।।

(१६)

माँझी ! क्या हम नालायक है ?
सब ने जाने क्या समझा है, जब से हमने तट को छोड़ा,
दुनियाँ बकती ही रहती है, जब से हमने नाता तोड़ा,
पर हम कभी न झुकने पाए, हम तो अपने ही नायक है ।।

हम मे बस केवल यही दोष, अपनी डफली पर गाते हैं,
औरों के दुख, अपने दुख को, कब सुनते और सुनाते है,
फिर भी क्या इतने गिरे हुए, बिलकुल बेहूदे गायक है ।।

चाहे अपने स्वर को सुनकर, गदहे शरमाकर भग जाएँ,
चाहे रोटी खाते कुत्ते, भी आकर पीछे लग जाएँ,
जग को न सही अपने ही को, कुछ भी हो पर सुख दायक है ।।

(१७)

माँझी ! लहरें क्या कहती हैं ?

मारुत से, मेघों से घिरकर, ये सहसा चकरा जाती हैं
तूफानों के आ जाने पर, ये कितनी घबरा जाती हैं,
कुछ क्रन्दन सा कर उठती हैं, आघातें कितनी सहती हैं ।।

कुछ सोचो समझो कुछ बोलो, आखिर तुम भी तो मानव हो,
चाहे कितने ही अनपढ़ हो, मैं कब कहता तुम दानव हो,
क्या तुम में भी कुछ ऐसी ही, यौवन की लहरें बहती हैं ।।

हम इच्छुक हैं उर की लहरे, इन लहरो के सँग लग जाती,
पर आगे बढ़ते ही फौरन, ये दूर सरक कर भग जाती,
ज्यो ज्यों हमदर्दी दिखलाओ, त्यों-त्यों मानो ये दहती हैं ।।

(१८)

माँझी ! तुम कितने अच्छे हो !!

तुम पढ़े नहीं, कुछ लिखे नहीं, फिर भी तुममे कोमलता है,
इस मौन तुम्हारे अन्तर में, अतिशय मोहक मंजुलता है,
खिल खिल कर कैसे हँसते हो, मानो तुम बिल्कुल बच्चे हो ।।

कैसी भावुक है चितवन यह, कुछ घायल सी, कुछ प्यासी सी,
मानो इसमें है विरही की, कोई सुखपूर्ण उदासी सी;
ये बरबस रो रो कहती हैं, तुम दुख सहने में कच्चे हो ।।

इस टीस भरे मादक स्वर मे, कैसा मोहक आकर्षण है,
इस शान्त तुम्हारे चेहरे मे, कुछ सुख दुख का सम्मिश्रण है,
सब अरमानों को दबा दबा कर भी तुम कितने कच्चे हो ।।

(१९)

माँझी ! नाव सँभल कर खेना !!

गिरती उठती इन लहरों से, लहरा जाती यह डगमग हो,
छिपती, दिखती जाती किरणों की आभा से अति जगमग हो,
तूफानों की चहल पहल है, मत तुम तनिक दहल कर खेना ।।

ज्यादा से ज्यादा यह होगा, मर जायगे इस अम्बुधि में,
मरते लज्जानत हो भू पर, हँस पाएँगे इस जलनिधि मे,
आँसू गिरने पाएँ न कभी, रे पिघल पिघल कर मत खेना ।।

देखो ऐसा होवे न कभो, नौका मुड़ जावे उस तट को,
आए जिसको हम ठुकराकर, उस दुनियाँ के ही मरघट को,
जितना चाहो तारे उगने, पर तुम खूब मचल कर खेना ।।

(२०)

माँझी ! तुम तो मुँहफट निकले !!

सिखलाया है आखिर किसने, तुम को दिल वालों सँग रहना,
नारी के सँग रहने वाले, बीमारों से बातें कहना,
मुझ से मरने की कहते हो, तुम तो बिल्कुल चौखट निकले ।।

अफसोस तुम्हारे ही बस में, लेखक बेचारा रहता है,
विज्ञान तुम्हारे मस्तक से, हाथों मे आकर रहता है,
निर्माण हमारे से बढ़ कर, विध्वंस बने, उत्कट निकले ।।

यदि उठ जाएँगे हम जग से, तो तुम कैसे बच पाओगे,
कहना मानो जीना हो तो, हमको भी यार डुबाओगे,
बस एक हमारा लक्ष्य बने, जिससे सारी झंझट निकले ।।

(२१)

माँझी ! पतवार मुझे सौंपो !!

अब साँस तुम्हारी भरती है, ये क्रोधित हो छिप जाएँगी,
कमजोर तुम्हारे हाथों को, झकझोर विदा हो जाएँगी,
उस पार उतरने का उत्कट, यह सारा भार मुझे सौंपो ।।

तुमने भी कसर नहीं रक्खी, आत्मिक बल को अजमाने में,
नित धाक जमा दी धीरज से, हँस हँसकर क्रूर जमाने में,
अब सुस्ता लो फिर लड़ने को, होने तैयार मुझे सौंपो ।।

मुझ को अपनी कर लेने दो, इन लहरों से लड़ लेने दो,
कुछ इन को भी बढ़ लेने दो, थोड़ी ऊँची चढ़ लेने दो,
तुम थके हुए हो युग युग से, अब ये हथियार मुझे सौंपो ।।

(२२)

माँझी आज न पीछे होना !

होड़ लगी है पतवारों में, उद्वेलित जल के नारों में,
क्रूर थपेड़ों से घबराकर, देखो आज न धीरज खोना ।।

तुम सँभलोगे मैं सँभलूँगा, तुम दहलोगे मैं दहलूँगा,
आज हृदय का भार तुम्हीं पर, सपने में भी मत तुम रोना ।।

उठने दो पीड़ा बाहों में, हँसने दो सब को राहों में,
इस पानी में अजर अमर इक, सृष्टी निज साहस से बोना ।।

(२३)

माँझी ! सुन लो, क्या सोते हो ?

अब तक जीवन जैसे बीता, उस पर तो रोना आता है,
क्या याद रखेंगे जग वाले, हम को भी सोना आता है,
लेकिन इस गहरे वारिधि में, क्यों चलने में ही रोते हो ?

हमने जीता आधा सागर, केवल आधा बच पाया है,
आधी पीड़ा बस और रही, कितना इस ने तड़पाया है,
हम विजय काल पर कर लेंगे, इतने चिन्तित क्यों होते हो ?

दुनियाँ में अब तक कोई ने, मृत्यु को जीता है न कभी,
यदि हम भव से तर जाएँगे, तो तर जाएँगे लोग सभी,
नौका कुछ जल्दी चलने दो, जीवन अपना क्यों खोते हो ?

(२४)

माँझी ! आज हृदय कुछ कहता !
आग लगी है इस सागर में, तूफानों की घुड़दौड़ों से,
मैं भी पिघल पड़ा हूँ देखो, छाती पर पड़ते कोड़ों से,
यह वर्षा की साँझ रँगीली, लोहू आज हृदय से बहता ।।

चूर हुआ हूँ मैं पीड़ा से, पर अरमान नहीं रुक सकता,
प्राण चले जाएँगे तन से, पर यह गान नही रुक सकता,
लो कवि का गौरव तो अब भी, सब पर जय पाने की कहता ।।

सुस्तालो तुम भी कुछ रुक कर, हम कैसे इनसे बीतेंगे,
वीणा के तारों को लेकर, तलवारों को हम जीतेंगे,
लहरों का झोका तो अन्तर, समझ हिंडोला सहता ।।

(२५)

माँझी ! आज शिथिल मत होना ।।
आँधी वर्षा को देख देख, घबराकर आँखें मत मींचो,
इस वारिधि के बढ़वानल से, डर कर पतवारें मत खींचो,
सुन कर इन सब के अट्टहास तुम अपना धीरज मत खोना ।।

रे कम्पित होकर झुको नहीं, इन तूफानों के गर्जन से,
आगे बढ़ने से रुको नहीं, क्रोधित लहरों के तर्जन से,
आने वाले दीवानों के, पथ में तुम काँटे मत बोना ॥

यद्यपि सदियों से छिपा हुआ, उर मे कोमलतम क्रन्दन है,
पर आज हमारी नस नस में, मर मिटने का स्पन्दन है,
इस मूक सुलगती ज्वाला को, अपने आँसू से मत धोना ॥

चाहे गुमराह बने घूमें, जग मे जीने की चाह नहीं,
पर आह न मरते दम निकले, मर जाने की परवाह नही,
री पवन ! हमारा अन्त बता, दुनियाँ के आगे मत रोना ॥

(२६)

माँझी चुपचाप नही बैठो !

हम को उतना ही चलना है, जितना रवि दिन भर में चलता,
जीवन में आलस करना तो, मुझको नित कंटक सा खलता,
तुम इतनी लम्बी मंजिल का, बन कर संताप नही बैठो ॥

पूरब पश्चिम मिल जाएँगे, हम लोगों के इस उपक्रम से,
सब पार उतरने आएँगे, शिक्षा लेकर अपने श्रम से,
तुम मौन हुए इस अवसर पर, कर के यह पाप नही बैठो ॥

जग के कितने ही नर नारी, निशदिन तत्पर बन जाएँगे,
सागर में अपने पद-चिन्हों, पर चलकर वे तर जाएंगे,
उनके हित अपने हित, भी तुम, बन कर अभिशाप नहीं बैठो ॥

(२७)

माँझी ! तुम जीते मै हारा !

तुम को इतना डाँट चुका हूँ, फिर भी तुम गंभीर बने हो,
कितना भला बुरा बक डाला, लेकिन तुम प्रणवीर बने हो,
इस दृढ निश्चय पर खुश होकर, तुम पर मैंने सब कुछ वारा ।।

वैसे ही मेरी पीड़ाओं, पर थोड़ा उफ तो कर देते,
जब मेरे आँसू गिरते थे, तब थोड़ा रुख तो कर लेते,
मेरी बाधा औ क्रोधानल, अब तो दूर हुआ है सारा ।।

मेरे सब उत्थान पतन में, तुम हो एकरूप, बैठे थे,
मानों पबलिक के सन्मुख बन, अविचल एक भूप बैठे थे,
मेरे सूने वक्षस्थल में, जैसे प्यारा एक सितारा ।।

(२८)

माँझी ! संध्या होने आई !

काले मेघों के भीतर से, लोहू की धार निकलती है,
मर्माहत होकर बिजली से, इनकी भी छाती जलती है,
अपने घावों को भर देने क्या, अपने सँग रोने आई ।।

या जग की अनुपम ललनाएँ, जो नभ में अब तक जा पाई,
उन का सिदूर नजर आता, प्रीतम के सँग जो गा पाईं,
यह जलधर की धारा उन का, अलसाया तन धोने आई ।।

जो वीर-प्रसव कर सकती थीं, वे तो जल जलकर राख हुई,
भू पर चमकीली कामनियाँ, कायर सुत पाकर पाक हुईं,
कुछ ऐसा लगता है अब तो, धरती बंध्या होने आई ।।

(२९)

माँझी ! नौका सीधी कर लो !!

कोई भी कुतुबनुमा अपने, सँग में न यहाँ जो बतलाते,
हम तो धड़कन को लखते हैं, बतलातीं उत चलते जाते,
इन मौन दिशाओं में कोई, की ओर हमारा ध्रुव करलो ॥

केवल इतना ही ध्यान रहे, वापस हम आ पाएँ न कभी,
जिस मरघट को हम ने छोड़ा, उसमे फिर जा पाएँ न कभी,
चलते जाओ, थक जाओ तो, दो चार कही आँसू भरलो ॥

अम्बर तो काला ही काला, बादल जिसने उर में पाला,
सूरज केवल ऐसा दिखता, मानो एक छोटा सा छाला,
रजनी आने पर भी तारों, की आस न कर आहें भरलो ॥

(३०)

माँझी ! धड़कन कमजोर बनी !

मेरा भी मन मरने आया, मेरा भी दम भरने आया,
जिन श्वासों के बल पर आया, वे श्वासे ही झकझोर तनीं ॥

कोई बदली घनघोर बनी, इस नभ मे चारों ओर तनी,
मेरी बरसातें थी जितनी, वे जाने क्यों अब और बनी ॥

उस तट की रेखाएँ जितनी, झूठी ललचाती है कितनी,
ये लहरे भी बनते बनते, द्रुपदा के पट का छोर बनीं ॥

(३१)

माँझी ! करना हो सो करलो !

मर जाने का क्या तुम में भी, चस्का पैदा हो आया है,
इन उठती लहरों को लख कर, मेरा जी तो घबराया है,
तुम मौन हुए क्यों बैठे हो, पीड़ा हरना हो तो हरलो ॥

क्या थक कर इतने चूर हुए, मै तो दुख सहता आया हूँ,
तुम तो सुनते ही हो न कभी, अब तक जो कहता आया हूँ,
छोड़ोगे क्या पतवारों को, आँसू भरना हो तो भरलो ।।

तुम भी डूबोगे मेरे सँग, यह पापी ऐसा आया है,
देखो सारे तूफ़ानों ने, भीषण संग्राम मचाया है,
अब भी मौका है बचने का, माँझी, तरना हो तो तरलो ।।

(३२)

माँझी ! कुछ तुम भी तो बोलो !
पहले संकोच किया करते, बातों को सोच किया करते,
यह सागर ऐसा विस्तृत है, अपना अंतर तुम भी खोलो ।।

नर का दम क्या जो टोक सके, पल पल में हम को रोक सके,
अपनी पीड़ा को शब्दों मे, आखिर कुछ तुम भी तो तोलो ।।

जग वाले धन के दास बने, हम तो हर रोज उदास बने,
वे कहते अपने को मानव, उनकी सब हरकत को जो लो ।।

(३३)

माँझी ! बातें अभिशाप हुईं !
आखिर हमने रस्ता पकड़ा, हम को जग ने सस्ता जकड़ा,
मदिरा पीएँ कैसे जा कर, भूखे मानव की शाप हुईं ।।

जिन बातों से सब हँसते थे, जिन बातों से घर बसते थे,
वे तो गाली बनतीं जाती, रे क्रोधित जग में पाप हुईं ।।

हम जलने से थकते न कभी, हम कच्चे हैं पकते न कभी,
अपने घायल उर के आगे, ये बरसातें तो ताप हुईं ।।

(३४)

माँझी ! मोती बनते जाते !

जैसे ही मैं कुछ कहता हूँ, जैसे ही पीड़ा सहता हूँ,
आँखों में ये बरसात बने, अगणित बह बह चलते जाते ॥

सीपे गर्भीली बन बैठीं, मेरे आँसू पाकर ऐंठी,
सागर के अन्तर में गौहर, चुपचाप सदा पलते जाते ॥

आखिर ये मेरे मोती है, इनमे भी धड़कन होती है,
देखो ये भी इस दुनियाँ से, मेरे सम ही तलते जाते ॥

(३५)

माँझी ! आँसू बहने भी दो ।

इनसे मेरा जी लगता है, इनमें कितनी निर्मलता है,
इन से रसमय जीवन मेरा, अपनी गाथा कहने भी दो ॥

कोंपल आती ज्यों डालों पर, यौवन आता ज्यों गालों पर
त्यों मेरी आँखों में आँसू, मुझ को रोता रहने भी दो ॥

जैसे तुम बीड़ी पीते हो, वैसे मैं आँसू पीता हूँ,
यह मेरा मादक एक व्यसन, मुझ को जोता रहने भी दो ॥

(३६)

माँझी ! साथी हो गैर नहीं !

तुम जैसा मिलने वाला हो, सँग सँग नित चलने वाला हो,
तब जाकर मैं चल पाऊँगा, अपने बढ़ने में देर नहीं ॥

अब तो दुनियाँ को छोड़ गए, सब जग से नाता तोड़ गए,
तरणी तरती ही जायगी, हो सकता है अब फेर नहीं ॥

हम खुल खुलकर हँस सकते हैं, जब चाहें तब रुक सकते हैं,
अपनी नौका भी तम में है, पर जग का सा अन्धेर नहीं ।।

(३७)

माँझी ! तुम से कुछ भी कह दूँ !

तुम कितने भोले भाले हो, मानो तुम मेरे साले हो,
दिखते कुछ काले काले हो, तुम करते जो कुछ मै कह दूँ ।।

यह नौका है औ बस तुम हो, यह पीड़ा है औ बस तुम हो,
धीरे धीरे चलते चलते, तुम को अपना अन्तर देदूँ ।।

ये सीपे क्या दे पाएँगी, जल से ऊपर क्या आएँगीं ?
मुझ में जितने मुक्ताकरण हैं, मैं आँसू में नित बह बह दूँ ।।

(३८)

माँझी ! हम न्यारे ही अच्छे !

औरों के काले करने से, उर में नित छाले करने से,
हम कैसे मिट सकते जग से, हम तो दुतकारे ही अच्छे ।।

छाया पानी में पड़ जाती, क्या काया उस से सड़ जाती,
लखने दो इनको छाया को, हम बिन सतकारे ही अच्छे ।।

रजकरण उड़ते हैं अम्बर में, कर सकते क्या आडम्बर में,
अम्बर तो ऊँचे का ऊँचा, हम जग से हारे ही अच्छे ।।

(३९)

माँझी ! आखिर कितने रोवें !

सब कामों की हद होती है, बलिदानों की हद होती है,
मरते मरते भी गीत लिखे, इस से ज्यादा अब क्या होवें ।।

आखिर ये मानव के कर हैं, चाहे मिटने को तत्पर हैं,
गहरे आँसू के सागर को, इन हाथों से कैसे ढोवें ॥
जिह्वा से हम आकारों का, इन स्वर्गो के शृंगारों का,
कैसे वर्णन कर सकते है, अच्छा हो अब जी भर सोवें ॥

(४०)

माँझी ! सागर को मत देखो ॥
चलना ही अपना ध्येय बना, मर जाना ही तो गेय बना,
तूफानों के आजाने से, क्षणभंगुरता को मत देखो ॥
इच्छा करते फल की जो ही, बन सकते वे क्या निर्मोही,
हम तो गीता के गायक है, ये लम्बी लहरें मत देखो ॥
चलते जाओ, चलते जाओ, थक जाओ, चाहे मर जाओ,
पर जग के वैभव मे फँसकर, मरने जीने को मत देखो ॥

(४१)

माँझी ! अपना बल अजमाओ !
बलवान तरंगे उठती है, उठती उठती ही लुटती हैं,
जल्दी से जल्दी जम जाओ, अब इन को तट तक पहुँचाओ ॥
अब तो कुछ और जमाना है, अपना फिर कहाँ ठिकाना है,
या तो इन पर अधिकार करो, या फिर धक्के इनके खाओ ॥
बढ़ना ही है हम को आगे, लड़ना ही है हम को आगे,
इन लहरों के शरमाने से, इन के चक्कर मे मत आओ ॥

(४२)

माँझी ! हम रुक सकते है क्या ?
हम ऐसे फौलादी नर है, हम केवल अपने अनुचर हैं,
कोई कैसा गरजे तरजे, महाराजा झुक सकते हैं क्या ?

इस सागर का मन्थन कर के, प्रतिदिन भरसक गुँजन कर के,
हमने कविता रस पाया है, दैवी जन मर सकते हैं क्या ?

हम तो ईश्वर है अब खुद ही, बस एक बने अब तो खुद ही,
गाली बकने दो दुनियाँ को, हम सुन कर थक सकते है क्या ?

(४३)

माँझी ! तैयार नही हो क्या ?
यौवन के सँग तुम बैठे हो, पर पतझड़ से क्यों ऐंठे हो,
मेरे सँग हँसना ही होगा, क्या तुम साकार नही हो क्या ?

तुम भी तो अपना रँग बदलो, तुम भी तो अपना ढँग बदलो,
तुम युवक हृदय के मान भरे मादक से प्यार नही हो क्या ?

जीवन नित पलता जाता है, लेकिन यह चलता जाता है,
तुम अपनी नाव चलाते हो, मेरी पतवार नहीं हो क्या ?

(४४)

माँझी ! पतवार कहाँ की है ?
नौका से भिन्न सदा रहती, जल में यह निम्न सदा रहती,
प्रतिदिन हिलती डुलती रहती, कोमल सुकुमार कहाँ की है ॥

जो विश्व-विजय कर सकती है, जो एक प्रलय कर सकती है,
यह छोटी सी चमचम करती, नंगी तलवार कहाँ की है ॥

कुछ भी क्या अब तक जान पड़ा, रे मानव तो निष्प्राण पड़ा,
हम भीगे तो जाते है पर, यह सुख बौछार कहाँ की है ॥

(४५)

माँझी ! हम नर क्यो बन पाए ?

अपनी भी मिट्टी की काया, अपनी भी मिट्टी की माया,
हम को भी कोई बेसुध ने, सुध ला लाकर नित तड़पाए ।।

हम भी तो उर के दास बने, हम भी कोई के हास बने,
जैसे कन्ता घर पर रहते, वैसे बाहर हो कर आए ।।

आखिर निज को कैसे रोकें, ज्वाला मे तन कब तक झोके,
जलते जलते नित पीड़ा से, हम भी खुश होकर मुस्काए ।।

(४६)

माँझी ! वर्षा है रुक जाओ !

बह जाने की आशंका है, लहरो में इत उत घबराकर,
सह जाने की स्पर्धा है, क्या तुम मे इन से टकराकर,
घनघोर गरजते मेघों के, आगे थोड़े से झुक जाओ ।।

इन तूफानो की छाती पर, हम गर्जन करते जाते हैं,
नौका "डूबूँ डूबूँ" करती, लेकिन हम हँसते जाते हैं,
इस क्रोधित सागर से थक कर, इस नौका मे ही लुक जाओ ।।

वीरों की श्रेणी में अपनी, मरने की बारी आई है,
हम पार पहुँच पाए न कभी, लेकिन तैयारी आई है,
कर्त्तव्यों से इच्छा हो तो, अब भी मौक़ा है हट जाओ ।।

(४७)

माँझी ! अवसरवादी न बनो !

कोई नर तो ऐसा हो जो, सब के हित की कहता हो वो,
औरों की भी पीड़ा जानो, अपने अपने आदी न बनो ।।

वैसे तो सब ही कहते हैं, रहने को सब ही रहते है,
कुछ काम करो अब तो केवल, बक बक कर बेकवादी न बनो ।।

तुम दूर रहो इस तृष्णा से, प्रलयंकर कोमल कृष्णा से,
रे तुम भी मुझ जैसे घायल, होकर अब उन्मादी न बनो ।।

(४८)

माँझी ! क्या जीवन शेष रहा ?

मैं तो विश्वास नहीं करता, इससे ही हास नहीं करता,
यदि साँस बचे है कुछ दिन तो, रे कितना सा, लवलेश रहा ।।

जब जग से नाता टूट गया, जब प्रेम हमारा छूट गया,
तो सुख तो हम से रूठ गया, औ बाकी अपना क्लेश रहा ।।

वापस जाने को जी करता, अतर सी सी, सी सी करता,
थोड़ा थोड़ा सा दिखता है, देखो अपना वह देश रहा ।।

(४९)

माँझी ! वह जग भी अच्छा था !

वैसे तो हम रोते ही थे, रोते भी थे, सोते भी थे,
कितनी ही बातों में लेकिन, इस वारिधि से तो अच्छा था ।।

रे हम, कुछ लिख तो पाते थे, बालाओं तक जा पाते थे,
ऐसे गहरे सागर से तो, वह जग छोटा सा अच्छा था ।।

हम चलने को तो चल निकले, हम जलने को तो जल निकले,
लेकिन आने पर ज्ञात हुआ, रहना, तजने से अच्छा था ।।

(५०)

माँझी ! कुछ क्षरण चिल्लाऊँ क्या ?

योगी बनकर क्या पाएँगे, वैभव को भी ठुकराएँगे
भोगी बनने को जी करता, मैं तड़पूँ और तड़पाऊँ क्या ?

हर रोज़ सुलझने जगते है, हम बड़े समझने लगते हैं,
पर हार चला हूँ गुत्थी से, रे सुलझूँ औ सुलझाऊँ क्या ?

ऊधो माधो से हम दोनों, ब्रज में तो योगो थे दोनों,
तुम ही बोलो, क्यों मौन हुए, मै रोऊँ औ रूलाऊँ क्या ?

(५१)

माँझी ! वह भूमि हमारी है !

छीनी है किस ने आज उसे, बीनी है किस ने आज उसे,
शासन ही सारा मन्द हुआ, भूपती विहीन बिचारी है ॥

जिस में मैं बचपन में खेला, जिस में लगता था नित मेला,
जिस के कण कण में प्रेम भरा, वह कितनी मुझको प्यारो है ॥

रे हम कुछ भी तो कर ने सके, रे उसके हित हम मर न सके,
वह भूखी बैठी रोती है, सागर में नाव हमारी है ॥

(५२)

माँझी ! ब्रज की नगरी कैसी ?

रहती है अब कुछ चिन्तित सी, मानो सब सुख से वंचित सी,
कुछ विस्तृत सी कुछ झंकृत सी, उसकी डगरी डगरी कैसी ?

उस काली नदिया* के तट पर, हम न्हाने जाते थे जिस पर,
उस भाव भरे मादक जल से, तरु शाखाएँ लगती कैसी ॥

उस मे भी नाव चलाते थे, उस मे भी गीत सुनाते थे,
इस सूखे सागर के आगे, वह गीली सी सगरी कैसी ?

(५३)

माँझी ! आदेश नहीं मिलता !

मै तो लो मर ही जाऊँगा, उन के हित क्या कर पाऊँगा,
लक्खन रोने के भी न जिन्हें, बनते हैं वे ही मतवाले ॥

मुझ को भी उनकी परवा थी, रहती दिन भर ही चिन्ता,
लेकिन उनने ही दूर किया, जिनको अब तक मैंने पाले ॥

भूखों ही मरते जगवाले, पड़ते है क्यों मुँह मे छाले,
इस जनता से तो जीने का, कोई संदेश नही मिलता ॥

(५४)

माँझी ! नाव नही बोलेगी !

चलती आई है बेचारी, यह सागर तो अत्याचारी,
हम पर भी इस का शक होता, पर मुँह नहीं अभी खोलेगी ॥

जग से ऐसी रूठी है क्या, या फिर बिल्कुल झूठी है क्या,
यह तो मर मिटने पर तुलती, हम को भी पल पल तोलेगी ॥

इसको तजकर कैसे जाएँ, जल से बचने कैसे पाएँ,
यह भी अंतिम क्षण तक सँग है, मरने पर भीतर डोलेगी ॥

*काली नदी से अभिप्राय यमुना से है और ब्रजनगर की काली-सिंध नदी से भी है। 'ब्रजनगर' कवि का जन्म स्थान है, जिसका नाम अब झालावाड़ हो गया है।

(५५)

माँझी ! क्या नैय्या डूब रही !

क्या कम्पन होने वाला है, क्या पानी आने आला है
क्या थक कर यह मजबूर बनी, क्या चलते चलते ऊब रही ॥

तुम भी मुँह को मोड़ोगे क्या, पतवारों को छोड़ोगे क्या,
यदि रूठ गये तुम घबरा कर, तब तो लो यह भी खूब रही ॥

बस असली ताक़त अजमाओ, रे रुक रुक कर मत तड़पाओ,
अपना मुँह उस तट को कर के, देखो अब तो वह दूब रही ।

(५६)

माँझी ! देखो झोका आया !

नौका कितनी हिलडुलती है, पगली इस में मिलजुलती है,
मानों लहरों मे लखने को, कोई एक झरोखा आया ॥

हम भी उछल पड़े सहसा ही, हम भी मचल पड़े सहसा ही,
तरणी क्रीड़ा करती जाती, देखो कितना चोखा आया ॥

सागर तो सेठों से बढ़कर, लम्बे पेटों से भी बढ़कर,
दिखने में यह तो सुन्दर सा, कितना झूठा धोखा आया ॥

(५७)

माँझी ! आज हमारी बारी !

कितने लोग मरे अम्बुधि में कितने पोत गिरे वारिधि में,
अब तो बाहें तानों डट कर, कर लो मरने की तैय्यारी ॥

हम को भी बतलाना होगा, हम को भी जतलाना होगा,
कैसे मानव मरते जग में, होते हैं जो कुछ उपकारी ॥

हम में कौन यहाँ कायर है, रे हम मतवाले शायर हैं,
हम भी तो देखें क्या होता, कोई भी हो अत्याचारी ॥

(५८)

माँझी ! तिरना आता है क्या ?

मानव तो जल से निकला है, अब तो मिट्टी का पुतला है,
नर से नारायण बन कर के, सुख से घिरना आता है क्या ?

इस को ही अपना घर समझो, मछली को तो भोजन समझो,
तुम तो लाओ, मैं मारूँगा, तुमको लाना आता है क्या ?

मैं तो कब तक तैर सकूँगा, ऊपर कब तक ठैर सकूँगा,
जल में घाड़ियालों की भाँती, तुमको फिरना आता है क्या?

(५९)

माँझी ! तुम भी तो कुछ चाहो !!

माना तुम बिल्कुल पक्के हो, पर मेरे सँग में कच्चे हो,
तुम को बच्चा बनना होगा, मैं मुस्काता हूँ तुम आओ ।।

मुझ को चुप रहना खलता है, क्या तुम मे शोणित चलता है,
बैठे बैठे बोर बने तो, उस से पहले ही मर जाओ ।।

मैं ही तो रोता चिल्लाता, यौवन जब दूभर हो जाता,
देखो मै ही गाता जाता, आखिर तुम भी तो कुछ गाओ ।।

(६०)

माँझी ! आज नहीं चल सकते !

म्लान हमारी गात बनी है, रे कैसी यह बात बनी है,
पानी भी तो पी न सके हम, दिल को और नहीं तल सकते ।।

हम को तो छिप-जाना ही है, अब तो बस दुख पाना ही है,
आए हैं जो दुर्दिन अपने, वे लवलेश नहीं टल सकते ।।

अम्बुधि में कब तक जल जाएँ, आखिर हम कब तक चल पाएँ,
जलते जलते ही युग बीते, लेकिन आज नही जल सकते ।।

(६१)

माँझी ! रजनी हो आई है !

बेकार न खेओ नैय्या को, रोना धोना मुझ को न रुचे,
अब तो तुम भी दिखते न मुझे, अब तो मैं भी दिखता न मुझे,
इस संकट के अवसर पर भी, मेरी छाती इठलाई है।

साहस रक्खो हम मानव हैं, सागर मे पैदल जा सकते,
हम में वो शक्ती अन्तर्हित, जिस से उड़ कर भी जा सकते,
क्यों मौन तुम्हारे अंतर के, सुख की कलियाँ मुरझाई है ?

मेरी बाहों में छिप जाओ, मैं रोना सुन सकता न कभी,
मरना ही होगा तो तुम को, मरते मैं लख सकता न कभी,
इस सिसकी को सुन सुनकर तो, मेरी छाती भर आई है।

(६२)

माँझी ! आज मरे बैठे हैं !

कोई तो पीले पड़ जाते, कोई कुछ नीले पड़ जाते,
कोई बिल्कुल काले होते, हम तो आज हरे बैठे हैं।

कोई पापी होकर मरते, नित अभिशापी होकर मरते,
हम तो अपने पापों को भी, देखो पुण्य करे बैठे हैं।

सांसें लेते है अब भी हम, बातें करते हैं अब भी हम,
मरने पहले आखिर इतने, सब क्यों हाय डरे बैठे हैं।

(६३)

माँझी ! सो जाओ रहने दो !

कहते कहते हम हार गए, अपने को हम दुतकर गए,
चाहे डूबे चाहे तैरे, नौका जब चाहे, बहने दो ।।

(६६)

माँझी ! अब तो ध्यान करूँगा !

जलनिधि क्रुद्ध हुआ है हम से, कैसा युद्ध हुआ है हम से,
हमने जिससे रोज़ घृणा की, उसका अब सम्मान करूँगा ।।

मेरा जीवन गा न सका है अब तक सुख को पा न सका है,
मेरा यौवन रीता घट है, अब मैं इस में प्राण भरूँगा ।।

चाहे तन,मन, धन लग जाए, पर आभा मुझ में आ पाए ,
जो जीवन बचने पाया है, उसको भी बलिदान करूँगा ।।

(६७)

माँझी ! एक दफा फिर खेलें !

अपने साहस को समझाओ, जो रूठा है उसे मनाओ,
जैसे पृथ्वी पर खेलें हैं, वैसे ही सागर में खेलें ।।

गति से ही तो सब जीवन है, अब दुर्गति में नव जीवन है,
अपनी फौलादी छाती पर, तूफानों को फिर से झेलें ।।

मर मिटने मे अद्भुत सुख है, रे छिप जाने में क्या दुख है,
अब तक जिन्हें कुचलते आए, फिर से उन लहरों को ठेलें ।।

(६८)

माँझी ! वर्षा से क्यों डरते ?

हर साल पयोधी बनता है, क्रोधी हो हो कर चलता है,
ये बादल तो प्यासे नर की, प्यासी घायल पीड़ा हरते ।।

अच्छा है कोई पास नहीं, अच्छा है कोई त्रास नहीं,
वर्ना हम कैसे ये सारी, बहकी बहकी बातें करते ।।

तुम वृद्ध हुए हो फिर भी तो, तुम गृद्ध हुए हो फिर भी तो,
जीवित रहने की तृष्णा है, बातों बातों में ही मरते ॥

(६९)

माँझी ! सुनते हो ये बातें ?

मालुम है तुम को तो सब ही, मैं बेसुध हो जाता तब ही,
फौरन कहने लग जाता हूँ, अपनी उलटी सीधी बातें ॥

रे क्यों चुप रहने को कहते, यौवन होता तो कब सहते,
अब तक सुख में तिरने लगते, ये वर्षा की काली रातें ॥

मैं अपना मन खो पड़ता हूँ, वर्षा लख कर रो पड़ता हूँ,
भावुक बन कर बकने लगता, लेकिन ये क्षम्य सभी बातें ॥

(७०)

माँझी ! फिर से दाव लगाओ !

जैसे प्याले में कुछ मधु हो, प्यासा पीने को उत्सुक हो,
पीने भी दो अंतिम बूँदें, मेरे फिर से घाव जगाओ ॥

कवि तो क्षीण नहीं हो सकता, जग से जीर्ण नहीं हो सकता,
लेकिन फिर भी जो मन्दा है, फिर से वो ही चाव बढ़ाओ ॥

या तो पार हुए जाते हैं, या फिर हम डूबे जाते हैं,
यह स्पर्धा कब डूबेगी, माँझी ! फिर से नाव चलाओ ॥

(७१)

माँझी ! लहरों को ललकारो !

चाहे ये नभ से मिल जाएँ, चाहे ईश्वर ही आ जाएँ,
चाहे अगणित मिल कर आएँ, इन तूफानों को संहारो ॥

लोहू भी तो चन्दन जैसा, रोके फिर यह बन्धन कैसा,
खीचो अपनी तलवारों को, अपने जीवन को शृंगारो ।।

यो तो काम नही चल सकता, यों आराम नहीं मिल सकता,
जिन ने हम को दुतकारा है, उन को ही दुतकारो मारो ।।

(७२)

माँझी ! मेरा खून चढ़ा है !
बाहे अब तो फड़क रही है, लहरें क्यों ये भड़क रही है,
आगे आ तो जाएँ मुझ तक, मेरे उर मे खून बढ़ा है ।।

पहले भी जो जो मरते थे, वे क्या मरने से डरते थे,
अब तक मानवता के पीछे, पैसे पैसे चू।* लड़ा है ।।

चाहे लहरे मुझ को ढक लें, मरने पीछे हर कुछ बक ले,
लेकिन मेरे हाथों से अब, यह कैसा मजमून बढ़ा है ।।

(७३)

माँझी ! साहस को मत खोओ !
सारे जग को तो धिक्कारा, हम ने लहरों को ललकारा,
अपने पौरुष से पाया जो, उज्जवल इस यश को मत खोओ ।।

तुम सम्पूर्ण तुम्हारे बस में, तुम भरपूर तुम्हारे जस में,
नीरस बनकर या घबराकर, अब तुम परवस में मत होओ ।।

तरणी में ही इतने डरते, तरुणी सुध मे आँसू भरते,
लड़ने में भी तो रस आता, अपनी नसनस को तुम जोओ ।।

---

* आटा

(७४)

माँझी ! अब निश्छल हो जाओ !

यदि अब भी तुम्हे मुकरना हो, अब भी पीछे पग धरना हो,
तो पहले ही मुझसे कह दो, पल में हट जाओ टल जाओ ॥

काँटे से काँटा निकलेगा, चाँटे से चाँटा न खलेगा,
मनचल के सँग मनचल बनलो, चंचल सँग चंचल हो जाओ ॥

पतवारों को क्यों तजते हो, पानी में किस से लजते हो ?
मुझ को सौंपो मौत खड़ी है, अब भी निर्बल हो तो लाओ ॥

(७५)

माँझी ! प्रलय मचा दो जल में !!

सागर सारा ही पी जाऊँ, चाहे खुद मैं मर ही जाऊँ,
लाखों जीव खतम हो जाएँ, लाशें गिर जाएँगी पल में ॥

देखें कौन बड़ा है हम में, जड़ अम्बुधि में, औ अन्तर में,
बजने भी दो अब रण भेरी, सागर परिवर्तन हो थल में ॥

लाखों अणु बम गिर जाएँगे, हम मानव हित मर जाएँगे,
इन लहरों ने क्या समझा है, माँझी आग लगादो जल में ॥

(७६)

माँझी ! अब शोले निकले है !

जिन की आज जरूरत ही थी, रे कुछ ऐसी सूरत ही थी,
मेरी आँखों से ज्वाला के, देखो अब गोले निकले है ॥

अब तो बज्र गिराऊँगा ही, सब निर्लज्ज हराऊँगा ही,
नर के भीतर से देवों के, चोले के चोले निकले है ॥

इनके आगे किस की हिम्मत, इन के आगे किसकी कीमत,
इनको तोल सकोगे क्योंकर, ये तो अनमोले निकले है ॥

(७७)

माँझी ! अम्बर भी डरता है !

फट जाएगा गर्मी पाकर, मेरे सँग हठधर्मी लाकर,
कैसा गिड़गिड़ गिड़गिड़ करता, बादल को आगे करता है ॥

यह ब्रह्माण्ड बिचारा छोटा, इससे ही मुझ को दुख होता,
यह भी युग युग से अच्छा है,इससे ही चिंतित करता है ॥

रोने लगती है ये लहरें, जलने लगती है यह प्रहरें,
तूफानों में कम्पन होता, सागर भी आहें भरता है ॥

(७८)

माँझी ! बात बड़ी बेढंगी !

जैसा कहते हो तुम मुझ से, अनजाने रहते हो मुझ से,
इस से और नही है बढ़कर, देखो, यह तो सब से चगी ॥

जल में कितना सा पौरुष है, कायर दिखता कितना खुश है,
सारी पृथ्वी ही बेरंगी, चाहे दिखती हो नारंगी ॥

दुनियाँ एक हमारी माया, जब चाहा तब प्रलय मचाया,
हम मे सब शक्ती अन्तर्हित, कुछ सोचो तो मेरे संगी ॥

(७९)

माँझी ! रोज तुम्हें सिखलाऊँ !

तुम मुझ को अच्छे दीखे हो, कुछ अनजाने ही सीखे हो,
इस से ही तुमको अन्तर के, सारे भेद यहाँ बतलाऊँ ॥

दुनियाँ में सब गिरते पड़ते, दो दो कौड़ी पीछे लड़ते,
फुर्सत वहाँ नही कोई को, लेकिन तुम को तो जतलाऊँ ।।

मुझ पर क्यों विश्वास नहीं है, रे तुम मे उच्छ्वास नही है,
मुझमे रूप विराट् निहित है, आओ तुमको तो दिखलाऊँ ।

(८०)

माँझी ! रोक रहा यौवन को !

जग वाले वैसे ही जलते, पर मेरी सेवा से पलते,
मैं दुनियाँ को देता रहता, क्यों इस सारे संचित धन को ।।

लेकिन जग इस योग्य नहीं है, रे वीरों के भोग्य नहीं है,
कायर ही कायर हैं अब तो, शायर हो खुश करता मन को ।।

क्या बेकार चला जाएगा, यौवन क्या नित पछताएगा ?
क्या आहों मे छिप जाएगा, बाहों में लेकर चितन को ।।

(८१)

माँझी ! बाधाएँ भी आईं ।

हम तो रोज प्रतीक्षा करते, इनसे ही कुछ सीखा करते,
इनके सँग तो रास रचेंगे, अपनी राधाएँ भी आईं ।।

आने दो कोई औरों को, धरती के धन के चोरों को,
नित ही खून चूस जाते जो उनकी लिप्साएँ भी आईं ।।

हम को धमकी देते सारे, लहरों सँग ये भी ललकारे,
दो दो हाथ जरा हो जाए, बीती गाथाएँ भी आईं ।।

(८२)

माँझी ! जोश हमारा बढ़ता !

सारी नस नस सनसन करती, छाती दावानल सी जलती,
आँखे लाल हुईं लोहू से, देखो रोष हमारा बढ़ता ॥

सारा अम्बर भी फट जाए, सारा सागर भी कट जाए,
ऐसा भीषण अब रह रह कर, यह आक्रोश हमारा बढ़ता ॥

ये सब ढीले होने आए, ये सब पीले होने आए,
इन का होश हवा होता है, अब तो होश हमारा बढ़ता ॥

(८३)

माँझी ! आज चुनौती दे दो !!

लड़ने का मौसम आया है, मरने को जी ललचाया है,
लो पतवार उठा लो अपनी, यह भी उत्सुक होती दे दो ॥

औरों को भी तो बढ़ने दो, सब को ही हम से लड़ने दो,
यह उनमें साहस लाएगी, कब से है यह सोती, दे दो ॥

मानवता अब लहराएगी, इन लहरों में ही गाएगी,
धरती पर अमृत बरसाने, नभ को आज चुनौती दे दो ॥

(८४)

माँझी ! सपने सच होते हैं !

ऊँचे पर्वत को भी ढाहे, मानव यदि कुछ करना चाहे,
लेकिन दो पैसे के नर तो, चलते चलते ही रोते हैं ॥

नीरज की महिमा को जानो, उस के भी सुख को संधानो,
गन्दे जल मे रह कर हम भी, देखो प्रेम सुधा बोते हैं ॥

कैसे लोग हुए है जग मे, अब तो मरते है पग पग में,
हम तो जग जगकर जल पाए, ये दिन में बैठे सोते है ॥

(८५)

माँझी ! लहरों से लड़ जाओ !
जिन पर हम बढ़ते आए है, जिन पर हम चढ़ते आए हैं,
उनसे, कुछ गड़बड़ करने पर, तुम भी अक्खड़ बन अड जाओ ॥
इन को हम संहारे ऐसे, चीनी, दाँत उखाड़े जैसे,
या तो इन पर काबू पाओ, या फिर तुम खुद ही मर जाओ ॥
इन पर क्रोध अधिक आता हो, या फिर मोह अधिक छाता हो,
क्रोधित होकर, या फिर रोकर, नौका से बाहर कढ़ जाओ ॥

(८६)

माँझी ! मछली को मत देखो !
तुम को ललचाने आई है, कैसी मुस्काने आई है,
रस्ते चलते मर जाने दो, ऐसी दुबली को मत देखो ॥
भूखे हो यदि तुम ऐसे ही, तो मुझ से कह दो वैसे ही,
मैं तो ढेर लगा सकता हूँ, ऐसी पतली को मत देखो ॥
खाने से पहले खाएँगी, यदि हम को जल में पाएँगी,
नौका हाय बचालो केवल, अब तो इधर उधर मत देखो ॥

(८७)

माँझी ! मछली भी मर जातीं !
जब मै घायल होकर गाता, जब मैं पागल हो चिल्लाता,
सारे सागर की लहरों से, मेरी स्वर-लहरें टकरातीं ॥

रे ये कैसे जीत सकेंगी, कुछ दिन में ही बीत सकेंगी,
मेरे क्रन्दन को सुन सुनकर, मछली पास चली ही आती ।।

कवि की पीड़ित आहे सुनकर, ये कमजोर निगाहे चुनकर,
थल मे बुलबुल जैसे मरती, वैसे जल मे ये मर जाती ।।

(८८)

माँझी ! घड़ियालों को मारो !
कहते है ये भी सुनते है, थोड़ा थोड़ा सा गुनते है,
क्या ये हमको ही चुनते है, ये लोभी है बस दुतकारो ।।

कैसे पहलवान बनते है, कैसे बुद्धिमान बनते है,
इन के लक्खन कुछ मत पूछो, फौरन एक तमाचा मारो ।।

हम में कितना आत्मिक बल है, करता इन को भी विह्वल है,
इन को भी बाहों में लेकर, अपनी कविता से संहारो ।।

(८९)

माँझी ! और किसे मारेंगे ?
सागर मे रक्खा ही क्या है, मछली घोंघों की दुनियाँ है,
इन घोंघों मे ही अब रह कर, सारे जग को दुतकारेंगे ।।

जल में भी तो सृष्टी रहती, कितनी सुन्दर बस्ती रहती,
यह जाने किस का पीहर है, हम को सब ही पुचकारेंगे ।।

कोई आएगा जाएगा, कीचड़ में तब छिप जाएगा,
कैसी आँख मिचौनी होगी, अब हम जल मे अभिसारेंगे ।।

(६०)

माँझी ! मच्छड़ कैसे आया ?

मैंने तो अब ही देखा है, बेचारा कैसा भूखा है,
जीने दो इसको नौका पर, मुझ को इसने भी तड़पाया ।।

आखिर कोई साथ हमारे, हम तो बैठे थे मनमारे,
यह भी तो गाने गाता है, देखो मेरे सँग मुस्काया ।।

छेड़ो मत, बैठा रहने दो, इस को भी मन की कहने दो,
यह भी तो कविता करता है, मेरे सँग सँग जल में आया ।।

(६१)

माँझी ! कौन सँदेसा भेजें !

मैं तो कहला ही क्या सकता, अविवाहित हूँ गा क्या सकता,
लेकिन मौन तुम्हारे गाने, रे किस चिड़या द्वारा भेजे ।।

मैं तो चाह नहीं करता हूँ, मैं तो आह नहीं भरता हूँ,
बाते करना ही दुस्वर है, रे फिर लिख लिखकर क्या भेजें ।।

तारे भी तो अन्तर्हित हैं, प्यारे भी तो दूर निहित हैं,
रे इन तूफानों से कह दो, कोई आ जाए, तो कह दें ।।

(६२)

माँझी ! करनी पर पछतालो !!

अभिशापों से भर पाए है, हम को पापों ने खाए हैं,
कहना सुनना छोड़ो जग से, अब तो दो दो आँसू डालो ।।

बस इन गीतों में कह जाएँ, संगीतों में ही बह जाएँ,
गा कर प्राणों को दे जाएँ, अब भी गाना हो तो गालो ।।

आखिर काया जाएगी ही, चंचल छाया जाएगी ही,
मुझको मरने में भी सुख है, लो मेरे सँग कुछ मुस्कालो ।।

(६३)

माँझी ! पार कहाँ पाओगे ?

सागर तो बढ़ता ही जाता, नित आगे अड़ता ही जाता,
अब तो हाथ कटे पड़ते है, रे उपचार कहाँ पाओगे ?

वारिधि मे तो जल ही जल है, हम में केवल बल ही बल है,
पर यह लघु मानव का बल है, तुम अधिकार कहाँ पाओगे ?

फिर भी मुझ में कितना साहस, तुम को रोज बँधाता ढाढस,
छोटा सा भोला भोला सा, ऐसा यार कहाँ पाओगे ?

(६४)

माँझी ! डूबोगे क्या प्यारे !!

देखो होठ हिलाते हो तुम, पीड़ा से घबराते हो तुम,
मेरे आगे मुझ से पहले, क्या तुम बह जाओगे प्यारे ?

देखो मै तो जीवित बैठा, अब तक औरों के हित बैठा,
फिर तुम क्यों रूठे जाते हो, मुझको छोड़ोगे क्या प्यारे ?

अब तो नौका भी डूबेगी, मेरी साँसे भी ऊबेगी,
सागर कैसा गर्जन करता, लहरें ही जीती हम हारे ।।

(६५)

माँझी ! लहरों ने घेर लिया ।

ये आगे बढ़ती आती है, ये मुँह फाड़े चिल्लाती हैं,
मारुत भी हँसता है हम पर, वर्षा ने भी अंधेर किया ।।

हाथों का बल तो दूर हुआ, साहस भी चकनाचूर हुआ,
मन के बल से भी तो मैंने, जाने कितनो को टेर लिया ।।

अंतिम क्षण तो जी बहला दो, बस एक बार तो मुसका दो,
पतवार चली बहकर आगे,क्या तुमने भी मुँह फेर लिया ?

(६६)

माँझी जीवन से छुट्टी है !!

अब तक ही जो हम जिन्दा थे,उस पर प्रति दिन शरमिन्दा थे,
अब लो जल में जीव छिपाओ, जग में रहने की छुट्टी है ।।

जग ने हम को फटकारा था, कंकर कंकर से मारा था,
सागर भी क्रोधित होता है, जल में चलने की छुट्टी है ।।

काहे गीत बनाए हमने, काहे मीत बनाए हम ने,
अब तो उठ जाओ दुनियाँ से, गाना गाने की छुट्टी है ।।

(६७)

माँझी ! लो हम चुंबन कर लें !

हम दोनों जग से बिछुड़े हैं, सूखी धरती से उखड़े हैं,
अपनी श्वासें छिप जाने से, पहले थोड़ा गुंजन कर लें ।।

हम दुनियाँ से ठुकराए है, प्रति दिन ही आँसू आए हैं,
दिल तो पहले ही टूटा था,बस अंतिम मनरंजन कर ले ।।

कविता रच कर पढ़ भी न सके, अमृत पीकर हम जी न सके,
अब तो मरने को बैठे हैं, बस जी भर अवलोकन कर लें ।।

(६८)

माँझी ! अंतिम क्षण तो बोलो !!

कैसी गहरी साँसें आईं, मुझ में भी निश्वासें आईं,
मेरा कंठ रुँधा जाता है, तुम तो साहस को कुछ तोलो ।।

रे मैं एक अभागा आया, उस दुनियाँ से भागा आया,
अब तो हास उड़ा अन्तर का, रोने का दम हो तो रोलो ।।

ज्योती उठ जाएगी जग से, बाते मिट जाएँगी जग से,
जोते जोते रह जाएँगे, फिर भी अ तिम क्षण तो जो लो ।।

(९९)

माँझी ! क्या गाऊँ, क्या रोऊँ ?

गाने से तो पोर उठेगी, टूटे दिल को चीर उठेगी,
काँटे वैसे ही इतने है, अब औरों को कैसे बोऊँ ।।

सिसकी रह रहकर आती है, हिचकी रह रह बढ़ जाती है,
रोने की शक्ती किस मे है, केवल आँखों से ही रोऊँ ।।

अब तो गान मिटे है सारे, अब तो प्राण उठे है सारे,
केवल आँसू ही आँसू हैं, जिन से निज पापों को धोऊँ ।।

(१००)

वह किनारा दूर हो है !!

पास लगता था हमे वह तो क्षितिज से परे भी है,
ज्यों बढ़ो त्यो त्यों सरकता, जा रहा आगे अरे है,
अब चलो या मत चलो, माँझी ! हृदय बस चूर ही है ।।

तोड़ दूँ रे जिन्दगी को, पास प्रिय के जा सकूँ तो,
उस अलौकिक रूप का, दर्शन अगर मैं पा सकूँ तो,
मे समझता था दयामय, प्रेयसी वह क्रूर ही है ।।

कौन पहुँचा है वहाँ मुझको प्रमाणों से बताए,
आज अपरम्पार सागर, पर निशानों से बताए,
हाय माँझी ! शुद्र मानव, तो यहाँ मजबूर ही है ।।

शुद्धि-पत्र

ज्योति

पृष्ठ	गीत	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	४	१	राना	रोना

पिपासा

पृष्ठ	गीत	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	आमुख	नीचे से ३	सना	रसना
५७	गीत १	७	निर्भरणी	निर्झरणी
५७	१	नीचे से २	दान	दानव
७८	४६	२ के बाद		क्षीण हो तुम यह मनुज को, कोस गिरती है गगन से
८०	४९	पंक्ति १		रे विष क्यों मुझे पिलाया
८१	५७	नीचे से २		नूतन
८७	६५	६	दर्शकों	दर्शनों
९६	८४	३	सरिता	सरिता सी
९९	९१	३	लाते हो	ले आते हो

लो हम भी हँसें

पृष्ठ	गीत	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११९	१९	३	तुझ को	तुम को
१२०	२१	७	व्यक्ति	व्यथित
१२०	२१	१०	कछ	कुछ
१२०	२२	२	दुनिआँ	दुनियाँ
१३७	५०	७	कैसा	जैसा
१४३	६१	८	क्या	क्यों
१४४	६३	८	वहना	बहना
१४४	६३	९	रहता	रहना
१४७	७०	५	मुस्काती	मुस्का सकती

पृष्ठ	गीत	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			कसौटी	
१६५	३	१	आनन्द	आनंद
१६७	५	७	रहते हैं	रहते
१७२	१२	नीचे से ४	'मैं के बाद	खिन्न
१७३	१३	नीचे से २	'हृदय' के बाद	को
२११	८५	८ के ऊपर		वह अपने गीत सुनाता थी, मेरी लेखनि रुक जाती थी,
२१४	६१	अंतिम 'सार' के बाद		नहीं
			प्रेयसी की याद में	
२२६	६	३	शाल	शूल
२३३	२०	अंतिम	अभास	आभास
२३४	२२	१	दिवाली	दीवाली
२४८	५२	४	छने	छूने
२६८	६२	२	प्रपारों	प्रहारों
२७०	६७	नीचे से २	स्वत	स्वत:
२७१	६६	नीचे से ४	'साँसों' के बाद	से
२७२	१००	६	प्रिय	प्रिया
			निर्झर	
२७८	२	४	'मेरे' के बाद	बल को
२८२	६	३	निगिन	नागिन
२८६	२२	६	लेखन	लेखनि
			माँझी	
३२५	आमुख	१०	किसी याद	किसी की याद
३३३	१४	३	मनमारा	मनमाना
३४८	४७	ऊपर से २	बेकवादी	बकवादी
३४६	५०	३	और	औ
३४६	५०	७	औ रुलाऊँ	और रुलाऊँ
३५०	५३	४	'चिन्ता' के बाद	थी